डॉ. महेन्द्र भटनागर के काव्य में समसामयिकता

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच.डी. हिन्दी की उपाधि हेतु प्रस्तुत

महाशोध-प्रबंध

शोधछात्र :

विपुल रणछोड़भाई जोधाणी

प्लाझमा ईन्टरनेशनल स्कूल,

जूनागढ

शोधनिर्देशक :

डॉ. आर. एच. वणकर

प्राध्यापक,

श्रीमती आर.पी.भालोडिया महिला

आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज,

उपलेटा-360 490

हिन्दी भाषा - साहित्य विभाग

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,

राजकोट

अगस्त 2010

भूमिका

प्रस्तावना :

'समसामयिक संदर्भों की अभिव्यक्ति' किसी न किसी रूप में भारतीय संस्कारों एवं युग परिवेश में अन्त: सलिलता की भाँवि प्रवाहित होती रही है । हिन्दी साहित्य के आदिकाल से ही कविता में, साहित्य में समसामयिक संदर्भों की अभिव्यक्ति अनवरत रूप से प्रवाहमान होती हुई दिखाई देती है । गोरखनाथ, जैन कवि आसगु, विधापति की रचनाओं में तत्कालीन समाज की समसामयिक घटनाओं का जिक्र पाया जाता है । नाथों और सिद्धों की रचनाओं भी तत्कालीन व्यवस्था विरोधी स्वर गुंजता दिखाई देता है ।

भक्तिकाल में भक्ति आन्दोलन की जो धारा बही है वह समसामयिक सामाजिक धरातल को झकझोरती है । रीतिकाव्य समाज का मनोरंजन अवश्य करता है, उसे यथेष्ट गति प्रदान नहीं करता परन्तु फिर भी भूषण के साथ कुछ ऐसे कवि हैं जो समाज और युग के यथार्थ को अपनी कविताओं में प्रतिबिम्बित करते है ।

स्वाधीनता प्राप्ति हेतु अंग्रेजों से संघर्ष करना पड़ा जिसके कारण आधुनिक काल में पुनर्जागरण, सामाजिक सुधार, नव जागरण की प्रेरणा आयी। राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई जिसे आधुनिक युग में प्रगतिशीलता का प्रथम सोपान कहा जा सकता है । भारतेन्दु युगीन और द्विवेदी युगीन साहित्यकारों ने यह कार्य बखूबी से किया है । इस युग की राष्ट्रीय चेतना 'समसामयिक संदर्भों की अभिव्यक्ति' ही है । छायावादी युग में भी 'समसामयिकता' के तत्व विधमान है । इसके उपरान्त मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित प्रगतिवादी विचारधारा सामने आयी । यही नहीं आगे चलकर प्रयोगवाद और नयी कविता में भी समसामयिक संदर्भों की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है ।

प्रारंभ से ही मेरी काव्य के प्रति विशेष अभिरुचि रही है । एम.ए. करते समय प्राचीन एवं नये कवियों का अध्ययन करने की मेरी जिज्ञासा बढ़ती गई । उस समय मेरे मस्तिष्क में हमेशा यह बात झंकृत होती रही कि

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक के हर कवि में कुछ-न-कुछ प्रगतिशीलता का अंश अवश्य विधमान है जिसके कारण आज भी उनका काव्य चिरंतन बना हुआ है ।

प्रस्तुत शोधकार्य के मूल में मेरा मुख्य हेतु यह रहा है कि जिन कवियों को हम वीरगाथाकालीन, भक्तिकालीन, रीतिकालीन कवि मानते है, उन सभी ने समसामयिक संदर्भों की अभिव्यक्ति यथोचित स्थान पर की है । वीरगाथाकालीन कवि वीरगाथा लिखकर जहाँ वीरता का प्रदर्शन कर सैनिकों को मातृभूमि एवं देश की रक्षा के लिए प्रेरित करते है वहाँ के समाज के अन्य क्षेत्र में भी जागरूक दिखाई देते है । भक्तिकालीन कवि केवल भक्ति में ही लीन नहीं दिखाई देते अपितु समाज के हर पहलू पर उनकी दृष्टि केन्द्रित दिखाई देती है । रीतिकालीन कवि केवल श्रृंगारपरक रचनाएँ लिखकर ही खुश नहीं है, उन्हें भी समाज की प्रगति का आभास है ।

विषय निर्धारण करते समय यह समूचित ध्यान रखा गया कि आधुनिककाल में समसामयिक अभिव्यक्ति का कवि उपेक्षित तो नहीं रह जाता ।

हिन्दी साहित्य में सन् १९३६ से प्रगतिवादी युग का आरंभ होता है । प्रगतिवाद को प्रगतिशीलता का पर्यायवाची मानकर डॉ. रणजीत का 'हिन्दी की प्रगतिशील कविता' नामक ग्रंथ सन् १९७१ में प्रकाशित हुआ ।

महेन्द्र भटनागर प्रगतिवाद के द्वितीय उत्थान के केन्द्रिय कवि के रूप में माने जाते है । 'हंस' पत्रिका के माध्यम से महेन्द्र जी प्रगतिवादी काव्यान्दोलन से जुड़े थे । सन् १९४७ में पहली बार 'हंस' में महेन्द्र भटनागर की कविता प्रकाशित हुई थी । बहुत कम समय में ही महेन्द्र भटनागर की गिनती प्रगतिवाद के प्रमुख कवियों में होने लगी थी ।

महेन्द्र भटनागर जैसे कवियों ने प्रगतिवाद की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित किया था । उनकी कविताएँ परत-दर-परत समय और समाज की विपरीतताओं को अनावृत करती है ।

कवि ने किसी 'वाद' विशेष का समर्थन नहीं किया । वह जीवन और समाज की गतिशीलता, परिवर्तनशीलता में विश्वास करता है । स्थिर

समाज जड़ होता है । स्थिर जीवन स्पंदनहीन हो जाता है । मनुष्य का जीवन एक सतत गतिशील प्रक्रिया है । मानव-समाज स्थिर कभी नहीं रहा है । स्थिर, जड़ समाज इतिहास से गायब हो जाता है । प्रगतिशील कवि युग और समाज के अनुरूप अपने को बदलता है । यह बदलाव महेन्द्र भटनागर की कविताओं में देखा जा सकता है ।

विषय निर्धारण में मेरे शोध-निर्देशक डॉ. आर.एच. वणकर साहब का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग रहा है । उन्होंने ही मुझे प्रस्तुत शोध विषय पर अधिक रुचि जगाई है और इस विषय पर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया था । प्रस्तुत प्रबन्ध "डॉ. महेन्द्र भटनागर के काव्य में समसामयिक संदर्भों की अभिव्यक्ति" श्रद्धेय गुरुवर्य प्रोफेसर डॉ. आर.एच. वणकरजी के निर्देशन में लिखा गया है । मेरी असहाय स्थिति में उन्होंने मुझे यथेष्ट सम्बल प्रदान किया और मेरे शोध कार्य को नई गति प्रदान की । उनका आत्मीयतापूर्ण व्यवहार व मार्गदर्शन सदैव मेरे लिए प्रेरणास्पद रहा । जिस तत्परता से उन्होंने मेरी सहायता की और मुझे यह कार्य सम्पन्न करने में सहयोगपूर्ण मार्गदर्शन दिया एतद्दर्थ मैं उनका सदैव ऋणी रहूँगा ।

विषय-निर्धारण के साथ ही रूपरेखा की मुझे बड़ी दुविधा थी अतः प्रस्तुत शोध के आधार स्तंभ ऐसे डॉ. महेन्द्र भटनागर जी का मैंने संपर्क किया । उन्होंने स्वयं इस विषय में मुझे यथोचित रूपरेखा कैसी होनी चाहिए उस पर मार्गदर्शन दिया । अतः मैं डॉ. महेन्द्र भटनागर जी को भी तहेदिल से वंदन करता हूँ ।

इनके अतिरिक्त इस अवसर पर मैं अपने परिजनों विशेषकर अभी अभी जिससे मेरी शादी हुई है, मेरी धर्मपत्नि श्रीमती जागृति और मेरी नन्ही सी बिटीया कृष्णा के अमूल्य सहयोग को आभार जैसे शब्द से उऋण नहीं हो पाऊँगा । साथ ही मेरे माता-पिता का भी मैं ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से मुझे इस कार्य में उत्साहवर्धन किया है । साथ ही जिन लेखकों की रचनाओं से उद्धरण दिये गये उनके प्रति भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ ।

तद्उपरांत मेरे कॉलेज के प्रबुद्ध आचार्यश्री डॉ. बालुभाई शेलडिया साथ ही मेरे सहअध्यापक मित्र और गुजराती साहित्य के आलोचक डॉ. दिनेशभाई चुडासमा का आभारी हूँ जिन्होंने मेरे इस कार्य में लगातार साथ-सहकार दिया है जिसका में तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूँ ।

अंत में मैं 'गूजरात विद्यापीठ' के पुस्तकालय का भी आभारी हूँ । जहाँ से मुझे काफी सहायता मिली है ।

इस महाशोध-निबंध को अक्षरसह साकार किया है ऐसे टाइपिष्ट कल्पेशभाई का भी मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे कम समय में क्षतिरहित कार्य करने में सहयोग दिया है ।

एक शोध छात्र के नाते मेरी अपनी सीमाएँ है तथापि यह शोध कार्य विद्वत्जनों के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करने का दु:साहस कर रहा हूँ ।

प्रा. जोधानी विपुल आर.

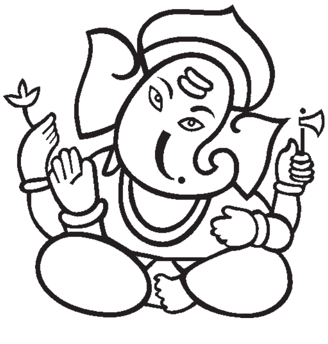

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोधप्रबंध में प्रगतिवादी कवि डॉ. महेन्द्र भटनागर के समस्त काव्य-साहित्य का अनुशीलन किया गया है । आधुनिक काल में छायावाद के पश्चात् प्रगतिवादी युग का आविर्भाव हुआ है । प्रगतिवाद का यह प्रथम उत्थान था । प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य में नयी सोच और क्रांति का नवोन्मेष है। छायावाद में कवि जिन रंगीन कल्पनाओं में डुबा रहता था उससे विपरित प्रगतिवाद यथार्थ की भूमि पर फलाफूला है । प्रारंभिक समय में प्रगतिवादी काव्य में काव्योचित् सौन्दर्य का अभाव और कोरी नारेबाजी सुनाई पड़ती है । इस समय भारत परतंत्र था अतः इसमें राजनीति से जुड़े दावपेच और तत्कालीन समय में उपजा असंतोष देखने मिलता है । परिणाम स्वरूप इस समय का काव्य में अपेक्षाकृत गरिमा का अभाव है । प्रगतिवाद स्वयं साहित्यकारों के लिए मतभेदों का जमेला बन गया । इन मतभेदों ने प्रगतिवाद के प्रथम उत्थान को नामशेष कर दिया ।

स्वतंत्रता के पश्चात् जवाहरलाल नेहरु ने पंचशील विचारधारा से समाज-व्यवस्था का आयोजन किया, साथ ही सोवियत-संघ से मैत्रीपूर्ण संबंध से प्रगतिशील विचारधारा का आविर्भाव हुआ । स्वतंत्रता प्राप्ति के आस-पास का यही समय प्रगतिवादी काव्य का द्वितीय उत्थान का समय है। प्रगतिवादी कवियों ने इस युग में अपने खुले मन से अपनी कल्पनाओं को यथार्थ के साथ जोड़कर यथार्थ की ठोस भूमि पर कविता का निर्माण किया। शिल्प की दृष्टि से यह कविता अन्य युगीन कविताओं से वैविध्यपूर्ण है । डॉ. महेन्द्र भटनागर इसी प्रगतिवादी द्वितीय उत्थान के कवि है ।

प्रगतिवाद के द्वितीय उत्थान में कवि महेन्द्र भटनागर ने जनवादी काव्य रचना करके प्रगतिवादी रचनाकारों में जननायक के रूप में प्रस्तुत हुए है। कवि महेन्द्र भटनागर की सरल ईमानदारी उनकी कविता का आकर्षण है। सरल भाषा में कवि ने युगीन भावना को वाणी प्रदान की है । कविता में अब तक अठारह काव्य संग्रह प्रकाशित हुए है जो विभिन्न भाव-संवेदन, काव्य रूपों से प्रस्तुत हुए है । उनकी रचनाएँ समय-समय पर देशभर की तमाम पत्र-पत्रिकाओं में तथा आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित होती रही है । यही नहीं उनकी कितनी ही कविताएँ देश-विदेश की अनेक भाषाओं में

अनुदित हुई है । उनकी कविता पर अनेक समीक्षकों ने समीक्षा भी की है । हिन्दी कविता में कवि महेन्द्र भटनार का साहित्यिक योगदान महत्वपूर्ण है ।

प्रगतिवादी कविता में महेन्द्र भटनागर की कविताओं का औचित्य सिद्ध होता है । इसी औचित्य का स्वीकार कर प्रस्तुत शोध प्रबंध में कवि के समस्त कविताओं का युग संदर्भ में युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर कवि की साहित्यिक एवं जीवन संबंधी धारणाओं को परखने का और विवेचित करने का महनीय प्रयास किया है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में मूल दश अध्याय है, जिनमें कविता की विषयवस्तु के विभिन्न पहलूओं को परखने का प्रयास किया है । उनके काव्यलोक का कोई भी क्षेत्र अनदेखा न रह जाए - यह मेरा प्रयत्न रहा है फिर भी यदि कहीं कुछ क्षति हुई हो वहाँ मैं अपनी अल्पबुद्धि से हुई है उसके लिए मैं क्षमापार्थी हूँ । अपने मंतव्य की सिद्धि के हेतु मैंने उनके समस्त काव्य संकलनों का अध्ययन किया है । यह विस्तृत अध्ययन में कवि के कवि-व्यक्तित्व को प्रकाशित करके तथा उनके साहित्यिक उद्देश्य को मूल्यांकित करने का लघु प्रयास है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध "डॉ. महेन्द्र भटनागर के काव्य में समसामयिकता" को मैंने दश अध्यायों में विभाजित किया है जो निम्नानुसार है ।

प्रा. जोधानी विपुल आर.

अनुक्रमणिका

अध्याय		पृष्ठ
प्रथम अध्याय	महेन्द्र भटनागर और उनका युग	0,53
द्वितीय अध्याय	महेन्द्र भटनागर : संक्षिप्त जीवन परिचय	54,68
तृतीय अध्याय	महेन्द्र भटनागर का कविता-संसार एक सर्वेक्षण	7/,0/6
चतुर्थ अध्याय	महेन्द्र भटनागर का जीवन और साहित्य	
	के प्रति दृष्टिकोण	0/7,1/4
पंचम अध्याय	साहित्य और समाज	1/5,164
षष्ठ अध्याय	महेन्द्र भटनागर के काव्य में दलित-वर्ग	165,185
सप्तम अध्याय	शोषण-मुक्ति का आह्वान	186,223
अष्टम अध्याय	सामाजिक अंध-विश्वास और रूढ़िगत	
	मान्यताओं का विरोध	224,265
नवम अध्याय	साम्प्रदायिक सोहार्द	266,323
दशम अध्याय	सामाजिक आदर्श की परिकल्पना	324,352
	संदर्भसूचि	353,364

प्रथम अध्याय

महेन्द्र भटनागर और उनका युग

1. कवि

2. युगधर्म

3. स्वतंत्रता-पूर्व भारत

    : राजनीतिक परिवेश

    : आर्थिक परिवेश

    : धार्मिक परिवेश

4. स्वातंत्र्योत्तर भारत

    : राजनीतिक परिवेश

    : आर्थिक परिवेश

    : धार्मिक परिवेश

    : सामाजिक परिवेश

    : साहित्यिक परिवेश

❒ निष्कर्ष

प्रथम अध्याय

महेन्द्र भटनागर और उनका युग

1. *कवि :*

कवि के लिए संस्कृत में कहा गया है कि -

अपारे काव्य-संसारे कवि रेक : प्रजापति ।

अर्थात् कविता रुपि संसार का सर्जक कवि प्रजापति है । जिस तरह ब्रह्मा संसार का निर्माण करता है उसी तरह कविता रुपि संसार का निर्माण कवि करता है । कवि के लिए यह स्पष्ट बात है कि अन्य की तुलना में वह अधिक संवेदनशील होता है । यही भावुकता उसे कवि-कर्म के लिए प्रेरित करती है । कवि सुमित्रानंदन पंत कहते हैं -

"वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमड़कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान !

संस्कृत में कवि के लिए कहा गया है कि -

नर त्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।
कवि त्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ।।

यानी इस संसार में मनुष्य होना दुर्लभ बात है, उसमें भी विद्वान बनना और विद्वता के साथ कवि होना और काव्य की रचना करना और भी दुर्लभ है ।

कवि शब्द का अर्थ 'प्रजापति', 'ब्रह्मा' व 'काव्य करनेवाला' है ।"[1] 'कवि' शब्द फ़र्वेण अथवा 'कुङ्शब्दे' धातु से 'ई' प्रत्यय लगाने से बनता है । राजशेखर कवि का अर्थ 'वर्णनकर्ता' मानते हैं । संस्कृत आलोचना में कवि का प्रधान कार्य 'वर्णन' बताया गया है । मम्मट के अनुसार 'काव्य' लोकोत्तर वर्णना में निपुण कवि का कर्म है ।

'लोकोत्तर वर्णना-निपुण कवि-कर्म ।'[2]

कविता रचनेवाले को कवि कहा गया है । 'कवि' किसी वस्तु का वर्णन मात्र कर देने से संतुष्ट नहीं होता, वह उसमें लोकोत्तर भावों का भी समावेश करता है । जो अपनी प्रतिभा चक्षु से अनुभूत सत्य को सुन्दर शब्दों में प्रकट नहीं कर पाता वह कवि नहीं हो सकता ।

कवि-कर्म के लिए प्रतिभा का होना आवश्यक है । वह अपनी प्रतिभा से इच्छानुसार भावों का प्रस्फुटन करता है । इसलिए उसे प्रजापति कहा जाता है ।

संसार में हर जीव कोई-न-कोई कर्म में प्रवृत रहता है । मूर्ख व्यक्ति भी बिना प्रयोजन के कार्य नहीं करता तो एक कवि बिना प्रयोजन काव्य करने में कैसे प्रवृत्त होगा ? कवि अपनी कविता का सृजन कोई-न-कोई प्रेरणा प्राप्त करके ही करता है । तुलसी की तरह कोई स्वान्तःसुखाय करता है तो कोई वाल्मिकी की तरह क्रौंच-वध से द्रवित होकर ।

प्राचीन ग्रंथों में काव्य के विविध प्रयोजन बताये गये हैं । आचार्य मम्मट ने काव्य-प्रकाश में काव्य के प्रयोजन के बारे में कहा है :

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदं शिवेतरक्षतये ।

सद्यः परनिर्वृतये कान्ता-सम्मितयोपदेशयुजे ।।"

काव्य का यह प्रयोजन कविता में हर जगह दृष्टिगोचर होता है । कविता में कवि व्यावहारिक पक्ष को पत्नी के मधुर वचनों की भाँति उजागर करता है ।

आधुनिक युग में कवि और काव्य की उपरोक्त मान्यताएँ खंडित हो चुकी हैं ।

कवि, काव्य, साहित्य, कला के बारे में आधुनिक विचार पुराने विचारों से मेल नहीं खाते । साहित्य के प्रतिमान बदल गये हैं । इसके प्रभाव से साहित्यकार की रचना-दृष्टि भी बदल गयी । "आधुनिक युग में इसलिए कवि-कर्म जटिल हो गया है । आज संसार छोटा हो गया है । विज्ञान, उद्योग, तकनीक और मीडिया ने विश्व के देशों को परस्पर एक दूसरे के बहुत नज़दीक ला दिया है । कोई भी घटना तुरन्त विश्व-भर में ज्ञात हो जाती है । संचार-माध्यम और मीडिया ने देशों की दूरी बिलकुल कम कर दी है । आज

का लेखक विश्व में हो रही घटनाओं की जानकारी तुरन्त पा जाता है । उसकी चेतना वैश्विक हो गई है । वह केवल अपने देश और समाज नहीं, बल्कि विश्व और विश्व-मानव-समाज के बारे में सोचता है ।"[3] यही कारण है कि कवि की चेतना व्यक्तिगत नहीं बल्कि 'समष्टि' के लिए हो गयी है ।

आधुनिक समाज का महत्वपूर्ण दूषण वर्ग-विभाजन है । 'पूँजी' समाज को विभाजित करने का शस्त्र है । यही कारण है कि समाज दो भागों में बँट गया है - शोषक, शोषित । पूँजीपति शोषक है और शोषित सर्वहारा-वर्ग कहलाता है । "कला, साहित्य, संस्कृति के बारे में भी आधुनिक मनुष्य का दृष्टिकोण वर्गीय हो गया है । कवि, लेखक और साहित्य पक्षधर हो गये हैं । ऐसी स्थिति में कोई भी कवि आज अपने को 'स्वयंभू' नहीं कहता । आधुनिक समाजों में कवि की स्थिति 'एकांत' नहीं है ।"[4] कवि भी आखिर समाज में रहता है, पलता है, बड़ा होता है । उसके सम्पूर्ण जीवन में, जन्म से मृत्यु तक, समाज उसके निर्माण में सहयोगी बनता है । यह स्वाभाविक है कि समाज में रहकर कोई व्यक्ति या साहित्यकार या सर्जक समाज-निरपेक्ष कैसे हो सकता है ? इसलिए यह कहना क़तई अनुचित् न होगा कि समाज साहित्यकार को प्रभावित करता है और साहित्यकार समाज को । परिवेश और समाज दोनों मिलकर कवि को प्रभावित करते हैं ।

साहित्यकार कभी अपने परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता यानी दोनों की स्थिति द्वन्द्वात्मक होती है । लेखक का विभाजन करते हुए डॉ. श्रीनिवास शर्मा लिखते है, "लेखक तीन प्रकार के होते हैं - यथास्थितिवादी, पलायनवादी तथा विद्रोही । यथास्थितिवादी लेखक समझौतावादी प्रकृति का होता है । पलायनवादी लेखक, समाज-निरपेक्ष, लोक विमुख होता है । विद्रोही रचनाकार समय, शासन, परिवेश के विरुद्ध संघर्ष करता है । इसलिए वह विद्रोही कहलाता है ।"

आधुनिक युग-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका विश्व-युद्ध, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, फ्रांस की राज-क्रांति, इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति की रही है ।

भारत के आधुनिक युग-निर्माण में उपर्युक्त कारण के साथ, भारत की सामन्तयुगीन दासता, मुगलों की शासन-प्रणाली और अंग्रेज़ों की कूटनीति भी

महत्वपूर्ण तथ्य हैं । जिनके कारण भारत में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक परिवर्तन होते रहे हैं । यही कारण है कि साहित्यकार ने अपनी संवेदना को साहित्य में मूर्त रूप प्रदान किया ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य पर 'फ्रॉयड', 'एडलर' और 'युंग' का काफ़ी प्रभाव है । आधुनिक कविता ने पूर्व से अधिक, पश्चिम से प्रभाव ग्रहण किया है । प्रगतिवाद इसका प्रमाण है । मार्क्सवादी विचारधारा ने पूर्व काव्य प्रभावित हुआ । मार्क्सवाद, एक समग्र जीवन-दर्शन है - समाज-व्यवस्था है जो समाज को दो वर्गो के रूप में देखता है - शोषक-शोषित । शोषक-वर्ग सर्वहारा वर्ग का शोषण करता है । आधुनिक काल में इसके विरोध का स्वर मुखर हुआ । जिसका श्रेय मार्क्सवाद को जाता है । समाजवादी विचार भारतीय स्वाधीनता संग्राम को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण कारण रहा है । समाजवादी विचार रूसी क्रांति से आया । इस विचार ने भारत को स्वतंत्र होने में बल प्रदान किया । समाजवादी विचार ने राजनीति के साथ-साथ सामाजार्थिक संरचना, कला-साहित्य, संस्कृत को भी प्रभावित किया ।

भारत के इतिहास में भक्ति आन्दोलन के बाद, समाजवादी विचार सबसे बड़ा सांस्कृतिक आन्दोलन सिद्ध हुआ । इसी विचारधारा से प्रेमचंद ने अपने साहित्य के द्वारा समाजोत्थान और क्रांति करने का एलान किया । प्रेमचंद-युग से छायावाद का उतार आया । छायावादी कवियों में 'निराला' जी मात्र एक ऐसे कवि थे जिन्होंने अपनी विशिष्ट दृष्टि से छायावादोत्तर साहित्य का सृजन किया । इसी विचार-धारा से प्रभावित होकर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शील, शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध, शिवमंगल सिंह 'सुमन', रांगेय राघव, डॉ. रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचंद्र जैन आदि परवर्ती कवियों ने हिन्दी कविता को आगे बढ़ाने का कार्य किया । ये सारे कवि डॉ. महेन्द्र भटनागर की अग्रज पीढ़ी के कवि हैं, जिन्हें अपने समय में प्रगति-विरोधी ताकतों से जमकर लोहा लेना पड़ा ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर प्रगतिवाद के द्वितीय उत्थान के केन्द्रीय कवि माने जाते है ।

2. *युगधर्म :*

"युगधर्म यानी समय के अनुसार व्यवहार"[5] । जैसा कि सर्वविदित है 'साहित्य समाज का दर्पण है ।' इस दर्पण में चित्र अंकित करने का दुष्कर कार्य साहित्यकार ही कर सकता है । हर बड़े रचनाकार की रचना में उसका युग, समय और परिवेश संजीदगी के साथ उपस्थित रहता है । उसका साहित्य शुद्ध साहित्य न होकर अपने समाज का इतिहास भी होता है ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर ने भी अपने युगीन वातावरण को काव्य में प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न किया है । "सन् 1947 ई. में पहली बार 'हंस' में महेन्द्र भटनागर की कविता प्रकाशित हुई थी । बहुत कम समय में ही महेन्द्र भटनागर की गिनती प्रगतिवाद के प्रमुख कवियों में होने लगी थी ।"[6]

'तारसप्तक' और 'सप्तक' द्वितीय, तृतीय प्रकाशन के बाद प्रगतिवाद को झटका लगा । इसका कारण था, प्रगतिवाद को व्यक्ति-विरोधी घोषित किया जाना । कवि महेन्द्र भटनागर ने प्रगतिवाद की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया । कवि महेन्द्र भटनागर ने 'व्यष्टि' से 'समष्टि' को काव्य में चित्रित किया, साथ ही अपनी रचनाओं के माध्यम से यह प्रमाणित किया कि प्रगतिवाद स्वस्थ परंपराओं का विरोध नहीं करता । कवि महेन्द्र भटनागर ने कविता को 'नारे बाज़ी' से भी बचाया । भाषा, छंद, प्रतीक तथा बिम्बों के नये प्रयोगों द्वारा प्रगतिशील कविता को समृद्ध किया । उन्होंने अनेक प्रकार के प्रयोग अपनी कविता में किये हैं । उनके काव्य में विविधता है; जो पूर्ववर्ती प्रगतिशील कवियों में देखने को नहीं मिलती । उन्होंने प्रयोगवाद के कें चमत्कारिक स्वरूप का विरोध किया है । डॉ. महेन्द्र भटनागर के शब्दों में - "आज की कविता 'प्रगति' और 'प्रयोग' के दृष्टिकोण से देखी जाती है । मैं प्रयोग करता हूँ, लेकिन प्रयोग से मेरा अभिप्राय प्रयोगवादियों से भिन्न है, जो प्रयोग के चमत्कारिक प्रदर्शनों से साहित्य की जनवादी विचारधारा को दबा रहे हैं । प्रयोगों का सामाजिक संबंध होना अनिवार्य है । प्रगतिशील दृष्टिकोण से जन-जीवन के भावों की अभिव्यक्ति यदि नाना रूपों में की जाती है तो यह एक स्वस्थ और जीवनदायी परम्परा कही जाएगी । मैं यह देख रहा हूँ कि हिन्दी के अनेक प्रगतिशील जनवादी कवियों में आज वह तेजी नहीं रही जो

पहले थी। उनमें से बहुत से प्रयोग-शैली के भँवर में फँसकर जनवादी परम्पराओं से दूर होते जा रहे हैं। उनकी कविताएँ दुरूह, कलाहीन और अप्रभावशाली होती जा रही हैं। मैं जहाँ कविता में नये-नये प्रयोगों का समर्थक हूँ; वहाँ दूसरी ओर उसके विचार-पक्ष में प्रगतिशील-दर्शन की छाया भी देखना चाहता हूँ - तभी कविता राष्ट्रीय तथा सामाजिक चेतना दे सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। अन्यथा, वह थोड़े-से व्यक्तियों की चीज़ बनकर रह जाएगी और स्रष्टा युगधर्म निभाने में असफल रहेगा।"[7]

डॉ. महेन्द्र भटनागर के साहित्य सर्जन को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए उपर्युक्त कथन महत्वपूर्ण है। लेखन-प्रक्रिया के विषय में उन्होंने कहा है, 'लेखन को मैंने न कभी व्यवसाय बनाया और न लोकेषणा का माध्यम।[8] कवि ने साहित्य-सृजन किसी 'वाद' में बँधकर नहीं किया। कवि-कर्म से उनका मानना है, 'कवि की रचना में उसका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित रहता है। जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि उसके भीतर का, उसकी आत्मा का, उसकी वास्तविक अनुभूति का ठीक-ठीक अभिव्यक्तीकरण हो गया; वह अपूर्व मानसिक शांति का अनुभव करता है।'[9]

कवि कर्म के विषय में डॉ. महेन्द्र भटनागर ईमानदारी और आस्था को महत्वपूर्ण पहलू मानते हैं। उन्होंने कहा है, 'कवि के लिए ईमानदारी बहुत ज़रुरी है। वह अपने नाना अन्तर्द्वन्द्वों को अनुभूत कर जीवन एवं जगत के प्रति जो दृष्टिकोण बनाता है, उसे बिना किसी बाहरी प्रभाव-दबाव के, बिना किसी आकर्षण-प्रलोभन के अविकल रूप में व्यक्त कर देता है।'[10]

कवि-कर्म पर अपने विचार प्रस्तुत करते डॉ. महेन्द्र भटनागर कहते हैं कि रचनाकार की भावना, अनुभूति, कल्पना एवं विचारणा सही-सही अभिव्यक्त हो।

युग-धर्म से कवि का अभिप्राय है कि कवि अपनी रचना में जीवन और समाज के लिए जो हितकर है, परिवर्तन-योग्य है; उसका समर्थन करे। स्थिर समाज जड़ होता है। स्थिर-जड़ समाज का अस्तित्व शीघ्र समाप्त हो जाता है। सामंतवादी समाजों में परिवर्तन की प्रक्रिया मंद होती है, जबकि औद्योगिक समाजों में द्रुतगति से परिवर्तन होते हैं। कला, साहित्य, संस्कृति

पर इन परिवर्तनों का निर्णायक प्रभाव पड़ता है । प्रगतिशील कवि युग और समाज के अनुरूप अपने को बदलता है । काव्य-प्रतिमान, काव्य-भंगिमा बदलती है । यही कवि का युगधर्म है । कबीर, सूर, तुलसी का कोई वाद नहीं था । परन्तु उनकी कृतियों पर तत्कालीन युग और समाज की छाप स्पष्ट है ।[11]

कवि भावना और कल्पनालोक का चितेरा होता है । तुच्छ साधारण तथा नीरस से नीरस वस्तु को भी अपनी कारयित्री प्रतिभा के माध्यम से सरस, सजीव तथा आकर्षक बना देता है । कुछ ऐसी ही विशेषता कवि महेन्द्र भटनागर में भी है । वे युग-कवि हैं । उनकी मानवतावादी दृष्टि सम्पूर्ण समष्टि का हित चाहती है । उनकी जग विस्तृत भावना उन्हें नई-नई संवेदनाओं को उजागर करने के लिये प्रेरित करती है ।

युग कवि महेन्द्र भटनागर स्वतंत्रता-पूर्व एवं बाद के कवि हैं । उन्होंने भारत की परतंत्रता एवं आज़ादी दोनों तरह की परिस्थितियों को देखा एवं अनुभव किया है ।

महेन्द्र भटनागरजी ने प्रगतिकाल से अपने सृजनकार्य का प्रारंभ किया। उनके काव्य में समसामयिक स्थितियों की अनुभूतियाँ उपलब्ध होती है। उनकी काव्य-सृष्टि में सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व धार्मिक परिस्थितियों का अंकन हुआ है; जो समसामयिकता से प्रभावित है। उनका आशावादी है । शोषण के विरुद्ध कवि ने अपना विद्रोही स्वर बुलन्द किया है । भाग्यवाद और नियतिवाद में उसका विश्वास नहीं । सम्पति (पूँजी) पर आधारित समाज व्यवस्था का भी कवि ने विरोध किया है । शोषण की विषमता का कारण है । ऐसी व्यवस्था पर कवि महेन्द्र भटनागर प्रहार करते हैं :

“करना होगा नष्ट-भ्रष्ट

ऐसे व्यक्ति को - ऐसे समाज को

जो आदमी-आदमी के मध्य

विभाजन में रखता हो विश्वास

अथवा

निर्धनता चाहता हो रखना क़ायम ।”

कवि महेन्द्र भटनागर के काव्य में क्रांति का आह्वान है । कवि की क्रान्तिकारी विचारधारा को जानने के लिए तत्कालीन समाज-व्यवस्था पर दृष्टिपात करना उचित होगा ।

लेकिन समकालीन परिवेश को जानने से पहले हमें एक दृष्टि स्वतंत्रता-पूर्व भारत की राजनीतिक पृष्ठभूमि पर भी डालनी होगी ।

3. *स्वतंत्रता-पूर्व भारत : राजनीतिक परिवेश :*

सन् 1857 का वर्ष राजनीति में परिवर्तन का समय माना जाता है । अंग्रेज़ों ने अपनी हुकूमत भारत में पूर्णतः स्थापित कर ली थी । भारतीय प्रजा पर अधिकार स्थापित कर लेने के बाद, उसका शोषण प्रारंभ हुआ । लेकिन 1857 में ‘सिपाही विद्रोह’ से ब्रिटिश सत्ता की नींद उड़नी प्रारंभ हुई । “1858 के एक्ट के अनुसार भारत का शासन कम्पनी के हाथों से ले लिया गया ।”[12] 1861 के भारतीय परिषद् अधिनियम के साथ ‘सहयोग नीति’ का आरम्भ हुआ । भारतीयों को प्रशासन में भाग लेने का अवसर दिया गया । ‘आर.एन. अग्रवाल’ ने इसे ‘उदारतापूर्ण अधिनायकतंत्र’ की संज्ञा दी है, क्योंकि एक ओर तो सरकार पहले की नीति के प्रति अनुत्तरदायी बनी रही और दूसरी ओर भारतीयों को शासन से सहयोग करने का अवसर प्रदान किया गया । इस नीति का अनुपालन 1919 तक किया जाता रहा ।[13] 1857 के असफल सैनिक विद्रोह के कारण “1885 ई. में इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस की स्थापना हुई, जो कि एक राष्ट्रीय संस्था थी ।”[14] ‘भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस की स्थापना ए.ओ. ह्यूम के द्वारा की गई थी ।[15] उसके उद्देश्य के विषय में लाला लाजपतराय ने लिखा है, “इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस की स्थापना का मुख्य कारण यह था कि ह्यूम अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों में बढ़ते असंतोष को रोकना तथा इसकी सहायता से ब्रिटिश राज्य को सुदृढ़ तथा सुरक्षित करना, उसे छिन्न-भिन्न होने से बचाना चाहते थे ।”[16]

वस्तुतः कॉंग्रेस की स्थापना भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए

की गई थी, किन्तु इसके साथ ही काँग्रेस की स्थापना के मूल में भारतीयों के हित का विचार और भारतीयता की भावना विद्यमान थी । "भारतीय राजनीति में उस समय दो प्रकार की विचारधारा में विश्वास करने वाले लोग थे । पहले मत के लोग हिंसा के माध्यम से ब्रिटिश शासन को समाप्त करना चाहते थे । दूसरे मत के लोग ब्रिटिश राज्य का अन्त धीरे-धीरे करना चाहते थे ।"[17] काँग्रेस के सुधार और समझौतावादी रूख़ के बावजूद लॉर्ड कर्ज़न ने 1905 में हिन्दू-मुस्लिम एकता को खंडित करने के उद्देश्य से बंग-भंग कानून पास कर काँग्रेस के उग्रवादी नेता श्री बाल गंगाधर तिलक तथा लाला लजपतराय को पूर्ण स्वराज्य की घोषणा करने के लिए विवश कर दिया । ब्रिटिश शासन के इस निर्णय के विरुद्ध देश में कई जगह विरोध हुआ । काँग्रेस में भी दो दल हो गये । परिणाम-स्वरूप भारतीयों के विरोध का दमन करने, ब्रिटिश सत्ता ने रौलट-एक्ट लागू किया । परिणाम में भारतीयों को जलियाँवाला हत्याकाण्ड में अपना लहू बहाना पड़ा । जलियाँवाला काण्ड और उसके प्रति सरकार की प्रतिक्रिया ने ब्रिटिश सरकार की न्याय-प्रियता के ऊपर से गाँधीजी का विश्वास उठ गया । वे राजभक्त से राजद्रोही बन गए । 1920 में काँग्रेस का नेतृत्व गांधीजी के हाथ में आया और उन्होंने 'असहयोग' आन्दोलन प्रारंभ कर जनगण की मुक्ति-कामना को बल प्रदान किया । "कलकत्ता काँग्रेस ने सितम्बर, 1920 में गांधीजी के 'असहयोग' आन्दोलन के प्रस्ताव को स्वीकार किया ।"[18] 10 मार्च, 1922 को राजद्रोह के अपराध में गांधीजी को 6 वर्ष का कारावास हुआ ।[19] परिणाम स्वरुप असहयोग आन्दोलन स्थगित हो गया । गांधीजी की धरपकड़ से साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे । संघर्ष और निराशा का एक लम्बा दौर प्रारंभ हुआ । 1922 में काँग्रेस का गया (बिहार) में अधिवेशन हुआ । इस अधिवेशन में काँग्रेस में फूट के लक्षण दिखाई दिये । 1923 में मोतीलाल नेहरु और चितरंजनदास ने स्वराज का संगठन किया । 1926 में चुनाव हुआ जिसमें काँग्रेस को अधिक सफलता नहीं मिली । 1927 में भारत की संविधान व्यवस्था की जाँच करने के लिए साइमन कमीशन भारत आया, जिसके सातों सदस्य अंग्रेज़ थे । भारतीय लोकमत के प्राय: सभी वर्गों ने कमीशन का विरोध किया । कमीशन जहाँ-जहाँ गया उसका काले झंडों और हडतालों से स्वागत हुआ ।[20] सन् 1930-34 में फिर से आन्दोलन हुआ ।

क्रांतिकारी दल ब्रिटिश सत्ता का विरोध कर उससे टक्कर ले रहे थे । इन आंदोलनों और क्रांति की प्रवृत्तियों को दबाने के लिए सुधार एवं दमन का आश्रय ब्रिटिश शासन ने लिया । अंग्रेज़ों ने अपने इरादों को पूरा करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम प्रजा में धार्मिक फूटनीति उत्पन्न की । अंग्रेज़ों की 'फूट डालो - राज्य करो' की नीति ने 1906 में मुस्लिम लीग को जन्म दिया । इससे काँग्रेस में फूट पड़ती गयी । 1929 में आधी रात को रावी नदी के किनारे 'पूर्ण स्वराज' की घोषणा की गई ।[21] जिस समय भारत में ''सविनय अवज्ञा आन्दोलन'' चल रहा था; लंदन में ब्रिटिश सरकार ने गोलमेज़ सम्मेलन का आयोजन किया । 1935 के एक्ट द्वारा वाइसराय ने प्रांतीय शासन गवर्नरों के सुपुर्द कर दिया । सन् 1936 में स्वामी सहजानंद की अध्यक्षता में निर्मित 'अखिल भारतीय किसान-सभा' ने 'किसान अधिकारों का चार्टर' बनाकर अपने नए कार्यक्रम की शुरूआत की ।[22] किसान-मज़दूर एकता को क़ायम रखनेवाले 'मई-दिवस' के आयोजन में भारतीय किसानों ने भी जमकर हिस्सा लिया ।

प्रान्तीय विधान मंडलों से भारतीय प्रतिनिधियों ने नाख़ुश होकर अपना त्यागपत्र दे दिया । 1939 में जर्मनी के विरुद्ध, अंग्रेज़ों ने, भारतीय नेताओं से बिना पूछे, अपने साथ भारत को भी द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल कर लिया । काँग्रेस के नेताओं के त्याग-पत्र देने से मुस्लिम लीग ने ख़ुश होकर मुक्ति-दिवस मनाया । 'मुस्लिम लीग' को अपने जन्म-काल से ही ब्रिटिश सरकार का पोषण मिलता रहा । 1940 में मुस्लिम लीग ने द्विराष्ट्र सिद्धांत के आधार पर पाकिस्तान की माँग की । विश्वयुद्ध में केवल साम्राज्यवादी ताक़तें ही शामिल नहीं थीं, बल्कि समाजवादी सोवियत संघ भी शामिल था । नेताजी सुभाषचन्द्र बोस अपनी 'आज़ाद हिंद फौज़' के साथ जापान के साथ थे । 15 फरवरी 1942 को लगभग 85 हजार ब्रिटिश सैनिकों ने जापान के आगे आत्म समर्पण कर दिया । 'आज़ाद हिन्द फौज़' ने 22 सितम्बर को 'शहीदी-दिवस' मनाया । जिसमें सुभाषचन्द्र बोस ने 'आजाद हिन्द फौज़' के सिपाहियों से 'तुम मुझे ख़ून दो मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा' की अपनी इतिहास प्रसिद्ध माँग की। 8 अगस्त, 1842 में गांधीजी ने अंग्रेजों को 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव बम्बई काँग्रेस अधिवेशन में रखा । गांधीजी के इस प्रस्ताव से काँग्रेस

कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया । नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में प्रदर्शन हुए । प्रदर्शनों को कुचलने गोलियाँ चलीं, अनेक स्थानों पर भीड़ और पुलिस के बीच खुलकर लड़ाई हुई । 1942 के इस आन्दोलन का प्रभाव पूरे देश में हुआ । इन आन्दोलनों में कई लोग मारे गए, कई घायल हुए । "सरकारी आँकड़ों के अनुसार इस आन्दोलन में 1028 व्यक्तियों की जाने गई और 3200 घायल हुए ।"[23] गैर सरकारी आँकड़ों के अनुसार इस आन्दोलन में मृतकों व घायलों की संख्या कई गुना ज्यादा थी ।

मुस्लिम लीग के नेता जिन्ना ने 1943 में 'देश का विभाजन करो और चले जाओ' का नारा बुलन्द किया । 25 जून, 1945 को नए वायसराय लोर्ड बैवल ने भारत का राजनीतिक गतिरोध दूर करने के लिए शिमला में भारतीय नेताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया । जिन्ना की हठधर्मी के कारण यह सम्मेलन भी असफल हो गया ।[24] महायुद्ध समाप्त होने पर जुलाई 1945 को इंग्लैण्ड में मजदूर-दल की सरकार स्थापित हुई, जिसकी भारतीयों के प्रति सहानुभूति थी । मजदूर-दल की सहमति से लोर्ड बैवल ने चुनाव और तदुपरांत स्वतंत्र संविधान निर्माण के लिए संविधान-सभा बुलाने की घोषणा की। जिस तरह आज़ाद हिंद फौज ने देश में अभूतपूर्व जागृति पैदा की थी; उसी तरह 1944 में नौसेना विद्रोह ने भी सरकार की आँखें खोल दीं । इसी समय ब्रिटिश सरकार द्वारा, भारतीय समस्या के समाधान हेतु, मंत्रीमंडल के तीन सदस्यों के एक मिशन को भेजने की घोषणा की गई । वायसराय लार्ड बैवल द्वारा नेहरूजी के नेतृत्व में सर्वदलीय अन्तरिम सरकार का गठन किया गया । मुस्लिम लीग ने इस सारी व्यवस्था के विरूद्ध पाकिस्तान की माँग को लेकर "16 अगस्त, 1946 को कलकत्ता में व्यापक नर संहार प्रारंभ कर दिया ।"[25] ये साम्प्रदायिक दंगे व नरसंहार जून 1947 तक चलते रहे । देश में इन साम्प्रदायिक दंगों का गहरा असर हुआ । देश की अन्तरिम सरकार इस पर काबू पाने में असफल रही और विवश होकर कॉंग्रेस ने पाकिस्तान के प्रस्ताव को अपनी सहमति दे दी । "7वीं जून, 1947 को ब्रिटिश सरकार ने भारत-पाकिस्तान विभाजन की विधिवत् घोषणा की ।"[26] 15 अगस्त को पाकिस्तान का स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में जन्म हुआ ।[27] 3 जून, 1947 को भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पार्लियामेंट में पेश हुआ जो 15 अगस्त, 1947 को पास कर दिया

गया । 15 अगस्त, 1947 को कॉंग्रेस और मुस्लिम लीग की संविधान सभाओं के हाथ देश की सत्ता सौंपकर ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वतंत्रता दी ।[28]

आर्थिक परिवेश :

भारत-भूमि पर जब देशी रियासतें शासन चलाती थीं, तब से बाहरी लुटेरों ने आक्रमण कर देश में लूट चलाने का कार्य किया था । यही लुटेरे जब देश की बागडोर हाथ में लेकर शासन करने लगे तब 'सोने की चिड़िया' के नाम से पहचाने जानेवाले भारत पर अंग्रेज़ों ने आकर भारत में व्यापार करने हेतु अपने पैर जमाये । 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने भारत में व्यापार के नाम पर अपनी सत्ता का ऐसा चक्र चलाया कि देश का शासन अपने हाथ में ले लिया । देश में पैदा होनेवाला सारा कच्चा माल विदेश भेजा जाने लगा; जिसे तैयार माल में बदलकर भारतीय बाज़ारों में बेचकर दुहरे लाभ से देश को खोखला बनाने का कार्य किया गया । देशी कुटीर उद्योग को पंगु बना दिया गया । बेकारी और भुखमरी फूलने-फलने के लिए जैसे यह पहला चरण तैयार किया गया । इस तरह भारत का धन नियमित रूप से विदेश जाने लगा और भारत एक निर्धन देश होता गया ।

श्री रजनी पामदत्त ने लिखा है -

"1814 से 1935 के बीच में ग्रेट ब्रिटेन से भारत में भेजा जानेवाला कपड़ा 10 लाख गज़ से बढ़कर 510 लाख गज हो गया । दूसरी ओर इसी समय के बीच में भारत से इंग्लैंड भेजा जानेवाला कपड़ा 12.5 लाख टुकडों से घटकर 3,00,000 टुकडे रह गया । 1844 तक यह घटकर 63,000 टुकड़े ही रह गया ।"[29] भारत में, ब्रिटिश साम्राज्यवाद से आर्थिक शोषण बढ़ गया । "उसके विषय में प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान वर्क ने ब्रिटिश संसद के सामने भारत में हो रही लूट के विषय में बताया था ।"[30] ईस्ट इण्डिया कंपनी द्वारा कृषि की अवहेलना तथा भूमिकर में वृद्धि हुई । अंग्रेज़ों की दमन-नीति में ज़मींदार भी शामिल थे ।[31] परिणाम-स्वरूप देश का कृषिउद्योग मृतप्राय होने लगा । लगातार शोषण ने किसानों की हालत अत्यंत दयनीय बना दी । डॉ. आर.सी. मजूमदार ने लिखा है : "अंग्रेजों द्वारा भूमि-कर वसूल करने की जो नयी व्यवस्था स्थापित की गई और उनमें भूमि-कर वसूल करने (उगाहने) की दर

जो निर्धारित की गई, वह इतनी अधिक ऊँची थी कि उससे किसान इतने निर्धन हो गए कि उनके पास अपने भोजन तथा कपड़े की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी धन नहीं रहा ।"[32]

भारतीय मज़दूरों की स्थिति भी किसानों से ज्यादा अच्छी न थी । उन्हें निम्नतम वेतन, खाना व आवास का निकृष्टतम स्वरुप उनके शोषण का चरमोत्कर्ष था । "1929 में सरकार द्वारा मज़दूरों के सर्वेक्षण हेतु नियुक्त 'हिटले कमिशन' की रिपोर्ट से यह तथ्य स्पष्ट होता है । नए उद्योग धंधों का अभाव और पुरानी दस्तकारी के हतोत्साहन ने तमाम मज़दूरों को वैसे भी रोटी - रोज़ी से वंचित कर दिया था । इस प्रकार जिसे भारत में अंग्रेजी राज कहते है उसकी लूट और हिंसा की कोई सीमा नहीं है ।"[33] अंग्रेज़ों की स्वतंत्र व्यापार नीति से भारतीय उद्योग-धंधों को गहरा आघात पहुँचा । परिणाम स्वरुप देश की जनता गरीब और बेकार होती गई । शिक्षित-वर्ग में असंतोष उत्पन्न होने लगा क्योंकि पढ़े-लिखे लोगों को भी बेकारी के दिन देखने पड़े । अनेक विद्वानों ने उन्नीसवीं शताब्दी के भारत की आर्थिक दशा का उल्लेख किया है । इस स्थिति पर प्रकाश डालते विलियम हण्टर ने लिखा है, "ब्रिटिश साम्राज्य में रैयत ही सबसे अधिक दयनीय है क्योंकि उसके मालिक ही उसके प्रति अन्यायी है ।"[34] अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तान की प्रजा को लूटने में कोई कसर नहीं छोड़ा । ब्रिटिश आर्थिक नीति के कारण असंतोष की भावना पैदा हुई । भारतीयों को विश्वास हो गया कि उनकी बिगड़ती हुई आर्थिक हालत के लिए उत्तरदायी अंग्रेज़ हैं, वे उनको लूटकर अपना खज़ाना भर रहे हैं ।

आर्थिक रुप से ध्वस्त हो जाने का दूसरा महत्वपूर्ण कारण दो महायुद्ध भी हैं । इन युद्धों भारतीय अर्थ-व्यवस्था को पूर्णतः तहस-नहस कर दिया । "प्रथम महायुद्ध में भारत से 3,00,00,000 पौंड ब्रिटिश सरकार ने लिए । इसके अतिरिक्त भारत ने रेडक्रॉस को दान तथा युद्ध के लिए ऋण और चन्दों के रुप में 7,50,00,000 पौंड दिए ।"[35] दोनों महायुद्धों का व्यय अन्धाधुन्ध नोटों की छपाई से वहन किया गया; जिसने देश के आर्थिक ढाँचे को निचोड़कर खोखला बना दिया ।

ब्रिटिश सरकार ने देश के किसान, मज़दूर और आम प्रजा को किसी-

न-किसी बहाने लूटने का कार्य जारी रखा । उनकी कंगालीयत के सुधार हेतु कोई आर्थिक सहाच्य नहीं दिया गया । अतः भारतीय प्रजा अंग्रेज़ी सत्ता से छुटकारा पाने के लिए व्याकुल हो उठी और राष्ट्रीय आन्दोलन में उसने सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया । 1920 के बाद किसान-सभाओं, मज़दूर संगठनों और ट्रेड यूनियनों ने अस्तित्व में आकर देश में आन्दोलन किए । गुरुमुख निहाल सिंह के शब्दों में, "इस तथ्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता कि देश की बिगड़ती आर्थिक दशा तथा सरकार की राष्ट्र-विरोधी आर्थिक नीति का अंग्रेज़ विरोधी विचार तथा राष्ट्रीय भावना को जगाने में काफ़ी हाथ था ।"[36]

धार्मिक परिवेश :

19वीं सदी में ब्रिटिश सत्ता ने भारतीय शासन को अपने हाथ लेकर धार्मिक परिवर्तन का श्री गणेश किया । गोरों ने भारत में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए बाइबिल का अनुवाद यहाँ की भाषा में करवाया । भारत की ग़रीब और लाचार प्रजा को दमन व पैसों के बलबूते पर धर्म-परिवर्तन करवाना शुरू किया । अंग्रेज़ों ने अपने इस कार्य को सिद्ध करने के लिए 'थियोसोफ़ीकल सोसायटी' की स्थापना की । इस समय भारतीय प्रजा में कई कुरीतियाँ और रूढ़ियाँ विद्यमान थीं; जो जन-मानस को तोड़ने में सक्रिय थीं, इनमें मूर्तिपूजा व जातिभेद प्रमुख हैं ।

अंग्रेज़ी साहित्य से प्रभावित होकर, भारतीय बुद्धिजीवी लोगों ने इन रूढ़ियों से भारतीय समाज को बाहर निकालने के अथाह प्रयत्न किए । इस नवजागरण की शुरूआत बंगाल के राजा राममोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना से की । यह संस्थान पूर्णतः भारतीय धर्म व उसके विस्तार पर आधारित था । हिन्दू धर्म में एकेश्वरवाद और सामाजिक क्षेत्र में स्त्री-सम्मान को महत्व दिया जाना चाहिए; जैसे विचारों को बल दिया गया । राजा राममोहन राय ने 'सतीप्रथा' को, कम्पनी सरकार की मदद से, निषिद्ध घोषित करवाया । साथ ही, मूर्ति-पूजा व जाति-वाद का विरोध भी हुआ; जिसे ठाकुर देवेन्द्रनाथ, केशवचन्द्र सेन जैसे महारथियों ने जनांदोलन का रूप देकर आगे बढ़ाया ।

ब्रिटिश प्रभाव के बहाव में जब भारतीय धर्म डगमगा रहा था तब उसे

ठोस आधार देने का कार्य महाराष्ट्र के गोविंद रानाडे तथा गुजरात के दयानंद सरस्वती ने किया । स्वामी दयानंद सरस्वती ने 'आर्य-समाज' की स्थापना कर प्राचीन वैदिक धर्म को पुनर्जिवित करने का कार्य किया ।

रामकृष्ण परमहंस ने अपने स्वानुभूत सत्य के आधार पर सर्व-धर्म को समान दर्ज़ा दिया और धार्मिक भेदों को दूर किया । उनके अधूरे कार्य को पूरा करने का ज़िम्मा स्वामी विवेकानंद ने लिया । जिन्होंने वेदान्त के अद्वैतवाद के आधार पर - ईश्वर एक है की भावना पर बल दिया । साथ ही, उन्होंने समाज में फैले अन्ध-विश्वास, रूढियों तथा छूआछूत की कटु आलोचना कर नए सामाजिक परिवर्तन किए । एक धार्मिक व्यक्ति होते हुए भी वे भारत को तटस्थ संन्यासियों का देश नहीं बनाना चाहते थे । वे भारतीयों में लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद की नाडियाँ देखना चाहते थे ।"[37] भारतीय धार्मिक उत्थान में उन्हें अधिक रुचि थी; जो समय-समय पर दिये गए उनके वक्तव्यों में स्पष्ट होती है । धार्मिक क्रांतिकारी इस युग-पुरुष का शिकागो विश्व-धर्म-सम्मेलन में दिये गये भाषण को याद कर आज भी प्रत्येक भारतीय गौरव का अनुभव करता है ।

19वीं सदी में, धार्मिक परिवर्तन करने में महत्वपूर्ण योगदान कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का भी है । उन्होंने 'शांति निकेतन' व 'विश्वभारती' की स्थापना कर भारतीय समाज में फैले धार्मिक कुरिवाजों को दूर करने का महत्वपूर्ण प्रयास किया ।

महर्षि अरविन्द भी इसी श्रेणी के एक अगला चरण हैं । जिन्होंने भारतीय प्रजा को, अपने दार्शनिक विचारों से प्रभावित कर, नई राह पर लाने का प्रसंशनीय कार्य किया ।

1920 के अंग्रेज़ों ने भारत का धार्मिक विभाजन कर और भारत के विभिन्न सम्प्रदायों को आपस में लड़ाकर अपने राजनीतिक स्वार्थ को पूर्ण करने का कार्य किया । देश में चारों और धर्म के नाम पर दंगे हुए । "1922 में हुए दंगों में कई लोगों की जाने गई । और धर्म के नाम पर भारत का विभाजन हिन्दू-मुस्लिम धर्म के रूप में हुआ ।"[38] सीख सम्प्रदाय में भी धर्म

के नाम पर दंगे हुए । जिसे अंग्रेजों ने ही शुरु किया । भारत का जब धार्मिक विखंडन हो रहा था; उस वक़्त महात्मा गाँधी ने भगवद् गीता के आधार पर सत्य, अहिंसा को महत्व दिया । उन्होंने मनुष्य-धर्म को महत्व दिया । लोगों की पीड़ा को दूर करना ही सच्चा धर्म है; यह उन्होंने अपने कार्यों से सिद्ध किया । वे मानते थे कि 'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने' धर्म को उन्होंने महत्व दिया। सत्य व अहिंसा के का महत्त्व प्रतिपादित कर उन्होंने भारतीय समाज और विश्व को नई दिशा दी ।

19वीं शती के इन्हीं राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक परिवेश से प्रभावित होकर स्वतंत्र भारत का चित्र बना है; जिसमें कहीं भी कोई दाग है तो उसे लगाने में, परतंत्र भारत की उपरोक्त स्थिति कहीं-न-कहीं ज़िम्मेदार है ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर के काव्य लेखन का प्रारंभ 1941 से हुआ । उन्होंने भारत की स्वतंत्रता-पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर राजनीति का अनुभव किया है। राजनीति से वे अपने को नहीं बचा पाये । उनकी कविताओं में राजनीतिक उथल-पुथल के चित्र देखने को मिलते हैं ।

सन् 1940 में महात्मा गाँधी ने सीमित व्यक्तिगत सत्याग्रह आरंभ किया । यह आन्दोलन बड़ा असरकारक हुआ । ब्रिटिश सरकार ने इस आन्दोलन को दबाने के लिए करीब "25000"[39] व्यक्तियों को जेल भेज दिया। यह युग भारतीय स्वाधीनता संग्राम का अंतिम चरण और स्वतंत्रता-प्राप्ति का उषाकाल थी । 'भारत छोडो'[40] आन्दोलन का प्रखर ताप, पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को उग्र बना रहा था । यह परिवेश जन-मानस को आरपार की लड़ाई के लिए प्रेरित कर रहा था । यह काल संघर्ष का निर्णायक चरण था तो दूसरी ओर अनेक गांधीवादी मूल्यों के ह्रास का साक्षी भी था । हिन्दू-मुस्लिम एकता और भ्रातृभाव, अहिंसा, सोहार्द आदि मानवीय मूल्य राजनीतिक स्वार्थों के समक्ष धराशायी होने लगे थे । "मो. अली जिन्ना ने 1940 में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में कहा कि हिन्दू धर्म और इस्लाम शाब्दिक अर्थ में धर्म नहीं हैं प्रत्युत दो सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं । हिन्दू और मुसलमान कभी संयुक्त राष्ट्र के रूप में नहीं रह सकते ।"[41]

राजनीति के उथलपुथल वाले इस माहौल में केवल गांधीजी ही थे जो

सही निर्णय ले सकते थे । गांधीजी ने 8 अगस्त, 1942 को बम्बई में काँग्रेस महासमिति की बैठक में 'भारत छोडो' प्रस्ताव पेश करते समय कहा था कि उनका अब भी अहिंसा में दृढ़ विश्वास है और वह वही गांधी हैं जो 1920 में थे ।[42] गांधीजी की यह अहिंसा की ताकत कवि डॉ. महेन्द्र भटनागर की कविता में अवतरित है । यथा :

"शक्ति लोह के समान ले
प्रहार सह सकेगा जो
जी सकेगा वह !
समाज वह -
एकता की शृंखला में बद्ध,
स्नेह-प्यार-भाव से हरा-भरा
लड सकेगा आँधियों से जूझ !"[43]

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में आज़ाद हिन्द फौज का क्रांतिकारी सहयोग रहा । हाँलाकि सुभाषचन्द्र बोस के विचार गांधीजी की विचारधारा से नहीं मिलते थे । देश में क्रांतिकारी माहौल बनाने में सुभासचंद्र बोस का आह्वान महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ । इसीसे प्रेरणा पाकर 1944 में बम्बई में नौसेना विद्रोह हुआ । नौसेना के विद्रोह ने भी सरकार के हाथ पाँव फुला दिये ।[44] इस विद्रोह को कवि ने अपनी कविता में वाणी दी है :

"नौसैनिक चले मिलकर जहाजों को उड़ाने को,
भीषण गोलियाँ बरसी गुलामी को मिटाने को ।
x x x x x x x
यह साम्राज्यवादी गढ़ विकल हो बौखलाया था,
जिसने शक्ति का कण-कण कुचलने में लगाया था ।"[45]

कवि ने एक ओर भारतीय नौ-सेना के विद्रोह की यशगाथा गायी है; वहीं उसे प्रेरित करनेवाली 'आज़ाद हिन्द फौज' को भी वह भूला नहीं है । 'जय

हिन्द' कविता में कवि 'आज़ाद हिन्द फौज' के सैनिकों की यशगाथा गाता है । कवि जैसे स्वयं उस फौज़ का एक सिपाही प्रतीत होता है । वह गाता है :

"हिन्द फौज़ का स्वतंत्र वीर
गिरि, समुद्र वन विशाल चीर,
मृत्यु-द्वार-सा मिला समीर,
आफतें कठिन, चरण रुके न
पंथ पर सदा बढ़े प्रवीण !"[46]

(जय हिन्द !)

कवि महेन्द्र भटनागर ने अपने कवि को पूर्णतः स्वातंत्र्य सेनानी बना दिया है । गांधीजी के देश-व्यापी आन्दोलन ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया । 'जलो-जलो' कविता में वह यही बात कहता है । यथा :

संघर्षों की ज्वाला में जलो-जलो !
बलिदान-त्यागमय जीवन हो,
कारागृह की शांति-सदन हो,

कवि को देश की स्वतंत्रता के लिए यदि जेल जाना पड़े तो वह उसे शांति-सदन का एहसास प्रदान करने वाला होगा । लड़ते लड़ते यदि मृत्यु भी आये तो उसे स्वीकार करने का आह्वान वह 'जलो-जलो' शीर्षक कविता में करता है ।

भारतीय समाज ने ब्रिटिश शासन के अत्याचार बहुत सहन किये । अब स्वतंत्रता ही एकमात्र विकल्प है; यह बात कवि देश के नवयुवकों से कहता है । यथा -

जागो, हे जीवन जागो !
कूल बढ़े हैं नदियों के,
सोये जागे सदियों के
x x x x
बंदी युग-यौवन जागो !
जागो, हे जीवन जागो ![47]

गांधीजी के 'भारत छोडो' आन्दोलन को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने "1942 को गांधीजी तथा काँग्रेस कार्यसमिति के अन्य सदस्य गिरफ़्तार कर लिए गए । नेताओं की आकस्मिक गिरफ़्तारी से जनता भड़क उठी और सारे देश में आन्दोलन आरंभ हो गया । कई स्थानों पर आंदोलन अहिंसक न रह सका । यह अब तक देश का सबसे बड़ा आंदोलन था ।"[48] कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में इस आन्दोलन का धुँआ देखने मिलता है । 'बलिपंथी' का कवि गाता है -

"हम कब पथ में रुकते है ?

परिणामों की परवाह न, हम तो कर्मों में तत्पर

पल-पल का उपयोग यहाँ, खोने पाये कब अवसर ?"[49]

गांधीजी ने 1930 में दांडीयात्रा के समय कहा था कि 'कौओं और कुत्तों की तरह मर जाऊँगा पर स्वराज्य प्राप्ति बिना इस आश्रम में वापस नहीं आऊंगा ।' कवि महेन्द्र भटनागर 'बलिपंथी' में वही प्रतिज्ञा जैसे दोहराते हैं । यथा :

"जंज़ीरों को तोड़े बिन हम चैन तनिक ना लेंगे -

निज उद्देश्यों के हित जीवन में सब सह सकते हैं !

हम कब पंथ में रूकते हैं ?"[50]

गांधीजी ने सत्य व अहिंसा से देश की स्वतंत्रता पाने की राह अपनायी थी । इस राह पर अगर जीत मिले तो ही सच्ची स्वतंत्रता है । यही बात कवि महेन्द्र 'अभय' कविता में करते हैं । यथा :

हूँ नये युग का मनुज मैं, बद्ध हो पाया न जीवन,

मार्ग में रुकना कहाँ जब पा रहा युग का निमंत्रण

यदि बदल पाया ज़माना, है तभी सार्थक जवानी !

कवि महेन्द्र भटनागर ने 1942 से भडके स्वाधीनता-संग्राम को अपने काव्य में चित्रित किया है ।

भारत में अंग्रेज़ी सत्ता को जब अपना अस्तित्व ख़तरे में लगा तब

उसने 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनाई । परिणाम-स्वरूप भारत की एकता को उन्होंने दो धार्मिक दलों में विभाजित कर दिया । परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम राष्ट्र की माँग बलवती होती गयी । यही बात कवि महेन्द्र भटनागर ने 'विकल है देश' में की है । यथा

"पड़ी कटु फूट आपस में, नहीं है मेल किंचित भी,
निरंतर बढ़ रहे नव दल, विभाजन है नवीन अभी ।"

ब्रिटिश सत्ता का अमानवीय रूप बंगाल में जब अकाल पड़ा तब दिखायी दिया है । इस अकाल में लोग दाने-दाने के लिए तरस गये थे । लेकिन अंग्रेज अपनी तिजोरियाँ भरने में लगे रहे । कवि महेन्द्र भटनागर इस घटना को कुछ इस तरह चित्रित करते हैं :

कौन देखे ? कौन रोये ? सड़ रहे मानव घरों में !
बंग भू पर हो रहा क्रन्दन-मरण व्याकुल स्वरों में !

यह दृश्य ऐसा था कि विश्व के हर व्यक्ति को इन लोगों के प्रति सहानुभूति हो जाना स्वाभाविक था । पर, ब्रिटिश-सत्ता अप्रभावित रही । यथा :

"कह रहा जग आज सारा न्याय क्या, अन्याय है
आज का शासन कहाँ असहाय है, निरुपाय है ?"

(बंगाल का अकाल)

आज अंतिम दृश्य देखो नाट्य-घर बंगाल में आ
आज धड़कन, आज कंपन हो बुभुक्षित के स्वरों में !

डॉ. महेन्द्र भटनागर के साहित्य-सृजन का प्रारंभ स्वातंत्र्यपूर्व से हुआ; जो स्वतंत्रता के बाद से अद्यतन गतिशील है ।

"15 अगस्त, 1947 भारतीय इतिहास में ही नहीं, विश्व-इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण दिन है । इस दिन, करीब 200 सालों की अंग्रेजों की अधीनता से भारत स्वतंत्र हुआ और उसे अपने हाथों अपनी नियति बनाने-सँवारने का सुअवसर मिला । भारत की यह आज़ादी अपने आप में निराली थी । देश ने गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक रीति से सत्याग्रह द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त की

थी। संसार के इतिहास में विरोधी से लड़ने का यह अनोखा अस्त्र था । इतिहास का सबसे ताक़तवर साम्राज्य हँसते-हँसते विदा ले गया ।”[51]

भारत में संविधान-सभा की बैठक 14 अगस्त को आधी रात को हुई। रात के बारह बजते ही, पन्द्रह अगस्त को, जवाहर लाल नेहरु ने, संविधान-सभा को संबोधित करते कहा - “आधी रात की इस घड़ी में जब दुनिया सो रही है भारत जागकर जीवन और स्वतंत्रता प्राप्त कर रहा है । एक क्षण ऐसा आता है जब हम पुराने युग से नये युग में क़दम रखते हैं, जब एक युग ख़त्म होता है और जब एक राष्ट्र की अरसे से दबी आत्मा बोल उठती है । यह बहुत ही अच्छी बात है कि इस पवित्र क्षण में हम भारत और उसकी जनता की सेवा और उससे भी बढ़कर हम मानवता की सेवा करने की सौगंध लेते हैं ।”

भारत की स्वतंत्रता से खुश लोगों की मुस्कुराहट अधिक समय तक न रह पायी । आज़ादी के साथ ही, बँटवारे के विधान ने व्यापक नर-संहार, मानवता पर बलात्कार की स्थितियाँ पैदा कर दीं । साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। कवि महेन्द्र भटनागर ने अपनी कविता ‘साम्प्रदायिक दंगे’ में उसी का चित्र अंकित किया है । यथा :

“नगर-नगर व गाँव-गाँव में, दहक रही यह आग है,
डगर-डगर व पाँव-पाँव पर भभक रही यह आग है ?”[52]

भारत-पाक विभाजन अंग्रेजों की कुटिलता का परिणाम था । कट्टर-पंथियों ने मज़हब और खुदा के नाम पर देश का बँटवारा करवाया ।

“तुम्हें क़सम है चाँद की, तुम्हें क़सम है पाकतम कुरान की,
तुम्हें क़सम ज़मीन की तुम्हें क़सम है आसमान की ।”

x x x x x x x x x

“मदद करो निरीह की, उठो न, क्योंकि कर्बला के वीर हो,
अरब महान देश के बहादुरो ! उठो की तुम अमीर हो !”

(साम्प्रदायिक दंगे)

स्वातंत्र्य सेनानियों ने यह ख्वाब देखा था कि अंग्रेज़ भारत छोड़कर

चले जाएगें तब अपना देश और अपना राज होगा । मगर उनका यह स्वप्न मिट्टी में मिल गया ।

कवि महेन्द्र भटनागर ने 'आजाद मस्तक को उठा लेता' कविता में भारत-पाक बँटवारे का चित्रण किया है :

"क्या पता था देश का यह भाग्य आएगा ।

दूर हो अंग्रेज़ बैठा मुस्कुराएगा !

काट डालेंगे गले लड़ आज आपस में

हिंद की औलाद को यह रूप भाएगा ।"[53]

भारत-पाक बँटवारे के साथ 30 जनवरी, 1948 को महात्मा गांधी की हत्या के रूप में देश को आज़ादी की सबसे बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी । महात्मा गांधी के निधन पर कवि महेन्द्र भटनागर ने उनको श्रद्धा सुमन चढ़ाते हुए लिखा है :

"प्राची के उगे तुम सूर्य

सहसा बुझ गये !

पर, तुम्हारी फैलती ही जा रही है ज्योति !"[54]

स्वतंत्र भारत ने 26 जनवरी, 1950 को सम्पूर्ण सत्ता सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य के रूप में देश का संविधान लागू किया । आज़ाद भारत की राजनीतिक समस्या थी 'देशी राज्यों' के एकीकरण की । 'देशी राज्यों की संख्या 562 थी ।'[55] ये राज्य सारे देश में फैले हुए थे । देशी रियासतों के एकीकरण के सवाल को श्री वल्लभभाई पटेल ने देशी राज्यों को कुछ विशेषाधिकार दिए जाने की शर्त मानकर हल किया ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर ने 'देशी रजवाड़े' कविता में राजाओं के कुशासन और अंग्रेज़ों के प्रति उनकी दासता का चित्रण किया है । यथा :

"प्रतिगामी जनता के दुश्मन

जो जन-बल के सदा विरोधी,

जिनने जनता के शव पर चढ़

किया अभी तक चौपट शासन !"

देशी रियासतों में जमींदारों और अंग्रेज़ों ने मिलकर भारत की प्रजा को लूटा है । राजा और नवाब मात्र सुरा-सुन्दरी में मस्त थे । अंग्रेज़ों ने सहज ही इन रियासतों को उनसे हथिया लिया । कवि उसी पर अपनी व्यथा को वाणी प्रदान करता कहता है :

"जन घोर उपेक्षा, लगा दिया
यहाँ जमींदारों का जमघट
अंग्रेज़ों को शीश झुकाया
औ' भारत का अपमान किया ।"

स्वतंत्र भारत ने देशी रियासतों को 'भारत संघ' में मिलाया । 1971 के मध्यावधि चुनावों के बाद इन रियासतों के सारे अधिकार समाप्त कर दिये गये ।

कवि महेन्द्र भटनागर ने केवल राजनीति का चित्रण ही नहीं; राजनीति के सत्यनिष्ठ स्वरूप का भी चित्रण किया है । वे किसी राजनीतिक दल से जुड़े नहीं । आम जनता का राजनीति में जो दख़ल होता है, वही उनके जीवन में रहा । वे राजानीतिक कुचक्रों को दूर रहे जब स्वराज्य मिला तो उसका असर उन पर भी हुआ । 'जागरण' का कवि स्वतंत्रता की ख़ुशियाँ बाँटता हुआ गाता है :

"मिट चुकी है रात काली,
छा रही है आज लाली,
हो रहा कलरव मनोहर
जागरण-बेला यही है, प्राण ने पहचान ली है !"[56]

कवि महेन्द्र की कविता के भाव ओढ़े हुए नहीं हैं, उनमें भोगे हुए सत्य का चित्रण है । जहाँ भी कवि की भावना को ठेस पहुँची है; वहाँ उनका स्वर विद्रोही हो गया है । यहाँ वे समग्र मानव समाज के प्रतिनिधि के रूप में पेश आए हैं । विद्रोह का स्वर आंतरिक प्रेरणा का परिणाम है । परिवर्तन की आकांक्षा ज्ञानात्मक स्तर पर विचारों को मूर्त एवं ठोस आकार देती है ।

राष्ट्रीयता कविताओं में देश-प्रेम की भावना सर्वाधिक सबल है ।

महेन्द्र जी राष्ट्रभावना के कवि हैं । उनकी काव्य-अनुभूति में तत्कालीन जीवन और चेतना सन्निहित है । कवि महेन्द्र भटनागर की कविताओं में स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक वातावरण प्रतिबिम्बित है ।

जवाहरलाल नेहरू आजाद भारत के प्रथम प्रधानमंत्री हुए । उन्होंने देश व मानवता की सेवा का स्वप्न सँजोया था । देश की स्थिति में सुधार, नव-निर्माण और व्यापक समृद्धि के लिए 1951 में पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारंभ किया । 1951 से आज तक 10 पंचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं । वर्तमान में केन्द्र में काँग्रेस की मिली जुली सरकार है । पंचवर्षीय योजनाओं ने यथासंभव अपना असर दिखाया । किन्तु देश में आज भी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक भ्रष्टाचार पनप रहे हैं । राजनीति में सर्वाधिक भ्रष्टाचार व्याप्त है । राजनीतिक व्यक्ति अपना चरित्र खो चुका है । भारत की स्वतंत्रता को 60 साल पूरे हो चुके हैं लेकिन स्वतंत्रता का लाभ मात्र गिने-चुने पूँजीपतियों और राजनीतिज्ञों को ही मिला है । आम आदमी अपने को स्वतंत्र नहीं समझता ।

स्वतंत्रता मिलते ही भारत के विरुद्ध विदेशी साम्राज्यवाद के कुचक्र गतिमान हो गये थे । साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने भारत को परेशान करने पाकिस्तान को नवीनतम अस्त्र-शस्त्र दिये और 'सीटो' और 'नाटो' जैसे सैनिक गुटों में उसे शामिल किया । भारत की स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अंतराष्ट्रीय क्षेत्र में भारत की विदेशनीति पंचशील के आधार पर निर्धारित की । अन्तराष्ट्रीय क्षेत्र में शांति और भाईचारे को महत्व दिया गया । मगर, भारत के इसी भाईचारे की भावना को 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' कहने वाले चीन ने 1962 में भारी झटका दिया । चीन के हमले के बाद, एक और आक्रमण हुआ जो 1965 में पाकिस्तान ने किया । इस युद्ध के दौरान ताशकंद समझौता हुआ जो कोई हल नहीं निकाल पाया । तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री का संदेहात्मक अवस्था में निधन हुआ, जिससे भारत को मानसिक और भावात्मक चोट लगी । इस प्रकार भारतीय संघ राजनीति का चुनौतियों का सामना करता रहा । राष्ट्र के विभाजन और उससे उत्पन्न अव्यवस्था ने देश के प्रत्येक पहलू पर करारा घात

किया । साथ ही चीन व पाकिस्तान के युद्धों ने भी देश को गंभीर चुनौती दी। भारत का राजनीतिक व सामाजिक वातावरण उद्वेलित होता रहा ।

महेन्द्र भटनागर स्वतंत्र भारत की इन स्थितियों का अनुभव करके बढ़ते रहे हैं । आम जनता की मानसिकता को भी उन्होंने जाना व अनुभव किया है ।

स्वतंत्र भारत की राजनीतिक सफलता का प्रमुख कारण था नेहरु का समाजवाद । लेकिन जब पंचवर्षीय योजनाओं से देश का वांछित विकास नहीं हुआ तो काँग्रेस के प्रति आम जनता में असंतोष बढ़ता गया ।

वयस्क मताधिकार के आधार पर देश में क्रमशः 1952, 1957, 1962, 1967, 1970 में आम चुनाव हुए जो पूर्णतः लोकतंत्रात्मक रीति से सम्पन्न हुए । तत्पश्चात् होनेवाले चुनाव गंदी राजनीति से प्रभावित रहे । ये चुनाव वोटों की राजनीति पर आधारित रहे, जो धन, बल, धर्म, जाति, सत्ता व शराब से नियंत्रित थे । इन हालातों ने लोकतंत्र की नींव को हिलाकर रख दिया । स्वतंत्रता के पश्चात् क्रमशः जवाहरलाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, श्रीमती इन्दिरा गाँधी, मोरारजी देसाई, चौधरी चरण सिंह प्रधानमंत्री बने । श्रीमती इन्दिरागांधी 14 जनवरी 1980 को पुनःप्रधानमंत्री बनीं और 31 अक्टूबर, 1984 तक अपने पद पर रहीं । 31 अक्टूबर, 1984 को उनके निवास स्थान पर उनके अंगरक्षकों ने ही गोली मारकर उनकी हत्या कर दी ।[57] श्रीमती इन्दिरा गांधी के मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र राजीव गांधी प्रधानमंत्री पद पर आसीन हुए, जो 1989 तक प्रधानमंत्री बने रहे ।

राजनीति में भ्रष्टाचार का मुद्दा उछालकर, राजीव गांधी के वित मंत्री विश्वनाथ प्रतापसिंह ने साम्यवादियों तथा भारतीय जनता पार्टी की बाहरी सहायता से 'जनता दल' की सरकार बनाई; जो केवल 11 माह चली । 10 नवम्बर, 1990 से 21 जून 1990 तक काँग्रेस के बाहरी दल के सहयोग से चन्द्रशेखर ने जनता-दल के एक विभाजित गुट के साथ सरकार चलाई । जून 1990 में दसवीं लोकसभा के निर्वाचन हुए, जिनमें काँग्रेस सबसे बड़े राजनीतिक दल के रूप में उभरी । पी.वी. नरसिंहराव के नेतृत्व में काँग्रेस की सरकार बनी; जो 1996 तक काम करती रही । अप्रैल, 1996 को अप्रैल, मई में ग्यारहवीं लोकसभा के निर्वाचनों में किसी एक को पूर्ण बहुमत नहीं मिला।

इन निर्वाचनों में भारतीय जनता पार्टी सबसे बड़े राजनीतिक दल के रूप में सामने आयी ।

16 मई को भारतीय जनता पार्टी के नेता अटल बिहारी बाजपेयी भारत के प्रधानमंत्री बने । बाजपेयी ने भाजपा सरकार का गठन अवश्य किया पर वह लोकसभा में विश्वासमत न पा सकी । काँग्रेस ने भी सरकार बनाने से इन्कार कर दिया । फलत: 13 दलों के संयुक्त ऐजण्डा वाली सरकार बनी । काँग्रेस ने बाहर से समर्थन देने का वादा किया । प्रधानमंत्री के पद पर कर्णाटक के मुख्यमंत्री एच.डी. दैवेगौड़ा आये; जिन्होंने 1 जून, 1996 को प्रधानमंत्री का पद ग्रहण किया । मार्च 1997 को काँग्रेस ने दैवेगौड़ा सरकार से अपना अपना समर्थन वापस ले लिया । 1997 को श्री इन्द्रकुमार गुजराल संयुक्त मोर्चे के नेता बने । काँग्रेस के समर्थन से उन्होंने 13 दलों की मिली जुली सरकार बनाई । तत्पश्चात् अटल बिहारी बाजपेयी भाजपा के नेतृत्व में पुन: प्रधानमंत्री बने । जिन्होंने मिली जुली सरकार की रचना की । वर्तमान में काँग्रेस के नेतृत्व में प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री पद पर भारत का शासन चला रहे हैं । राष्ट्रपति पद पर भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीप्रतिभा पाटिल ने कार्यभार सँभाला है ।

वर्तमान राजनीति मात्र धर्म, जाति, मनी पावर व मसल्स पावर के आधार पर चल रही है । देश के सामने आज भी कई राजनीतिक मामले ऐसे हैं जिनका कोई हल नहीं हो पा रहा है । जिनमें प्रमुख समस्या राम-जन्मभूमि की है जो हिन्दुत्व से जुड़ी है । बाबरी ध्वंस पर धर्म के नाम पर दंगें हुए । साम्राज्यवादी ताकतें आज भी जम्मू-कश्मीर की बर्फीली चट्टानों को लहू से रँग रही हैं । ‘समझौता एक्सप्रेस’ राजनीतिक समस्या का सबसे बड़ा प्रश्न-चिह्न है । फिर भी राजनीतिक गुरु अपने नीजी स्वार्थ-सिध्धि के लिए देश की समाजवादी भावना की बलि चढ़ाते रहे हैं ।

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में इसी राजनीति के भ्रष्ट रूप का चित्रण मिलता है ।

आज़ादी के 60 साल पूरे होने को है; फिर भी देश की जनता राजनीतिज्ञों के हाथों लूट का शिकार बनत रही है । देश के रक्षक आज भक्षक

बनकर मानवता को कलंकित कर रहे हैं । राजनीतिक स्वार्थ को पूरा करने देश के संविधान में कई बार काट-छाँट की जा चुकी है । "संविधान बने देर न हुई थी कि राजनीतिक चूहों ने उसे कुतरना शुरू कर दिया । सरदार पटेल और जवाहरलाल नेहरू के समय में ही भीतर ही भीतर षड्यंत्र चल पड़े थे और देश के राजनीतिक प्रासाद में दरारे पड़ने लगी थीं ।"[57]

देश में स्वतंत्रता के पश्चात् राजनीतिक स्तर पर विशद उथल-पुथल होती रही और आम आदमी इससे प्रभावित होता रहा । स्वतंत्रता के पश्चात् राजनीति के फलक पर जनतांत्रिक नींव रखी गई थी, जिसमें प्रभुता-सम्पन्न, धर्म-निरपेक्ष, शोषणमुक्त, कल्याणकारी शासन की कल्पना की गई थी।[58] संविधान में, मौलिक अधिकार देश की समस्त जनता को देते हुए पारस्परिक सौहार्द युक्त प्रगतिशील राष्ट्र के स्वप्न सँजोये गए थे, लेकिन यह धारणा असफल रही । आज राष्ट्र लालफीताशाही, हिटलरशाही और सताशाही की गिरफ्त में है । इन 60 सालों में देश का राजनीतिक वातावरण बदलता रहा है, लेकिन समस्त सत्ताधिपतियों की मनोवृत्ति वही घोर स्वार्थी रही है ।

समकालीन समय में राजनीति ही सब समस्याओं की जड़ है; तब एक साहित्यकार या कवि इस समस्या के घेरे से कैसे बच सकता है । "यह सच है कि समकालीन राजनीति से साक्षात्कार करना कवि का एक आवश्यक अंग बन जाता है, क्योंकि राजनीतिक परिस्थितियों का प्रत्यक्ष अथवा प्रछन्न प्रभाव आम आदमी के जीवन में अनिवार्य रूप से पड़ता है । वह राजनीतिक गतिविधियों को आत्मसात् करता हुआ उन्हें अपना 'कथ्य' बनाता है । यद्यपि यह कर्म सीधे-सीधे राजनैतिक क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय भाग लेने से भी कठिन है ।"[59] साहित्यकार किसी राजनीतिक दल से जुड़कर राजनीतिक सत्य उजागर नहीं कर सकता । राजनीति की वास्तविकता वह उससे दूर रहकर ही सामने ला सकता है ।

राजनीति और साहित्यकार के विषय में प्रसिद्ध समालोचक अशोक वाजपेयी जी का मत है - "अगर कवि ने अपने को विचारों से, ख़ासकर राजनीतिक विचारों से, जो आज की दुनिया में इतने प्रभावशाली हैं, अपने को काट लिया है या अलग रख़ा है तो फिर नये कवि का यह दावा कि वह

समकालीन सच्चाई का साक्षात्कार करने की कोशिश कर रहा है व्यर्थ हो जाएगा । राजनीति को दरकिनार रखकर समकालीन सच्चाई का कोई साक्षात्कार सार्थक और प्रासंगिक नहीं हो सकता ।"[60]

डॉ. महेन्द्र भटनागर ने स्वतंत्रतापूर्व व स्वातंत्र्योत्तर राजनीति का अनुभव किया है और अपनी कविता में रूढ़िवादी राजनीति के बदलाव के लिए आह्वान किया है । वे राजनीतिक परिवर्तन द्वारा नवयुग का निर्माण करना चाहते हैं । यथा :

"मैं नवयुग का अग्रदूत हूँ, नयी व्यवस्था का निर्माता,

मैं नवजीवन का गायक हूँ, साधक अभिनव प्राणद स्वर का ।"[61]

x x x x x x x x

"मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग को निर्मित करने वाला हूँ ।"[62]

डॉ. महेन्द्र भटनागर ने स्वाधीनता संग्राम की राजनीति को भी कविता में चित्रित किया है ।

सन् 1942 में गांधीजी के आह्वान पर जब जनांदोलन हुआ तब ब्रिटिश सत्ता को अपने अस्तित्व का खतरा महसूस हुआ ।

गांधीजी के स्वतंत्रता-आन्दोलन से अंग्रेज भारत को 'स्वराज्य' देने के लिए तैयार हो गए थे । कवि 'तारो के गीत' की 'मेघकाल में' शीर्षक कविता में कहता है

"जब बरसते मेघ काले,

ओर ओले नाशवाले

भर गए लघु-गहन नाले,

विश्व का अन्तर दहलता

मुक्त होने को मचलता

शीत में, पर, मौन गलता ।"[63]

युग-कवि ने युग धर्म की पुकार सुनी है, इसलिए जीर्ण पुरातन जड़

बंधनों को समाप्त करने के लिए उसने विश्व के उस पार की अनुभूतियों और कल्पित संसार को अपनी कविता से दूर रखा है -

"तोड़ बंधन, आज जग को
मुक्ति के पथ पर चला दूँ,
हर सड़े, विश्वास मिथ्या,
खोदकर जड़ से बहा दूँ,
है यही कर्तव्य मेरा,
इसलिए ही मुक्त-वाणी ।"

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में जागरण के स्वर मिलते हैं जो उनकी स्वतंत्र वृति के परिचायक हैं :

बंदी युग-यौवन जागो !
जागो, हे जीवन जागो !

कवि की जागृति हर प्रकार के शोषण के विरुद्ध है । वह 'बलिपंथी' कविता में कहता हैं :

आज़ादी आन्दोलन में सिर देनेवाले सैनिक
अत्याचारों से डरकर, कब दुर्बल बन झुकते हैं ?

महेन्द्र भटनागर के काव्यों में युग-धर्म का पक्ष प्रबल है । वास्तविकता को सामने रखकर उन्होंने काव्य-रचना की है । उनका यह सत्य अनुभूत वास्तविकता है । उनके काव्य का भाव काल्पनिक न होकर वास्तविक है । वे कहते हैं :

"झूठ, मिथ्या-कल्पनाओं का नहीं है अब ठिकाना
मिट चुकी हैं पूर्ण जड़ से, अब न उनका है बहाना
टिक सकी बातें अरे क्या खोखली जो सब तरफ़ से
आज कण-कण ढह चुका है, कौन जो उनको उठाता ?
विश्व के उस पार की, कवि कौन है जो आज गाता ?"[64]

राजनीति के क्षेत्र में कवि महेन्द्र भटनागर गांधीजी से पर्याप्त प्रभावित हैं । राष्ट्रीय भावना और गांधीजी के बारे में वे कहते हैं, "राष्ट्रीय परंपरा को अपनाकर कविता के द्वारा मैं राष्ट्र उद्‌बोधन के कार्य की ओर उन्मुख हुआ । गांधीजी राष्ट्रीय-आन्दोलनों का नेतृत्व कर रहे थे, एतदक्ष मैं उनसे प्रभावित था और आज भी उनकी नैतिकता का क़ायल हूँ । पर, राजनीति विषयक मेरा ज्ञान कुछ न था । राजनीति से मेरा भावात्मक संबंध ही कहा जा सकता है । राजनीति जब साधारण जनता के जीवन को प्रभावित करती है तब उससे विलग भी नहीं रहा जा सकता, अतः राजनीतिक चेतना से मैं अपने को न बचा सका ।"[65] अतः यह कहना अनुचित न होगा कि महेन्द्र भटनागर की राजनीतिक चेतना स्वतः प्रेरित है ।

1942 के स्वाधीनता संग्राम में कवि आम जनता के साथ अंग्रेज़ों की कुटिल राजनीति के विनाश के लिए कूद पड़ा है । 'अभियान' काव्य-संग्रह कवि की इसी क्रांति-पथ की यात्रा का पहला चरण है । कवि क्रांति की मशाल हाथ में लिए गाता है :

"नवीन ज्योति की मशाल
आज तो गली-गली में जल रही ।"[66]

ब्रिटिश सरकार के साम्राज्यवाद का अस्त समीप देख कवि कहता है :

"मिल रही है हार ! मनुज का व्यवहार क्या,
सभ्यता विस्तार क्या, स्वार्थ की दुर्भावना से मिट रहा संसार !
मिल रही है हार !"[67]

गांधीजी ने जब 'भारत छोडो' आन्दोलन शुरू किया, उस वक्त प्रत्येक भारतवासी इस आन्दोलन में सहयोगी बना - सक्रिय अथवा वैचारिक स्तर पर। कवि महेन्द्र भटनागर भी इसी क्रांतिपथ पर चलते हुए गाते हैं :

"क्रांतिपथ पर बढ़ रहा हूँ द्रोह की ज्वाला जगाने ।
आज जीवन के सभी मैं तोड़ दूँगा लौह-बंधन ।"

कवि महेन्द्र भटनागर ने गांधीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर

गांधीजी पर कुल पाँच कविताएँ लिखी हैं । सत्य, अहिंसा और राष्ट्रहित के भाव कवि को छूते हैं; जो इन कविताओं में देखने मिलते हैं ।

राष्ट्रीय भावना से जागृति आने पर राजनीतिक शोषणखोरों का कवि नाश करना चाहता है । वह कहते है

'कटु पशुबल का हो नाश' - राजनीति के गंदे माहौल से लड़ते कवि कहते हैं - "दानवता से जूझ रहे जन-जन, दुख के बादल मोड़ रहे ।"

कवि महेन्द्र भटनागर राजनीतिक शोषणखोरों से खिन्न हैं । वे उन्हें समाज का दुश्मन बताते हुए कहते हैं :

"दुश्मन पर, आज विपक्षी पर,
जन-द्रोही पर अभियान करो, अभियान करो !"

कवि के हृदय में देश प्रेम है । देश को अंधकार की गर्त में धकेलने वाली देशी रियासतों से वे ख़फ़ा है । वे अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते हैं :

"ये हिजड़े कायर लड़ न सके ! जब अंग्रेजी राज-बना था
मुट्ठी-भर 'गोरे' बढ़ते थे, ये कुछ कर न सके, सिर्फ झुके !"

(देशी रजवाड़े)

कवि ने जहाँ पूर्ववर्ती राजनीति का यथार्थ चित्रण किया है; वहीं आधुनिक राजनीति के खोखले स्वरूप का भी चित्रण करने से वह चूका नहीं है । 'बदल रही' कविता में वे व्यंग्य के लहज़े में आधुनिक युग का एक चित्र दिखाते हैं :

"बदल रही है आज हमारी
पहली नक़ली तसवीर"

(खाओ भूखो ! हलवा पूरी और गरम मीठी खीर !)

कवि महेन्द्र भटनागर परिवर्तन के कवि हैं । वे नवयुग के निर्माण की बात करते हैं । नव-युग के निर्माण के लिए पुरानी रूढ़ि को तोड़ना होगा । इसीलिए वे कहते हैं -

‘सदियों के बंधन मिटाते चलो तुम,

तम के ये परदे हटाते चलो तुम,

अवरुद्ध राहों के पत्थर सभी ये

निर्झर सदृश सब उड़ाते चलो तुम !’

इस तरह कवि महेन्द्र भटनागर जी ने समकालीन राजनीति का यथार्थ चित्रण किया है; जो वास्तविक व सत्य से परिपूर्ण है ।

‘अभियान’ में राष्ट्रीय चेतना एवं विश्व-मानव के शुभ भविष्य का सशक्त स्वर गूँजता है -

“अधीर त्रस्त विश्व को उबारने

अभ्रांत गूँजता अमोघ स्वर

सरोष उठ रहा है बिम्ब-सा

मनुष्य का सशक्त स्वर ।”

आर्थिक परिवेश :

डॉ. महेन्द्र भटनागर स्वतंत्रता-पूर्व व स्वातंत्र्योत्तर दो युग के कवि हैं । उन्होंने दोनों युग की परिस्थितियों का अनुभव किया है । उनके समय के आर्थिक परिवेश की जानकारी इस प्रकार है । पहले एक नज़र स्वातंत्र्यत-पूर्व के आर्थिक परिवेश पर “ब्रिटिश शासन ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था को नष्ट कर दिया था ।”[68] एक समय में ‘सोने की चिड़िया’ के नाम से जिसकी पहचान होती थी वह देश जर्जर हो गया । ढेरों आर्थिक समस्याएँ विरासत में मिलीं ।[69] सबसे अधिक अंग्रेज़ों ने भारत का शोषण किया । दो विश्वयुद्ध के कारण भारत को कई गुना नुक़सान भुगतना पड़ा । अंग्रेजों ने जाते-जाते भारत को दो भागों में विभाजित कर दिया । “भारत को आर्थिक समृद्धि देनेवाला भाग पाकिस्तान में चला गया ।”[70] अन्यथा भी, भारत सरकार को पाकिस्तान सरकार को आर्थिक सहयोग अलग से देना पड़ा। जिससे भारत को आर्थिक झटका लगा ।

भारत के आर्थिक परिवेश में उतार चढ़ाव होते रहे हैं । स्वतंत्रता-प्राप्ति

से काफ़ी वर्ष पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस ने 1938 में राष्ट्रीय योजना आयोग की नियुक्ति की । जिसके अध्यक्ष पं. जवाहरलाल नेहरू ने उन सामान्य नियमों को व्यक्त किया, जो अंग्रेज़ों के भारत छोडने के बाद, हमारी भूमि-नीति का मार्गदर्शन करेंगे । उनका वक्तव्य इस प्रकार है :

"कृषि, भूमि, खान, खदान, नदियाँ और वन राष्ट्रीय संपति के रूप हैं, जिनका स्वामित्व सामूहिक रूप से भारतीय जनता के हाथों में ही रहेगा । सहकारी नियम, सामूहिक और सरकारी फार्मों के विकास द्वारा भूमि को नाम में लाने के लिए प्रयोग किये जाएगे । फिर भी, यह प्रस्ताव नहीं किया गया कि छोटी जोतों में किसान द्वारा खेती को समाप्त कर दिया जाए । किसी न किसी प्रकार से सामूहिक खेती शुरू करानी ही थी । लेकिन संक्रांति काल के समाप्त होने के बाद ताल्लुकेदार, जमींदार आदि जैसे बिचौलियों को मान्यता नहीं देनी थी । इन वर्गों के लोगों को जो अधिकार और खिताब दिये गये थे उन्हें उत्तरोत्तर खरीदना चाहिए । राज्य सरकारों को खेती योग्य बंजर भूमि में सामूहिक खेती शीघ्र ही प्रारंभ करानी थी । सहकारी खेती व्यक्तियों अथवा संयुक्त स्वामित्व के साथ सम्मिलित की जानी थी । विभिन्न प्रकार की खेती के लिए कुछ ढील भी देनी थी, ताकि अधिक अनुभव के साथ कुछ विशेष प्रकार की खेती को विकसित किया जाये जो अन्य प्रकार से अपेक्षाकृत अधिक प्रोत्साहन पा सके ।"[71] इस वक्तव्य का सार इतना मात्र है कि अंग्रेजों ने भारत के कुटीर-उद्योग नष्ट कर दिये थे ।[72] ब्रिटिश सरकार के आर्थिक शोषण के फलस्वरूप भारत के लोगों की गरीबी बढती गई । भारत को अनेक अकालों का सामना करना पड़ा; जिनमें लाखों-करोडों लोगों की जाने गईं । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारत में 24 अकाल पड़े; जिनमें प्रायः 3 करोड़ लोगों की मृत्यु हुई ।

स्वतंत्र भारत की आर्थिक स्थिति अधिकतर उपरोक्त परिस्थितियों से प्रभावित है । कवि महेन्द्र भटनागर ने अकाल के अभावग्रस्त दिनों का सामना किया है । वे कहते हैं कि - "कितना बुरा समय था वह । तिस पर मालवा में अकाल पड़ा । गेहूँ नहीं मिलता था । चावल बहुत महँगा था । कंट्रोल के घुने-सड़े जौ और चने कुछ मिल पाते थे । अमरीकी मेलो नामक लाल अनाज खाया नहीं जाता था । बाद में तो, मूँग की दाल के चालों और पकौड़ियों पर

दिन काटने पड़े । घर पर पढ़ने व्यापारियों के जो लड़के आते थे, वे पारिश्रमिक के बदले में थोड़ा-सा गेहूँ दे जाते थे । इस जीवन में मुझे बड़े कटु अनुभव हुए । एक विद्यालय के अध्यापक की यह ज़िन्दगी थी । कल्पना कीजिए, गरीब जनता को कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ा होगा । राशन की दुकानें लुट जाया करती थीं । लाठी-चार्ज होते-होते बचता था । इस माहौल में, व्यापारी, पूँजीपति और बड़े अफसर मस्त-अलमस्त घूमते थे । यह उनके धन कमाने का समय था । अभिप्राय यह है कि ये सारी घटनाएँ, एक-के-बाद-एक, मेरे मन में मौजूदा समाज-व्यवस्था के प्रति आक्रोश का भाव भरती गईं । विद्रोह और क्रांति के भाव-विचार मेरी अपनी भोगी हुई ज़िन्दगी से उपजे हैं । मेरे प्रारंभिक लेखन का यह आर्थिक परिवेश था ।"[73]

भारत को स्वतंत्रता 1947 में 14-15 अगस्त की मध्यरात्रि को मिली। "स्वतंत्रता मिलने पर देश की स्थिति क्या थी ? न सिर्फ़ यह कि उत्तर भारत चालाकी और अप्रत्यक्ष तरीके से उपनिवेशवादी नीति से परिचालित साम्प्रदायिक दंगों के परिणाम स्वरूप लाशों से ढका था, बल्कि स्वतंत्र भारत एक ऐसे रौंदे हुए मैदान की तरह था जिसे अभी-अभी चोर अहेरी और शिकारी ख़ाली करके गये थे । मुख्य रूप से यह कृषिप्रधान देश था, यहाँ वहाँ दो-चार उद्योग छितरे थे ।"[74]

कवि महेन्द्र भटनागर ने जो अभावपूर्ण दिन व्यतीत किये उनके ज़िम्मेदार तत्कालीन शासक थे । इन अभावपूर्ण स्थिति और परिस्थिति को उन्होंने कविता में उतारा है । 'आज़ादी का त्यौहार' में कवि जन सामान्य की आर्थिक विपन्नता को लक्ष्य करते हुए बड़े मार्मिक आवेग में कहते हैं :

"लज्जा ढकने को
मेरी खरगोश सरीखी भोली पत्नी के पास
नहीं हैं वस्त्र,
कि जिसका रोना सुनता हूँ सर्वत्र !
घर में - बाहर, सोते-जगते
मेरी आँखों के आगे फिर-फिर जाते हैं

वे दो गंगाजल जैसे निर्मल आँसू

जो उस दिन तुमने मैले आँचल से पोंछ लिए थे ।"[75]

स्वतंत्रता मिलने के बाद रामराज्य आएगा; यह हर व्यक्ति का ख्वाब था । मगर यह स्वप्न साकार न हो पाया । क्योंकि स्वतंत्रता के तुरन्त बाद देश को कई सदमों का शिकार होना पड़ा । पाकिस्तान से निर्वासित किए गए लोगों को रोटी-कपड़ा और मकान उपलब्ध कराना था, जो तत्कालीन सरकार के सामने लोहे के चने चबाने जैसा कठिन था । उस वक़्त, आम जनता आर्थिक अभाव से द्वन्द्व कर रही थी । यह माहौल आगे भी बना रहा । कवि महेन्द्र भटनागर ने 'दरिद्र-नारायण' कविता में भूखे नंगों की सही तस्वीर चित्रित की है । गरीब आदमी दिन-रात पिस रहा है । संस्कृति, कविता, नाटक, कला आदि से उसका कोई संबंध नहीं है । यथा :

"दो जून

रोटी तक जुटाने में

नहीं जो कामयाब,

ज़िन्दगी

उनके लिए -

क्या ख़ाक होगी ख़्वाब !

कोई ख़ूबसूरत ख़्वाब !

उनके लिए तो

ज़िन्दगी -

बस,

कश-म-कश का नाम,

दिन-रात

पिसते और खटते

हो रही उनकी

निरन्तर उम्र तमाम !

वंचित

उच्चत्तर अनुभूतियों से जो -

भला

उनके लिए

संस्कृति-कला का ।

अर्थ क्या ?

उपयोग क्या ?

सब व्यर्थ !

(जो न समर्थ ।)

यद्यपि, सतत श्रम-रत;

किन्तु जीवन-भर

निराश-हताश !

जिनके पास

थोड़ा चैन करने को

नहीं अवकाश !

उनके लिए है

नृत्य - नाटक - काव्य के

सारे प्रदर्शन,

दूरदर्शन

व्यंग्य मात्र !

वे - केवल हमारे

खोखले ओछे अहं के

तुष्टि - पूरक - पात्र !

पहले चाहिए उन्हें -

शोषण-मुक्ति,

महिमा-युक्त गरिमा,

मान की सम्मान की रोटी,
सुरक्षा और शिक्षा !
चाहिए ना एक कण भी
राज्य की या व्यक्ति की
करुणा, दया, भिक्षा !"[76]

स्वतंत्र भारत की आर्थिक विपन्नता का चित्रण कवि ने अन्य कविताओं में भी किया है । 'कुर्बानियाँ' कविता में केवल भारत ही नहीं; कवि सभी परतंत्र देशों की स्वाधीनता का स्वप्न देखता है । जो जीवन प्रणाली परतंत्र परिवेश में थी; वह स्वतंत्र भारत में भी बनी रही । आम आदमी के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । कई पंचवर्षीय योजनाएँ लागू हो जाने पर भी 'मेरे देश का आम आदमी गरीब है'[77] कवि ने महसूस किया कि आजादी के तीन दशक बीत जाने के बाद, पाँच-पाँच पंचवर्षीय योजनाओं के रीत जाने के बाद भी इस देश का आम आदमी बेहद गरीब है। कारण का संधान भी कवि ने किया है :

"धन, पद, पशु
भारत भाग्य-विधाता हैं !"[78]

'त्रासदी' यह है कि आज भी यहाँ गरीब-अछूत डरता है, भूख और मार से मरता है और इस प्रकार शोक और लोक से तर जाता है । इस सारी अव्यवस्था का मूल है हमारी प्रजातांत्रिक व्यवस्था का अवमूल्यन और चोर दरवाज़े से सत्ता पर काबिज़ होनेवाले लोगों का सम्मान ।[79] कवि महेन्द्र भटनागर ने गरीब की अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है :

"गरीब था
अछूत था
        डर गया !
भूख से
मार से
        मर गया
शोक से
लोक से
        तर गया !"[80]

आज़ादी के तीन दशक बाद भारत को पाकिस्तान व चीन से युद्ध करना पड़ा । इस परिवेश में भारत का आर्थिक पहलू कमज़ोर होता गया । भारत का आम आदमी विकास की ओर आगे बढ़ने के बदले विदेशी पूँजी के दबाव में दबता गया । उसका जीवन मात्र परिश्रम और संघर्ष से भरा रहा । कवि महेन्द्र भटनागर ने 'विश्वस्त' कविता में ऐसे सर्वहारा वर्ग के व्यक्ति का चित्रण किया है । यथा :

"सतत संघर्ष-रत
सर्वहारा,
    जिन्दगी
    बदली नहीं
अडिग अनकथ अकेला
सर्वहारा,
    स्थिति
यथावत्
सुधरी नहीं, सँभली नहीं !"[81]

निष्कर्षत: कवि महेन्द्र भटनागर का युगीन आर्थिक परिवेश अत्यंत संघर्षमय व भयावह था । सामान्य जनता पर इसका अत्यंत गहरी असर हुआ। आर्थिक समस्या को सबसे भयावह स्थिति आज़ादी के बाद आये युद्धों से हुई। निर्वासितों के लिए उचित व्यवस्था करना शासक राजनीतिज्ञों के लिए लोहे के चने चबाना जैसा था । समाज के प्रत्येक वर्ग को इस स्थिति ने प्रभावित किया । कवि महेन्द्र भटनागर ने आर्थिक अभाव में जूझते लोगों का सटीक चित्रण किया है ।

धार्मिक परिवेश :

स्वतंत्र भारत की एक और समस्या थी धार्मिक मुठभेड । "देश में जगह-जगह साम्प्रदायिकता की लपटें उठ रही थीं । समाज का वातावरण दम घोटनेवाला था । सांप्रदायिकता को शांत करना था ।"[82] साम्प्रदायिक मनमुटाव देश के विभाजन का कारण बना । फलस्वरूप कई सांप्रदायिक दंगे आज़ादी के

पहले भी हुए और स्वतंत्रता के पश्चात् भी । कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में इस धार्मिक परिवेश को बख़ूबी से देखा जा सकता है ।

स्वतंत्र भारत के धार्मिक परिवेश पर प्रकाश डालते हुए कवि महेन्द्र भटनागर ने लिखा है कि - “भारत की स्वाधीनता के साथ-साथ साम्प्रदायिक दंगे शुरु हो गये थे । इलाहाबाद में, सफ़र के समय, एक बार सुनसान में घिर गया था - ‘राम-राम’ करके स्टेशन पकड़ा और थोड़ी देर बाद ही किसी ने समाचार दिया कि जिस रास्ते से मैं आया था, छुरेबाजी की वारदातें हो गयी ! कितना बुरा समय था वह !”[83]

‘साम्प्रदायिक दंगे’[84] में कवि महेन्द्र भटनागर ने धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों का चित्रण करते हुए लिखा है :

“नगर-नगर व गाँव-गाँव में, दहक रही यह आग है,
डगर-डगर व पाँव-पाँव पर, भभक रही यह आग है !
कि आसमान चीरती हुई, विनाश की हवा चली,
हुआ अधीर, लाल-लाल बन जहान, सृष्टि सब जली,
कराहती व चीख़ती सनी हुई यह रक्त से गली-गली,
मनुज विवेक हीन, हिंस्र हो गया कठोर जंगली !
कि ख़ून आँख में, कटार का कटार से जवाब है
कि बस यहाँ स्वच्छंद मज़हबी गँवार ही नवाब है !
मनुष्य का कठोर रूप यह भयावना है किसा क़दर,
कि धर्म जातिगत प्रभाव का ज़हर उगल रहा ग़दर !”

स्वतंत्रता के पश्चात्, धर्म के नाम पर दंगों के साथ-साथ लूट और रक्तपात भी हुए । मानो हैवान के रूप में मज़हब (भगवान) आकर यह सब कर रहा हो । यथा -

‘लूट हिंसा का मनुज पर जब नशा छाया,
रूप ले हैवान का मज़हब उतर आया,
रक्त की इन्सान की यदि प्यास बुझ जाती

ख़त्म हो जाती बनी नेतागिरी माया !
इसलिए विद्धेष का झंडा उठाया है,
क़त्ल करने का धृणित नारा लगाया है,
मतलबी साम्राज्यवादी चंद लोगों ने
देश को मेरे कसाई-घर बनाया है ।'[85]

भारतीय संस्कृति की नींव धर्म पर टीकी है । समाज की व्यवस्था सुदृढ रहे, इस उद्देश्य से इसे चार वर्णों में विभाजित किया गया है जो - मनु के धर्म-विभाजन पर आधारित है । इसमें ब्राह्मण को समाज का सबसे श्रेष्ठ व्यक्ति माना गया है, इसके बाद क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं । समाज में शूद्रों की दयनीय स्थिति का कारण यह वर्ण-विभाजन ही है ।

कवि महेन्द्र भटनागर पुरोहित-वर्ग की इस व्यवस्था से नाराज़ हैं । आज समाज में धर्म के नाम पर कई मत-मतांतर हैं जो व्यवस्था में बाधा स्वरुप हैं । 'हरिजन' कविता में कवि कहता है :

'ये पंडित पोथीवाले लाल तिलक वाले
पगडीवाले लाला लोग कि रोज लगाते मोहन-भोग
आज हमारे जानी दुश्मन
इनने ही बरबाद किया है जीवन !'[86]

स्वतंत्र भारत में धर्म के नाम पर कई अंध विश्वास फैले । मूर्ति पूजा को भी बढ़ावा मिला; जिसका एक मात्र कारण है छद्‌म धार्मिक स्थलों का फैलाव । कवि महेन्द्र भटनागर मंदिर-निर्माण को लाल-बत्ती दिखाते हैं और मंदिरों में हो रहे काले धंधों का पर्दाफ़ाश कुछ इस तरह करते हैं -

'मंदिर आज हमारे लिए खुले हैं तो
क्या उनको लेकर चाटें ?
उनसे न मिलेगी रहने क़ाबिल आज़ादी !
भगवान हमारा यदि साथी होता तो
क्या इस जीवन से पड़ता पाला
मंदिर तो धनिकों के ऐयाशी के अड्डे हैं ।'[87]

(विहान : हरिजन)

कवि महेन्द्र भटनागर ‘साम्प्रदायिक विष’ में दंगों में हुए नर-संहार का चित्रण करते हैं -

आज नूतन शक्ति का संचार !
नस-नस में फड़कता जोश
दुर्दम मानवी दृढ़ !
होश की करवट
कि देखा सामने मरघट,
पडी लाशें मनुज की,
चीत्कारें ![88]

कवि महेन्द्र भटनागर ने अपनी काव्य में अपने भूतकाल के साथ वर्तमान को भी उजागर किया है । देश को बर्बाद करने वाले अंग्रेज़ी सत्ता के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए वे कहते हैं कि

‘तूने जमाया पैर माँ के वक्ष पर
जिसके करोड़ों लाल
हिन्दू और मुस्लिम को लड़ाया ।’[89]

इस तरह, कवि महेन्द्र भटनागर की काव्य में, धर्म के विकृत स्वरूप का चित्रण देखने को मिलता है; जो कवि का देखा-भोगा हुआ कटु सत्य है ।

सामाजिक परिवेश :

“भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का यहाँ के जीवन और समाज पर असर जितना जटिल है, उसका रूप उतना ही बहुआयामी और बहुरंगी भी है । चाहे तो इसकी तुलना हम बीसवीं सदी के रूस और चीन के सामाजिक-राजनीतिक रूपान्तरण से कर सकते हैं । इस आन्दोलन ने भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन को काफी गहराई तक प्रभावित किया था ।”[90]

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में कई परिवर्तन दृष्टिगत हुए । जिनमें आदिकाल से बने नियमों का खंडन भी हुआ । भारतीय समाज-व्यवस्था वर्णाश्रम पर आधारित है । आधुनिक स्वतंत्र भारत का समाज नये

वर्गों में विभक्त होने लगा। श्रीमंत और ग़रीब, पूँजीपति और सर्वहारा, शोषक व शोषित, नोकर और मालिक आदि वर्गो में भारतीय समाज विभाजित हुआ। अंग्रेज़ों के बनाये नियमों के आधार पर, पूँजीपति-वर्ग गरीब जनता से सूद लेकर लहू पीने लगा। उसके शोषण से समाज पंगु बनाता गया। कवि महेन्द्र भटनागर के काव्य में परिव्याप्त है।

महेन्द्रजी के काव्य में, शाश्वत सत्य या कहें कि शाश्वत मूल्यों का महत्व अवश्य उपलब्ध है, किन्तु समसामयिक युग की उपेक्षा नहीं की गयी है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि सामयिकता की उपेक्षा करके कोई कवि समाज के लिए कल्याणकारी साहित्य का सृजन नहीं कर सकता। उन्होंने 'टूटती शृंखलाएँ' संग्रह की 'कला' शीर्षक कविता में यही स्वर फूँका है। यथा -

"जो सुदूर स्वप्न-राज्य की विहारिका
व्योम पार देश की रही निहारिका"

कवि महेन्द्र भटनागर स्वतंत्रता पूर्व व स्वातंत्र्योत्तर समाज के जागरूक कवि हैं। उन्होंने दोनों परिवेशों के जीवन का अनुभव किया है। ब्रिटिश सरकार के शासनकाल में समाज में शोषण व अत्याचार चरमोत्कर्ष पर था। गुलामी और अत्याचार से लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे। कवि ने भी ऐसे जीवन का कटु अनुभव किया; जिसका चित्रण करते हुए वे लिखते है :

'जब पीडित व्याकुल मानवता
दुख ज्वालाओं से झुलसायी
बंदी जीवन में जड़ता है,
जिसने अपनी ज्योति गँवायी,
जब शोषण की आँधी ने आ
मानव को अंधा कर डाला,
क्रूर नियति की भृकुटि तनी है
आज पड़ा खेतों में पाला
त्राहि-त्राहि का आज मरण का

जब सुन पड़ता है स्वर भीषण,
चारों ओर मचा कोलाहल,
है बुझता दीप जटिल जीवन,
जब जग में आग धधकती है,
लपटों से दुनिया जलती है,
अत्याचारों से पीडित जब भू-माता आज मचलती है ।'[91]

उक्त कविता, महेन्द्र भटनागर के सामाजिक जीवन को प्रस्तुत करती है । इसमें अभावों से जूझते मानवता के क्रन्दन को सुन सकते हैं । पूँजीवादियों से शोषित गरीब जनता के आँसू यहाँ देखने मिलते हैं । स्वतंत्रता-पूर्व व स्वातंत्र्योत्तर युद्ध की भीषण ध्वनि को भी उनके काव्य में सुना जा सकता है ।

1942 के जनान्दोलन के पश्चात् समाज में सामान्य जनता की स्थिति दयनीय हो गयी थी । जिसे देखो वह केवल दुख और व्यथा से घिरा मिलता था । यथा :

'आघात समय का, अब न सहा जाता ।
करुण कथा कितनी, गरल व्यथा कितनी
लय में छंदों में अब न कहा जाता !
जीवित नेह कहाँ ?
सुन्दर गेह कहाँ ?
मन दुख-सरिता में
अब न बहा जाता !
है मौन सुखद स्वर, जीवन शांति लहर
बीहड़ पथ से रे, अब न बहा जाता !
अब न रहा जाता ।'[92]

भारत में अंग्रेजों ने केवल उसका धन ही नहीं बल्कि उसकी संस्कृति, सभ्यता और धार्मिक सोहार्द को भी लूटा । धर्म की ऐसी भेद रेखा बनायी;

जिससे भारतीय समाज आज भी आपस में लड़ता है । 1945 में हुए साम्प्रदायिक दंगे उसी का परिणाम है । देश की जनता के प्रति अमानुषिक व्यवहार किया गया । जीवन-व्यवहार के साधन छीन गये थे । कवि महेन्द्र भटनागर 'प्रतिकूलता' कविता में तत्कालीन परिवेश का चित्रण करते दिखायी देते है :

"मिलती प्रति पग पर असफलता

बढ़ती जाती व्याकुलता,

जीवन-सुख के सब द्वार बंद

स्नेह हीन जीवन-दीपक की

होती जाती है ज्योति मंद !"

समाज में, उस समय जड़ता और अंधविश्वास ने अपने पाँव जमा दिये थे । व्यक्ति-व्यक्ति के बीच प्रेम और सहानुभूति का अभाव था। यथा - 'जडता का अंधियारा छाया, बरखा-आँधी का युग आया' ।[93]

1941 से आज़ादी तक का समय, सामाजिक जड़ता से भरा मिलता है । जड़-मान्यताओं ने अपनी मजबूत पकड़ बना ली थी । सर्वत्र संघर्ष व्याप्त था प्रेम का माहौल विरल था । डॉ. महेन्द्र भटनागर ऐसे ही माहौल का चित्रण करते हैं :

"जड़ता का अंधियारा छाया,

बरखा आँधी का युग आया ।"[94]

डॉ. महेन्द्र भटनागर ने, स्वतंत्र भारत के सामाजिक परिवेश को भी यथासंभव चित्रित किया है । स्वतंत्रता के पश्चात् भी व्यक्ति अभाव और जीवन की विडम्बनाओं से लड़ता रहा । महेन्द्र भटनागर तत्कालीन परिवेश के परिप्रेक्ष्य में कहते हैं :

'आवश्यकताएँ हैं :

पर

पूर्तियाँ नहीं

अर्चनाएँ हैं :

पर मूर्तियाँ नहीं ।

भटकने हैं

बाट नहीं ।

नदियाँ हैं :

घाट नहीं ।

सर्वत्र तलाश-ही-तलाश है ।'[95]

'बदलता युग' में 'तूफान' कविता में तत्कालीन परिवेश के तूफानी माहौल का चित्रण है । यह समय 1948 का था । परतंत्रता व स्वतंत्रता के संक्रांति परिवेश से जो माहौल पैदा हुआ, वह आशाओं-आकांक्षाओं के विपरीत था । कवि महेन्द्र भटनागर ने इस परिवेश को महसूस किया है । उनके शब्दों में :

'समय संक्रांति का,

असफल निराशा का,

अधूरे स्वप्न ले मानव,

अधीर अशांति में

प्रतिपल विकल साँसें,

दमन के दिन

रहे हैं गिन,

रहे हैं गिन ।

मिटा समुदाय सारा

खा गया है ज़ंग,

दीमक और फोड़ों से

हुआ जर्जर, हुआ जर्जर !

बिगड़ दोनों गये है लंग्स ।

हिंसक और भक्षक

व्यक्ति का भीषण,
शुरू अब हो गया है नाच,
नंगा नाच ।
जिसके पैर के नीचे
मनुजता का दबा है वक्ष,
क्रंदन की पुकारें और आहें
बन रहीं
तबलों-मंजीरों की धमक
निर्दय कुचलता जा रहा है
आज !
पैरों से मसलता जा रहा है
आज !
दोनों हाथ जो अपने
डुबोकर रक्त में
होली मनाए,
क्रूर भूतों-सी हँसी हँसता
जमीं पर
वार कर हर बार
निर्मम बन
गिराता है रुधिर की धार !
सारा लाल है संसार
सारा चीखता संसार
रो-रो आह भरकर आज !'

यहाँ, 'सारा लाल है संसार' में कवि द्वितीय विश्वयुद्ध की भयानकता की ओर अंगुलि-निर्देश करता है । साम्यवाद के असर से, विश्व के सभी गुलाम देश स्वतंत्रता की लड़ाई में शामिल हो गये थे । कवि ने साम्यवादी लहर का चित्रण करते हुए लिखा है :

'देखो बढ़ रहा तूफान !
करने विश्व को आज़ाद,
देने को नया जीवन,
बसाने साम्य की दुनिया
मिटाने दुःख की घडियाँ ।
युगों की
सख़्त काली लौह की कडियाँ
बजीं झन-झन,
बजीं झन-झन ।
हुई सब ग्रन्थियाँ ढीली,
खुले बंधन !
कि बोला अब नया इन्सान.....
जनता राज ज़िन्दाबाद,
जनता को मिले अधिकार ।'

समाज विचारधारा से प्रभावित विश्व के कई राष्ट्र स्वतंत्र हुए; जिनमें भारत भी एक था । स्वतंत्रता के साथ वैचारिक स्वतंत्रता मिली और इससे प्रत्येक व्यक्ति ने पुराने बंधनों को तोड़कर आधुनिक विचारों को अपना । जिसमें था -

सारे विश्व में
स्वातंत्र्य झंझावात -
बहता तोड़ता
प्राचीन-चिन्तन बाँध,
राजा, काल्पनिक भगवान, डिक्टेटर
हुकूमत के ज़माने के
कफ़न पर कील अंतिम
ठुक गई है आज ।
जीवन जागरण के गान के स्वर

विश्व के प्रत्येक कोने से
सुनायी दे रहे हैं आज !
आया मुक्ति का तूफ़ान ![96]

दूसरे विश्वयुद्ध में भारत को अंग्रेज़ों ने शामिल किया; जबकि इस समय स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए देश बलिदान की वेदी पर चढ़ने को तैयार था। ऐसे वातावरण में, चारों ओर सर्वनाश व्याप्त था । कवि महेन्द्र भटनागर 'सर्वनाश'[97] के इस माहौल का चित्रण करते हैं :

हिल गया तल तक
कि चारों ओर,
चीख़ा जन-समुन्दर घोर ।

यह स्वर और संग्राम स्वतंत्रता के लिए था । जब स्वतंत्रता मिली, प्रजा के हाथ में जब देश का तंत्र आया, तो जीवन अभावों से परिपूर्ण था । बाद में स्थिति यथावत् बनी रही । कवि 'प्रजातंत्र' कविता में तत्कालीन परिवेश का चित्रण करते हैं :

जिसका
उपद्रव-मूल्य है
वह पूज्य है ![98]

स्वतंत्रता-बाद लोगों के पास धनाभाव था । जिसके पास धन होता था वही समाज में आदर और सम्मान पाता था । धन के अभाव में व्यक्ति का कोई महत्व नहीं था । धनवान व्यक्ति कामान्ध हो तो भी आदरणीय माना जाता है । यथा :

जिसका
जितना अधिक उपद्रव-मूल्य है
वह उतना ही अधिक
            पूज्य है !
            अनुकरणीय है !
अधिकांग है,
और सब विकलांग है,
            वंदनीय है !
जो मदान्ध है

जो कामान्ध है
क्रूर कामान्ध है
                आदरणीय है
उच्च आसन पर
सुशोभित
                श्रेष्ठ समादरणीय है !
जो जितना मुखर
                और लट्ठ है
जो जितना कड़ुआ मुखर
और जितना निपट लट्ठ है
उसके
पीछे-आगे
दाएँ-बाएँ
                लट्ठ हैं !
उतने ही
भारी भड़कीले ठट्ठ हैं !
उसका गौरव
अनिर्वचनीय है,
उसके बारे में
और क्या कथनीय है ![99]

कवि महेन्द्र भटनागर यहाँ प्रजातंत्र की विकृति प्रस्तुत करते हैं । 'और क्या कथनीय है' कहकर तीखा व्यंग्य व्यक्त करते हैं । कवि समाज के प्रत्येक पहलू से जैसे साक्षात्कार करता हुआ चलता है ।

स्वतंत्र भारत की एक अन्य प्रमुख समस्या थी छूताछूत और वर्ण । उच्च-नीच का भेदभाव । गांधीजी के 'हरिजन' उत्थान कार्यों से, अछूत जाग्रत हुआ और अपने अधिकार को समझने लगा । कवि 'हरिजन' कविता में तत्कालीन हरिजन-जागरण की स्थिति का अंकन करते हुए कहते हैं :

'नगर के एक सिरे पर हरिजन-बस्ती । सीकों की अनेक झाडू और टोकरियाँ दरवाज़ों के आसपास पड़ी हैं । गरमी में समस्त वायुमंडल तप रहा है। कुछ हरिजन अपनी कुटियों से बाहर निकलकर पेड़ के नीचे बैठे हैं, जिनमें औरतें, बुड्ढे, बालक व जवान सभी हैं । शहर में आज इनकी हड़ताल है । आज कुचले हुए सिरों ने अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठायी है -

एक युवक - (पड़ा-पड़ा गुनगुनाता है)

बीत चुके हैं चार दिवस

हम गये नहीं अपने कामों पर ।'[100]

यहाँ पद-दलित वर्ग अपने अधिकारों के प्रति सचेत दिखायी देता है ।

समाज में हर व्यक्ति अपना स्वतंत्र अस्तित्व लेकर जीता और बढ़ता है। हर व्यक्ति हर कार्य करने के लिए सक्षम नहीं होता । तब दूसरे व्यक्ति को कुछ दाम देकर वह अपना कार्य पूरा करवाता है । यह दाम लेकर कार्य करनेवाले व्यक्ति की पहचान 'मज़दूर' से होती है । स्वतंत्र भारत में आम आदमी की हालत कुछ मज़दूर जैसी ही थी । कवि महेन्द्र भटनागर मजदूरों की परिस्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं :

श्रमिकों की दुनिया बहुत बड़ी !

सागर की लहरों से लेकर

अम्बर तक फैली ![101]

कवि महेन्द्र भटनागर श्रमिकों के पक्षकार हैं । वे श्रमिक के पसीने की हर बूँद का महत्व समझते हैं । श्रमिकों पर बढ़ते हुए अत्याचारों को रोकना समाज का कर्तव्य है । कवि महेन्द्र भटनागर 'मानव-समता का त्यौहार' में श्रमिकों का महत्त्व प्रतिपादित करते हैं :

जब तक जग के कोने-कोने में

न थमेगा

सामाजिक घोर विषमता का

बहता ज्वार,

हर श्रमजीवी तब तक
अविचल मुक्त मनाएगा
'मई-दिवस' का त्यौहार ![102]

स्वतंत्र भारत में गरीब व्यक्ति शोषक के पंजों में जकड़ा हुआ था। अत्याचार का सामना व्यक्ति अपनी सीमा से बाहर नहीं कर सकता। ऐसे माहौल में, श्रमिक जब अपने अधिकार की माँग करता है तो उन पर पिस्तौल की गोलियाँ चलती हैं। कवि कहता है :

'पिस्तौल, मशीनगनों से क्या मिट सकता था
बढता रहा निरन्तर
श्रमिकों का जत्था सीना ताने'[103]

दुनिया के मूक गरीबों की
आहें और कराहें थीं ।[104]

यहाँ कवि महेन्द्र भटनागर केवल भारतीय श्रमिक की बात नहीं करते बल्कि एक 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना से प्रेरित समग्र श्रमिक दुनिया के जीवन के गीत गाते हैं।

समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जो तिरष्कृत दृष्टि का शिकार बनता आया है - वह है दलित-वर्ग। कवि महेन्द्र भटनागर ने ऐसे पददलित लोगों के चीत्कार को वाणी प्रदान की है। यहाँ उनका सदियों घनीभूत आक्रोश व्यक्त होता है। यथा

'हम तो है अब भी दबे
दबे दुखी औ' दीन पतित !
बाबू लोगों की गाली के
गुस्से के
एक मात्र इन्सान
क्या ?
ना रे इंसान
कहाँ इंसान ?
कुत्तों से भी बदत्तर !'[105]

स्वतंत्र भारत में स्त्री के महत्व की और भी ध्यान गया । भारतीय संस्कृति में स्त्री का नाम आदर से लिया जाता है । कहा गया है कि जहाँ स्त्री का आदर-सम्मान होता है वहाँ देवों का वास होता है । आधुनिक परिवेश में इस विचार का कोई मूल्य नहीं रहा । 'दमित नारी' में कवि महेन्द्र भटनागर स्त्रिओं की सामाजिक स्थिति पर अपना आक्रोश व्यक्त करता है :

'मिट्टी-मिट्टी बोल रही है !
बोल रही है नंगी काली ऊँची चट्टानें,
बोल रहे हैं सुखे-सूखे रक्तिम नाले,
चीख रही है सरिता-सरिता.....
लानत है इंसान !
किया तुम्हीं ने नारी पर
अत्याचार प्रहार,
लानत है
युग-युग की चिर संचित संस्कृति,
जिसकी पशुता ने
नारी की अस्मत पर हाथ उठाया !'[106]

आधुनिक परिवेश में नारी लाचार हो गई है । जब उस पर केवल अत्याचार ही अत्याचार हो तो उसके पास आँसू बहाने के अलावा और कुछ बचता ही नहीं । क्योंकि हैवानियत के आगे भावना का कोई मूल्य नहीं रह जाता । यथा :

हैवानों का चलता चक्र अरे !
जिसने नारीत्व
धरा पर लुण्ठित कर,
माँ पर हाथ उठाया,
बना दिया विधवा-विधवा !
पुत्र विहीना ![107]

भयभीता नारी
गिन-गिनकर साँसें छोड़ रही है ।[108]

निष्कर्षतः कहें तो महेन्द्र भटनागर का सामाजिक परिवेश विखंडन और सर्जन - दोनों का संक्रांति-काल जैसा है । व्यक्ति जहाँ अपने अधिकार के लिए जाग्रत हो रहा था; वहीं दूसरी ओर अपने सांस्कृतिक मूल्यों को भूलता जा रहा था । अपने समग्र परिवेश कवि महेन्द्र भटनागर अफ़सोस व्यक्त करते हैं :

"अफ़सोस है, अफ़सोस है !
उजड़ा हुआ संसार है,
रोदन यहाँ हर द्वार है,
बिगडा हुआ, पीड़ित, दुखी, मिटता हुआ समुदाय है !
अफसोस है, अफ़सोस है !
भीषण क्षुधा की ज्वाल है,
सूखी जगत की डाल है,
अम्बर-अपनी में गूँजता बस एक ही स्वर, 'हाय है' !
अफ़सोस है, अफसोस है !
नीरस मनुज का गान है,
झूठा लिए अभिमान है
गतिहीन जीवन है जटिल, असहाय है, निरुपाय है !
अफ़सोस है, अफ़सोस है !"[109]

साहित्यिक परिवेश :

आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारंभ भारतेन्दु युग से माना जाता है । "आधुनिक हिन्दी साहित्य पर फ्रॉयड, एडलर और युंग का काफी प्रभाव है । स्वानुभूतिपरक कविता की एक लम्बी परम्परा है । जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय तथा नयी कविता, नयी कहानी के अनेक ऐसे हस्ताक्षर है । मनोविश्लेषण के अतिरिक्त मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, शैली विज्ञान, संरचनावाद का भी काफ़ी प्रभाव है । आधुनिक हिन्दी कविता पूर्व से अधिक, पश्चिम से प्रभाव ग्रहण करती है । प्रभावग्रहण की यह प्रक्रिया आयातित व आरोपित है । प्रगतिवाद पर भी यह आरोप है ।"[110]

आधुनिक युग पूँजीवाद का है । रूस, चीन, विएतनाम जैसे देशों में पूँजीवाद के ख़िलाफ़ समाजवाद आया । 1917 की रूसी राज-क्रांति ने समाजवाद को पृथ्वी पर संभव किया । भारतीय स्वाधीनता-संग्राम को रूस के समाजवादी विप्लव से काफ़ी बल मिला था ।[111]

'समाजवादी विप्लव ने राजनीति के साथ-साथ समाजार्थिक संरचना, कला-साहित्य, संस्कृति को भी प्रभावित किया था ।'[112]

भक्ति आंदोलन के बाद भारत के सांस्कृतिक इतिहास में यह सबसे बड़ा आन्दोलन था । प्रेमचंद ने साहित्यकारों से कहा था कि उनकी सच्ची अदालत जनता है । साहित्यकार को मानवता, सज्जनता, न्याय और अधिकार का निर्भय होकर समर्थन करना चाहिए । प्रेमचंद के अनुसार साहित्य राजनीति का पिछलग्गू नहीं, बल्कि राजनीति के आगे चलनेवाली मशाल है । प्रेमचंद ने अपने लेखन के द्वारा इसे प्रमाणित किया । उन्होंने साहित्य की इस मशाल का नेतृत्व किया ।

सज्ज़ाद ज़हीर ने प्रेमचंद के बारे में लिखा है - "उनकी गांधीवादी राजनीति के असफल अनुभवों और उनके मानव-प्रेम ने उन्हें इस हद तक पहुँचा दिया था कि जो लोग केवल बड़े-बड़े धार्मिक और आध्यात्मिक कठिनाइयों को दूर करना चाहते हैं वे सफल नहीं हो सकते । आज के युग में न्याय और सज्जनता और मानवता का सृजन उसी स्थिति में संभव है जबकि एक ऐसी नयी आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था बनायी जाये जिसमें आदमी का शोषण संभव न हो सके ।" हम देखते हैं कि सन् 30 के उत्तरार्ध का समय साहित्य, कला, संस्कृति के इतिहास का ऐसा काल-खंड है जिसमें सर्वथा नवीन, क्रांतिकारी भावनाओं का आश्चर्यजनक विकास हुआ । सन् 1942 में दिल्ली में फासीवाद-विरोधी संमेलन हुआ था तथा इसी वर्ष बम्बई में भारतीय जन-नाट्य संघ (इप्टा) की स्थापना हुई थी । नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में 'इप्टा' का पदार्पण एक नये युग का आरंभ था । 'इप्टा' की स्थापना के फलस्वरूप साम्राज्यवाद-विरोधी चेतना का प्रवाह तीव्र हुआ ।[113]

अब छायावाद उतार पर था । डॉ. देवराज ने 'छायावाद का पतन' पुस्तक लिखकर छायावाद के अवसान की घोषणा कर दी थी । छायावाद के

अन्तर्गत निराला एक मात्र ऐसे कवि थे जो छायावाद के होकर भी छायावाद से बाहर थे । निराला की मशाल नागार्जुन, केदारनाथ, अग्रवाल, शील, शमशेर बहादुर सिंह, मुक्तिबोध, शिवमंगलसिंह 'सुमन', रांगेय राघव, डॉ. रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर, नेमिचंद्र जैन, त्रिलोचन जैसे परवर्ती काल के कवियों में और प्रखर हुई थी । 'हंस' ने प्रगतिशील आन्दोलन को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान किया था । ये सारे कवि डॉ. महेन्द्र भटनागर की अग्रज पीढ़ी के कवि थे, जिन्हें अपने समय में प्रगति-विरोधी ताकतों से जमकर लोहा लेना पड़ा था ।[114]

महेन्द्र भटनागर प्रगतिवाद के द्वितीय उत्थान के केन्द्रीय कवि के रूप में माने जाते हैं । 'हंस' पत्रिका के माध्यम से महेन्द्रजी प्रगतिवादी काव्यान्दोलन से जुड़े थे । उस समय कथाकार अमृतराय और त्रिलोचन शास्त्री 'हंस' से संबंधित थे । सन् 1947 में पहलीबार 'हंस' में महेन्द्र भटनागर की कविता प्रकाशित हुई ती । बहुत कम समय में ही महेन्द्र भटनागर की गिनती प्रगतिवाद के प्रमुख्र कवियों में होने लगी थी ।[115]

डॉ. विनयमोहन शर्मा के शब्दों में "वातावरण कवि का निर्माण करता है और कवि वातावरण का । महेन्द्र का कवि सृजन दोनों प्रक्रियाओं से गुजरा है । सबलगढ़ के जंगल और घास के मैदान जब उसकी आँखों में चलचित्र के समान झूम उठे, तब उसका सोया कवि जाग उठा था । और देश में स्वातंत्र्य-युद्ध धधक रहा था, वह वनों से हटकर जन-संकुल समाज में आ खड़ा हुआ । उसकी पीड़ा और अभाव ने उसे कुदेरना प्रारंभ किया । देश और मानवता के प्रेम ने उसे कविता के उस 'वाद' के निकट ला दिया, जो हिन्दी में 'प्रगतिवाद' के नाम से प्रचारित था ।"[116]

'तार सप्तक' और 'सप्तक' द्वितीय-तृतीय के प्रकाशन के बाद प्रगतिवादी आन्दोलन को कुछ झटका अवश्य लगा था । प्रयोगवाद, अस्तित्ववाद, क्षणवाद, नयी कविता, लघु मानव की प्रतिष्ठा के सवाल साहित्य में अहम हो गये थे । प्रगतिवाद को व्यक्ति विरोधी घोषित किया गया था । अज्ञेय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा, श्रीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त जैसे कवियों ने प्रगतिवाद को आयातित सिद्ध किया था ।[117]

महेन्द्र भटनागर जैसे कवियों ने प्रगतिवाद की खोयी हुई प्रतिष्ठा को

पुनः स्थापित किया था ।[118] इस युग के कवियों की कृति में युगीन समाज की गतिविधियों के दर्शन होते हैं । कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में भी युगीन संवेदना परिलक्षित है । उनके साहित्यिक विकास में तत्कालीन 'हंस', 'पारिजात', 'विश्ववाणी' आदि पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा ।

कवि के लिए कवि संमेलनों द्वारा प्राप्त ख्याति क्षणिक होती है । कवि महेन्द्र भटनागर के शब्दों में "मैंने देखा कि कवि-संमेलनों से प्राप्त ख्याति बड़ी सस्ती और हानिकारक होती है । आज कल मैं 'कवि-संमेलनों' में भाग नहीं लेता । रेडियो कवि-संमेलनों के आमंत्रण भी अस्वीकार कर चुका हूँ । स्पर्धा की आदिम प्रवृत्ति के दर्शन कवि-संमेलनों में प्रायः होते हैं । मुझे वह सारा कृत्रिम रंग-ढंग बिलकुल भी नहीं भाता ।"[119]

कवि महेन्द्र भटनागर युग-कवि हैं । उन्होंने अपनी अग्रज पीढ़ी की कविता से आगे निकलकर कविता को जनवाणी बनाया । "प्रगतिशील कविता, चूँकि, युगबोध और विचारों के प्रति अधिक आग्रहशील रही, इसलिए अपने प्रारंभिक काल में अवश्य ही वह शिल्प को अधिक सँवारने में असमर्थ रही । लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि सन् 1936 तक आते-आते छायावादी कला भी अपनी अत्यधिक अंतर्मुखी दृष्टि, वायवी कल्पना, अलंकारगत मोह और लक्षणा एवं प्रतीक-पद्धति की दुरारूढ़ व्यंजना की बोझिलता तथा एकरसता से निष्प्राण हो चली थी । सुमित्रानंदन पंत के शब्दों में "उसके पास भविष्य के लिए नवीन आदर्शो का प्रकाश, नवीन भावनाओं का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था । वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था ।"[120] ऐसे समय में प्रगतिशील कला की सहज सरलता एवं अनलंकृति एकरसता के घेरे को तोड़कर जन-मानस में नवीन रस की हिल्लोल जगा सकने में समर्थ हुई । मिट्टी की महक से परिपूर्ण अनेक ऐसे बिम्बों की सृष्टि प्रगतिशील कवि ने की जो अपनी मूर्ति-माँसलता और युग वास्तव से जुड़ी स्वाभाविकता के कारण उस समय के पाठक को सहज ग्राह्य हो सके । कवि महेन्द्र भटनागर की 'संध्या के पहले तारे से' शीर्षक कविता में ऐसे अनलंकृत बिम्ब का उदाहरण मिलता है :

‘शून्य नभ में है चमकता आज क्यों बस एक तारा ?
जबकि क्षण-क्षण पर प्रगतिकर रात आती जा रही है,
चन्द्र की हँसती कला भी ज्योति क्रमशः पा रही है,
हो गया है जब तिमिरमय विश्व का कण-कण हमारा !’

कवि भावनाओं-कल्पनाओं के जगत का स्वामी होता है । अन्य की तुलना में यह अधिक संवेदनशील और भावुक होता है । कवि अपनी कल्पना से निर्जिव व तुच्छ वस्तु को जीवंत और उत्कृष्ट बना देता है । कभी वह स्वान्तः सुखाय लिखता है तो कभी जनकल्याण की भावना से प्रेरित काल के अनुसार कविता की कथावस्तु और प्रयोजन बदलते रहते हैं । काव्य वही चिरकाल तक अपना महत्व स्थापित कर सकता है जिसमें युगबोध हो, जीवन की सच्चाई, यथार्थ व आदर्श का चित्रण हो ।

साहित्य कला के बारे में आधुनिक विचार पुराने विचारों से मेल नहीं खाते । साहित्य के प्रतिमान बदल गये हैं । फलतः कवि-कर्म जटिल व कठिन हो गया है । मिडिया के प्रभाव से राष्ट्रों के बीच की दूरी समाप्त हो गयी है। फलतः कवि की चेतना व्यक्तिगत न होकर वैश्विक हो गई है । यही आज के वैज्ञानिक युग की सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

आज कवि किसी-न-किसी ‘वर्ग’, ‘वाद’ से जुड़े हैं । उनका साहित्य पक्षधर हो गया है । आधुनिक समाजों में कवि की स्थिति ‘एकांत’ नहीं है । कवि समाज में जन्म लेता, पलता और बड़ा होता है । फलतः उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण में समाज और परिवेश का महत्वपूर्ण योगदान रहता है ।

कवि महेन्द्र भटनागर प्रगतिवाद के द्वितीय उत्थान के कवि हैं । उनकी प्रारम्भिक कविताओं का मूल उत्स प्रकृति है । लेकिन प्रकृति-चित्रण से ही बँधे नहीं रहे । बारह वर्ष की उम्र से कविता लिखनेवाले कवि महेन्द्र भटनागर की प्रथम प्रकाशित कविता ‘हुंकार’ है, जिसे श्री मोहनसिंह सेंगर ने ‘विशाल भारत’ के मार्च 1944 के अंक में ‘महेन्द्र’ के नाम से छापा था ।

कवि महेन्द्र की कविता में राष्ट्रीय तथा समसामयिक जीवन को आन्दोलित करनेवाली अनेक घटनाएँ सशक्त अभिव्यक्ति प्राप्त कर सकी हैं ।

कवि महेन्द्र उन कवियों में से नहीं हैं जो शाश्वत सत्य अथवा चिरन्तन मूल्यों के नाम पर अपने समसामयिक युग-जीवन की उपेक्षा करने में ही कला की सार्थकता समझते हैं । उनकी स्पष्ट धारणा रही है : "सामयिकता की अवहेलना करके कोई भी कवि समाज के लिए कल्याणकारी साहित्य का सृजन नहीं कर सकता ।" अपनी 'कला' शीर्षक कविता में कला की सार्थकता वे इस प्रकार सिद्ध करते हैं :

"व्यक्त सिर्फ़ आज के सवाल चाहिए
तम नहीं, प्रभात लाल-लाल चाहिए
व्यक्ति की करुण कराह है उतारनी
आग जो दबी उसे पुनः उभारनी !" (कला : टूटती शृंखलाएँ)

कवि महेन्द्र भटनागर ने देश में राजनीतिक जागरूकता उत्पन्न करने का प्रयास किया है । जो उनके युगधर्म से जुड़ा हुआ है ।

महेन्द्र भटनागर समाज तथा सामाजिक समस्याओं के प्रति अत्यंत जागरूक हैं । उनकी राजनीतिक व सामाजिक जागरूकता पर्याप्त विकसित है जो उन्हें उनके भोगे हुए अनुभवों से मिली है ।

कवि महेन्द्र भटनागर ने लेखन-कार्य व्यावसायिक दृष्टि से कभी नहीं किया और लोकेषणा के लिए । जीवन-अनुभवों को कवि ने वाणी प्रदान की है । कविता महेन्द्र भटनागर के लिए एक हथियार है जिसके द्वारा कवि सामाजिक परिवर्तन करना चाहता है ।

महेन्द्र भटनागर के लिए कविता सौन्दर्य बोध जाग्रत करने, हृदय और मस्तिष्क का परिष्कार करने, मनुष्य को आस्थावान व आशावादी तथा संघर्ष-साहसिक बनाने के लिए है । जो वर्ग मानसिक कुंठाओं-कुत्साओं कविता में स्थान देता है उसके वे विरोधी हैं । वर्ग-भेद मिटाना कवि महेन्द्र भटनागर की कविता का लक्ष्य है । उनकी कविता अमीरी-गरीबी का अन्तर दूर करती, धर्म-निरपेक्षता को बल पहुँचाती, मानवीय संवेदना को अन्तराष्ट्रीय क्षितिज प्रदान करती, शांति और प्रेम का मूल्य समझाती आगे बढ़ती रही है । कवि महेन्द्र भटनागर ने अपनी कविता को छलनाओं के शिकार से बचाया है । अतिरिक्त जागरूकता ने कवि की रचनाधर्मिता को भटकने से बचाया है ।

महेन्द्र भटनागर घोर आशावादी कवि है । उनकी कविताओं में प्रारंभिक दशा से लेकर आज तक आशा का संदेश मिलता है । प्रयोगवादी रचनाओं में अधिकतर कुंठा और निराशा के स्वर ही गूँजते रहते हैं । परंतु महेन्द्र भटनागर की कविताओं में युगीन परिस्थितियों के चित्रण ले साथ नये संसार की उदय की भावना का सुंदर तथा प्रभावशाली चित्रण मिलता है ।

डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में कहे तो, "कवि महेन्द्र भटनागर की सरल सीधी ईमानदारी और सच्चाई पाठक को बरबस अपनी तरफ खींच लेती है । प्रयोग के लिए प्रयोग न करके, अपने को धोखा न देकर और संसार से उदासीन होकर संसार को ठगने की कोशिश न करके इस कवि ने अपनी समूची पीढ़ी को ललकारा है कि जनता के साथ खड़े होकर नयी जिन्दगी के लिए अपनी आवाज बुलन्द करें ।

महेन्द्र भटनागर की रचनाओं में तरुण और उत्साही युवकों का आशावाद है, उसमें नौजवानों का असमंजस और परिस्थितियों से कुचले हुए हृदय का अवसाद भी है । इसीलिए कविताओं की सच्चाई इतनी आकर्षक है। यह कवि एक समूची पीढ़ी का प्रतिनिधि है, जो बाधाओं और विपत्तियों से लड़कर भविष्य की और जानेवाले राजमार्ग का निर्माण कर रहा है ।

महेन्द्र भटनागर की कविता सामयिकता में डुबी हुई है । वे एक ऐसी जागरूक सहृदयता का परिचय देते है जो अशिव और असुंदर के दर्शन से सिहर उठती है तो जीवन की नयी कोपलें फूटते देखकर उल्लसित भी हो उठती है ।

कवि के पास अपने भावों के लिए शब्द हैं, छंद हैं, अलंकार हैं । उनके विकास की दिशा यथार्थ जीवन का चितेरा बनने की ओर है । साम्प्रदायिक-द्वेष, शासक वर्ग के दमन, जनता के शोक और क्षोभ के बीच सुन पड़नेवाली कवि की इस वाणी का स्वागत -

जो गिरती दीवारों पर नूतन जग का सृजन करे

वह जनवाणी है !

वह युगवाणी है !

अध्याय-1

1. 'हिन्दुस्तानी शब्दकोश', डॉ. अम्बाशंकर नागर, पृ.339
2. संस्कृत आलो चना, बलदेव उपाध्याय, पृ.134
3. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.3-4
4. वहीं
5. 'हिन्दुस्तानी शब्दकोश', सं. डॉ. अम्बाशंकर नागर, पृ.405
6. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.9
7. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.10
8. वहीं, भाग-5, पृ.401
9. वहीं, पृ.404
10. वहीं, पृ.405
11. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.11
12. भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता संघर्ष 1857-1947, एम.एल. घवन, पृ.45
13. वहीं, पृ.49
14. 'भारत का मुक्ति संग्राम', एस.एल. नागोरी, जीतेश नागोरी, पृ.43
15. वहीं, पृ.33
16. वहीं, पृ.33
17. वहीं, पृ.39-40
18. 'आजादी के पचास साल' !, विश्वप्रकाश गुप्त, मोहिनी गुप्त, पृ.120
19. वहीं, पृ.127
20. 'आजादी के पचास साल', भाग-1, पृ.129
21. वहीं, पृ.130
22. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर अनुभूति और अभिव्यक्ति, डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.14
23. 'आजादी के पचास साल', भाग-1, पृ.135
24. वहीं, पृ.140
25. 'भारतीय इतिहास कोश', सच्चिदानंद भट्टाचार्य, पृ.525
26. भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम तेज और तवारीख, कोंग्रेस-ऐतिहासिक भूमिका - विचारधारा, हरिहर खंभोकजा, पृ.236
27. 'भारतीय इतिहास कोश', सच्चिदानंद भट्टाचार्य, पृ.526
28. वहीं, पृ.526

29. भारत का राष्ट्रीय आंदोलन एवं स्वतंत्रता संघर्ष 1857-1947, एम.एल. घबन, पृ.25-26
30. वहीं, पृ.6-7
31. वहीं, पृ.27
32. वहीं, पृ.27
33. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर : अनुभूति और अभिव्यक्ति, डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.17
34. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता संघर्ष 1857-1947, पृ.63
35. वहीं, पृ.272
36. वहीं, पृ.64
37. संस्कृति के चार अध्याय, दिनकर, पृ.502
38. भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम तेज और तवारीख, पृ.155
39. आजादी के पचास साल, पृ.135
40. वहीं, पृ.136
41. वहीं, पृ.136
42. वहीं, पृ.137
43. अभियान : 'मशाल', डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.170
44. आजादी के पचास साल, पृ.147
45. अभियान : 'नौ सैनिक विद्रोह' समग्र खण्ड-1, पृ.230-31
46. अभियान : महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, 'जय-हिन्द'
47. तारो के गीत, महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, 'जागो'
48. आजादी के पचास साल, पृ.149
49. तारों के गीत, 'बलिपथी', पृ.87
50. वही
51. 'महात्मा गाँधी : व्यक्ति और विचार', विश्वप्रकाश गुप्त और मोहिनी गुप्ता, पृ.115
52. अभियान, डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1
53. अभियान, 'आजाद मस्तक को उठा लेता', भटनागर
54. वहीं, 'गांधी', समग्र खण्ड-1
55. 'आजादी के पचास साल', पृ.183
56. अन्तराल 'जागरण', महेन्द्र भटनागर, समग्र
57. 'आजादी के पचास साल', पृ.213

58. ‘आजादी के पचास साल’, पृ.117
59. Poetry & Experience, Maclush, P.131
60. ‘फिलहाल’, अशोक वाजपेयी, पृ.108
61. ‘अभियान’, महेन्द्र भटनागर समग्र-1, पृ.179
62. वहीं, ‘मेघकाले’
63. तारों के गीत, समग्र खण्ड-1, पृ.69
64. विहान ‘युग-कवि’, महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.90
65. कवि महेन्द्र भटनागर : सृजन और मूल्यांकन, सं.डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.142
66. अभियान ‘मशाल’ समग्र खण्ड-1, पृ.170
67. वहीं, ‘पराजय’, पृ.175
68. ‘आजादी के पचास साल’, पृ.102
69. ‘भारतीय अर्थ व्यवस्था नई शताब्दी में’, ओ.पी. शर्मा, पृ.1
70. वहीं, पृ.1
71. ‘भारत की भयावह आर्थिक स्थिति कारण और निदान’, चरणसिंह, पृ.127
72. ‘आजादी के पचास साल’, पृ.102
73. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.311
74. ‘सोवियेत संघ और भारत की आर्थिक स्वतंत्रता’, ए.एस. मूर्ति, पृ.120
75. समग्र खण्ड-1, नयी चेतना, ‘आजादी का त्यौहार’, पृ.130
76. जूझते हुए, ‘दरिद्र नारायण’, समग्र खण्ड-3, पृ.270-71
77. जूझते हुए, ‘विचित्र’, समग्र-3, पृ.276
78. वहीं, पृ.178
79. वहीं, पृ.179
80. वहीं, ‘त्रासदी’, पृ.210-11
81. जूझते हुए, ‘विश्वस्त’, समग्र खण्ड-3, पृ.213
82. आजादी के पचास साल, पृ.175
83. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.311
84. वहीं, पृ.232
85. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.234
86. विहान ‘हरिजन’, समग्र खण्ड-1, पृ.107
87. विहान ‘हरिजन’, पृ.106
88. वहीं, ‘साम्प्रदायिक विष’, पृ.237
89. विहान, ‘हम एक है’ समग्र खण्ड-1, पृ.240 (आमुख से)

90. ‘आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास’, रविंदर कुमार
91. ‘शीताभ’, समग्र खण्ड-1, पृ.69
92. ‘असह्य’, समग्र खण्ड-1, पृ.95
93. वहीं, ‘प्रतिकुलता’, पृ.96
94. ‘प्रतिकुलता’ विहान, समग्र खण्ड-1, पृ.96
95. वहीं, बदलता युग, ‘बदल रही है’, पृ.257
96. ‘तूफान’, बदलता युग, समग्र खण्ड-1, पृ.224
97. ‘सर्वनाश’, वहीं, पृ.226
98. ‘प्रजातंत्र’, जूझते हुए, समग्र खण्ड-1, पृ.223
99. वहीं
100. ‘हरिजन’ विहान, समग्र खण्ड-1, पृ.104
101. ‘श्रमिक’, जिजीविषा, समग्र खण्ड-2, पृ.323
102. वहीं, ‘मानव समता का त्यौहार’, पृ.324
103. वहीं, पृ.324
104. वहीं, पृ.325
105. ‘हरिजन’, विहान, समग्र खण्ड-1, पृ.106
106. ‘दमित नारी’, बदलता युग, समग्र खण्ड-1, पृ.235
107. वहीं, पृ.236
108. वहीं, पृ.237
109. ‘अफसोस है’, ‘बदलता युग’, समग्र खण्ड-1, पृ.250
110. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.7
111. वहीं
112. वहीं
113. वहीं, पृ.8-9
114. वहीं, पृ.9
115. वहीं, पृ.9
116. कवि महेन्द्र भटनार का रचना संसार, सं.डॉ. विनयमोहन शर्मा ‘आमुख’, पृ.9
117. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.10
118. वही
119. ‘कवि महेन्द्र भटनागर : सृजन और मूल्यांकन’, सं.डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.145
120. ‘शिल्प और दर्शन’, पृ.43

द्वितीय अध्याय

महेन्द्र भटनागर :

संक्षिप्त जीवन परिचय

द्वितीय अध्याय

महेन्द्र भटनागर : संक्षिप्त जीवन परिचय

"महेन्द्र भटनागर एक ऐसे कवि का नाम है जो जीवन-समुद्र की लहरियों को दूर खड़ा तटस्थ भाव से निहारता भर नहीं, वरन् बिना नाव पतवार के समुद्र में कूद पड़ता है ।"[1] ऐसे प्रबुद्ध कवि को जो अपने काव्य में सामाजिक अनुभूतियों को हुए है; उसके काव्य में समसामयिक संदर्भों की अभिव्यक्ति जानने से पहले; उसके जीवन के बारे में जानना आवश्यक है । तभी हम उसके काव्य के भावप्रदेश तक पहुँच सकेंगे ।

बाह्य व्यक्तित्व :

"साँवला रंग, उन्नत ललाट, आँखों में छिपा गहरा दर्द, मध्यम ऊँचाई का स्वस्थ-सुडौल शरीर यह है महेन्द्र भटनागर का बाह्य व्यक्तित्व । वेशभूषा अन्तर्राष्ट्रीय पेण्ट, कोट या बुशर्ट । टाई नहीं । बिना फीते वाले जूते । नंगे सिर । घर में अधिकतर तहमद पहने मिलेंगे - गर्मियों में बनियान, जाड़ों में बुशर्ट-सुएटर के साथ । बाजार में ज्यादातर साइकिल पर या स्वेगा-लेम्ब्रेटा पर । लबो-लहज़ा मधुर-आकर्षक । व्यवहार बड़ा ही आत्मीयतापूर्ण । स्वभाव से शांत, किन्तु उसूलों के पक्के । अनियमित कार्यों से दूर । इस कारण मतलबी मित्रों की नाराजगी व उपेक्षा के शिकार । यात्रा-भीरु । मंच-भीरू । भाषण अथवा काव्य-पाठ करना यातना से गुज़रना । इस कारण कार्यक्रमों-उत्सवों में बहुत कम दृष्टव्य । किसी धार्मिक मतवाद के कायल नहीं । दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं अत्याधुनिक । जातिवाद विरोधी । पूर्ण निरामिष । सुरा व सिगरेट कभी नहीं । हृदय रोग के कारण आजकल चाय-कॉफ़ी भी बंद । मेहमान-नवाज़ी विरासत में, किन्तु दुष्टों और चरित्रहीनों से ज़बरदस्त एलर्जी । राजनीतिज्ञों से ख्रास नफरत । सहज एवं स्पष्ट । नैतिक संवेदना से पूर्ण । साम्यवादी समाजव्यवस्था के पक्षधर । उसके लिए निरन्तर संघर्षशील । स्वयं का अधिकांश कार्यकाल अल्प-वेतन पर बीता ।"[2] अर्थात् जलकमलवत् कवि का जीवन रहा है ।

जन्म :

महेन्द्र भटनागर का जन्म 26 जून, सन् 1926 को प्रातः छह बजे,

बुन्देलखण्ड ही नहीं, भारत के शौर्य और बलिदान से सम्बद्ध इतिहास-प्रसिद्ध नगर झाँसी में हुआ । कवि की ननसार झाँसी में थी । पिता उन दिनों ग्वालियर रियासत की नौकरी में अध्यापक थे । माँ का नाम श्रीमती गोपालदेवी और पिता का नाम श्री रघुनन्दनलाल था । माँ धार्मिक मनोवृत्ति की - पूजा पाठ, नेम-धरम, व्रत आदि में विश्वास करनेवाली - वैष्णव थीं । वे छूआछूत भी बहुत मानती थीं । रसोई में प्याज़-लहसुन वर्जित था । उर्दू और हिन्दी पढ़ी हुई थी । 'रामचरितमानस' का पाठ प्रायः करती थीं । परम्परागत रीति-रिवाज़ों में पूर्ण आस्था थी । पर्व-त्यौहार विधिवत् मनाती थीं । अनेक लोककथाएँ, पहेलियाँ और लोकगीत कण्ठस्थ थे । उनके रहते घर का वातावरण परम्परागत संस्कारों से युक्त रहता । अन्तिम समय तक वह अपने इन विश्वासों पर अडिग रही । उनका निधन लगभग 77 वर्ष की आयु में 13 जुलाई, 1977 को उज्जैन में हुआ ।

पिता आर्यसमाजी थे । आर्य-समाज के सक्रिय कार्यकर्ता थे । उनमें धार्मिक सहिष्णुता और औदार्य भरपूर था । अच्छे खिलाड़ी थे । विशेषरूप से बॉलीबॉल के । परिवार की आर्थिक दशा अच्छी न होने से उन्हें कम उम्र में नौकरी करनी पड़ी । अंग्रेज़ी व उर्दू पर उनका अच्छा अधिकार था ।

वे इतिहास विषय में एम.ए. (आगरा विश्वविद्यालय) थे । प्रथम नियुक्ति नीमच शहर में हुई । माध्यमिक विद्यालयों के प्राधानाध्यापक रहे, शासकीय इण्टरमीडिएट कॉलेज, मन्दसौर में इतिहास के व्याख्याता रहे, उज्जैन में सहायक शिक्षा-निरीक्षक रहे और अन्त में द्वितीय श्रेणी के हाइस्कूल (मुरार, ग्वालियर) के प्रधानाध्यापक पद से छप्पन वर्ष की आयु में सेवा-निवृत्ति हुई । वे अपने सिद्धांतों के बड़े पक्के थे । इस कारण उन्हें कई बार कड़े संघर्ष करने पड़े । संघर्ष में वे विजयी हुए । सेवा-निवृति के बाद भी शिक्षा कार्यों से जुड़े रहे । तत्कालीन शिक्षा संचालक प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री श्री भैरवनाथ झा और पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी से उनके बड़े घनिष्ठ और सम्मान पूर्ण संबंध रहे । पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार थे अतः उनके कवि पुत्र महेन्द्र भटनागर को भी उनका आशीर्वाद और स्नेह मिला । श्री रघुनन्दनलालजी का निधन कोरोनरी थोम्ब्रोसिस से 17 जुलाई 1959 को लगभग उनसठ वर्ष की आयु में ग्वालियर में हुआ ।

“कवि महेन्द्र भटनागर को अपनी वंशावली का ज्ञान अत्यल्प है । इस दिशा में उनकी रुचि कभी नहीं रही । दादी-बाबा तक को उन्होंने नहीं देखा । ननसार पक्ष के मात्र नाना के सम्पर्क में आये । झाँसी में बचपन में नानाजी ने उन्हें उर्दू सिखाई थी । तब वे बुर्रू की कलम और काली रोशनाई से बहुत अच्छी तख्ती लिखते थे ।”[3] बचपन बड़ी बेफिक्री और आज़ादी से बीता । पढ़ने-लिखने में रुचि कम रही ।

प्रारंभिक शिक्षा :

महेन्द्र भटनागर की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई । पिताश्री जब प्रधानाध्यापक बनकर माध्यमिक विद्यालय, सबलगढ़ (मुरैना) पहुँचे तब वे वहाँ प्रथम बार सातवी कक्षा में भर्ती हुए । वहीं प्राथमिक चिकित्सा (सेंट जॉन एम्बुलेन्स, एसोसिएशन) की परीक्षा उत्तीर्ण की । ग्वालियर रियासत की नौकरी में, पिता जहाँ-जहाँ स्थानान्तरित होकर गए वहाँ पूरे परिवार को जाना पड़ा । ‘मुरार विद्यालय’ से आठवीं कक्षा उत्तीर्ण की । परीक्षा-केन्द्र ‘गोरखी विद्यालय’; लश्कर था । सन् 1941 में हाईस्कूल मुरार से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की । अंक गणित में बेहद कमज़ोर थे । रेखा-गणित और बीज-गणित के बल पर गणित विषय में उत्तीर्ण हो सके । चित्रकला और इतिहास में विशेष रुचि थी । उन दिनों पिता छात्रावास के अधीक्षक थे और विधालय-परिसर में ही रहते थे । इस समय द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था । दैनिक समाचार-पत्रों को देखने-पढ़ने से देश-विदेश की गतिविधियों में रुचि उत्पन्न हुई । राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के आन्दोलनों और राष्ट्रीय नेताओं तथा हिटलर-मुसोलिनी-चर्चिल-स्तालिन के बारे में जाना । साम्राज्यवाद, नाजीवाद, प्रजातंत्र और साम्यवाद से परिचय हुआ । यह काल महेन्द्र भटनागर के बौद्धिक जागरण का काल है । छात्रावास के प्रबुद्ध छात्रों के भी सम्पर्क में आए, जिनमें कवि स्व. श्री रघुनाथ सिंह चौहान के संसर्ग की स्मृतियाँ सजीव हैं । 1941 में इंटरमीडिएट कक्षा के प्रथम वर्ष में विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर में प्रवेश । अंग्रेज़ी-हिन्दी के अतिरिक्त अन्य विषय अर्थशास्त्र और भूगोल थे । पिताजी का स्थानान्तरण होने से इंटरमीडिएट का द्वितीय वर्ष ‘माधव महाविधालय’ उज्जैन से 1943 में उत्तीर्ण किया । प्रसिद्ध साहित्यकार श्री नरेश महेता यहाँ उनके सहपाठी रहे ।

इस दौरान मुरार में अपने बड़े चाचाजी के पास रहे । इन्हीं दिनों कई लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों से परीचय हुआ जिनमें श्री हरिनिवास द्विवेदी और श्री जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रमुख थे । श्री हरिहर निवास द्विवेदी की प्रेरणा से इसी सत्र 'उत्तमा' के प्रथम खंड की परीक्षा उत्तीर्ण की । कवि श्री महेद्र भटनागर जी को डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' से पढ़ने का अवसर विक्टोरिया कॉलेज में प्राप्त हुआ ।

आर्थिक स्थिति :

कवि श्री महेन्द्र भटनागर की घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी । अतः वह आगे नहीं पढ़ पाये, बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जुलाई 1945 में 'मॉडल हाईस्कूल' उज्जैन में भूगोल के अध्यापक की नौकरी स्वीकार की । इसके पूर्व इसी स्कूल में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री गजानन माधव मुक्तिबोध ने भी अध्यापन कार्य किया था । यहीं श्री गजानन माधव मुक्तिबोध के अनुज यशस्वी मराठी-कवि श्री शरच्चंद्र मुक्तिबोध से महेन्द्र भटनागर का घनिष्ठ परिचय हुआ । सन् 1950 में 'टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, देवास' से एल.टी. का डिप्लोमा किया । आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी उन दिनों 'शांतिनिकेतन' में थे । डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' के लिखने पर आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने महेन्द्र भटनागर जी को शोध करने हेतु 'शांतिनिकेतन' बुलाया, किन्तु घर की आर्थिक स्थिति शोचनीय होने के कारण वे हाईस्कूल की अपनी सरकारी पक्की नौकरी छोड़कर शोध-कार्य करने 'शांतिनिकेतन' नहीं जा सके । आगे चलकर अध्यापन-कार्य करते हुए सन् 1957 में डॉ. विनय मोहन शर्मा के निर्देशन में 'नागपुर विश्वविद्यालय' से 'प्रेमचन्द के उपन्यास' नामक विषय पर पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की ।[4]

विवाहित जीवन :

महेन्द्र भटनागरजी का विवाह 12 मई, 1952 को स्व. श्री वसन्तराय भटनागर की सुपुत्री कमलेशकुमारी से मुरार (ग्वालियर) में हुआ । श्रीमती कमलेशकुमारी (कवि द्वारा प्रदत्त नाम 'सुधारानी') ने सन् 1950 में पंजाब विश्वविद्यालय की भूषण परीक्षा उत्तीर्ण की तथा विवाह के पश्चात् 1954 में मैट्रिक परीक्षा । कवि श्री महेन्द्र भटनागर के तीन पुत्र हैं; जिनमें जयेष्ठ पुत्र

श्री अजयकुमार डॉक्टर हैं, दूसरे पुत्र आलोककुमार बैंक में ब्रांच मैनेजर है तथा तीसरे पुत्र कुमार आदित्य विक्रम यशस्वी गायक (सुगम-संगीत) हैं ।

कार्यक्षेत्र :

महेन्द्र भटनागरजी ने 'मॉडल हाईस्कूल, उज्जैन' में (1945-46) मात्र एक सत्र सर्विस की । 1946 से वे शासकीय सेवा में आये और 'महाराजवाड़ा हाईस्कूल, उज्जैन' में सहायक अध्यापक के पद पर पदस्थ हुए । 1950 में 'आनन्द इन्टरमीडिएट कॉलेज', धार में हिन्दी के व्याख्याता बने । इस समय तक वे हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों की प्रथम पंक्ति में स्थान पा चुके थे और हिन्दी की लब्धप्रतिष्ठ सभी पत्रिकाओं में प्रमुखता से छपते थे । 1955 में 'माधव महाविद्यालय, उज्जैन' में प्राध्यापक बने । 1957 में पदोन्नत होकर सहायक प्रोफ़ेसर । 1969 में 'शासकीय महाविधालय, मंदसौर' में स्नातकोत्तर प्रोफ़ेसर बने । 1978 में 'कमलाराजा कन्या महाविधालय, ग्वालियर' आ गये और यहीं से 30 जून, 1984 को सेवा-निवृत्त हुए ।

महेन्द्र भटनागर प्रमुख रूप से कवि हैं - किंतु प्रोफेसर पद पर कार्यरत रहने के फलस्वरूप शोध की दिशा में भी उनकी कुछ उपलब्धियाँ हैं । प्रेमचन्द के औपन्यासिक दृष्टिकोण पर उनका स्वयं का शोध-कार्य मौलिक व विशिष्ट है। उनके निर्देशन में सोलह शोधार्थियों ने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है ।

यद्यपि महेन्द्र भटनागर बारह वर्ष की उम्र में ही कविता करने लगे थे, किन्तु वह उनके कवि का बाल-प्रयास था । कवि को कविता के प्रति रूचि, प्रकृति के माध्यम से हुई । प्रकृति उनकी कविता की प्रेरणा का आधार बनी ।

महेन्द्र भटनागर की काव्य-यात्रा स्वाधीनता-पूर्व भारत से शुरु होकर 'नयी कविता' और 'समकालीन कविता' के व्यापक परिदृश्य को समेटे हुए चलती है । यह काल-खंड अनेक विभिन्नताओं और विविधताओं से भरा हुआ है। विगत पचास-साठ वर्षो में भारत और सम्पूर्ण विश्व में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं । बीसवीं शताब्दी उपलब्धियों और हलचलों से भरी शताब्दी रही है । भारत में भी अनेकानेक परिवर्तन हुए हैं । इनका इतिहास रोचक और दिलचस्प है । हिन्दी में बहुतकम ऐसे कवि है, जिनकी कृतियों के माध्यम से स्वाधीनता-पूर्व और बाद के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिदृश्य का जायज़ा लिया जा

सकता है । बेशक, महेन्द्र भटनागर एक ऐसे कवि है जिनकी रचनाओं में समय और इतिहास की धड़कनों को सुना जा सकता है ।”[5]

कवि महेन्द्र भटनागर के काव्य की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं -

“कवि महेन्द्र भटनागर की सरल सीधी ईमानदारी और सच्चाई पाठक को बरबस अपनी तरफ खींच लेती है । प्रयोग के लिये प्रयोग न करके, अपने को धोखा न देकर और संसार से उदासीन होकर संसार को ठगने की कोशिश न करके इस कवि ने अपनी समूची पीढ़ी को ललकारा है कि जनता के साथ खड़े होकर नयी जिंदगी के लिए अपनी आवाज़ बुलंद करे ।

महेन्द्र भटनागर की रचनाओं में तरूण और उत्साही युवकों का आशावाद है, उसमें नौजवानों का असंमजस और परिस्थितियों से कुचले हुए हृदय का अवसाद भी है । इसलिए कविताओं की सच्चाई इतनी आकर्षक है । यह कवि एक समूची पीढ़ी का प्रतिनिधि है, जो बाधाओं और विपत्तियों से लड़कर भविष्य की ओर जानेवाले राजमार्ग का निर्माण कर रहा है ।

महेन्द्र भटनागर की कविता सामयिकता में डुबी हुई है । वे एक ऐसी जागरूक सहृदयता का परिचय देते है जो अशिव और असुन्दर के दर्शन से सिहर उठती है तो जीवन की नयी कोपलें फूटते देखकर उल्लासित भी हो उठती है ।”[6]

“कवि के पास अपने भावों के लिए शब्द है, छंद है, अलंकार हैं । उनके विकास की दिशा यथार्थ जीवन का चितेरा बनने की ओर है । साम्प्रदायिक द्वेष, शासक-वर्ग के दमन, जनता के शोक और क्षोभ के बीच सुन पड़नेवाली कवि की इस वाणी का स्वागत”[7]

जो गिरती दीवारों पर नूतन जग का सृजन करे

वह जनवाणी है !

वह युगवाणी है !

कवि महेन्द्र भटनागर ने समाज और राष्ट्र को अपने काव्य में प्रमुखता से चित्रित किया है ।

महेन्द्र भटनागर प्रगतिवाद के द्वितीय उत्थान के केन्द्रीय कवि माने जाते हैं । सन् 1947 ई. में पहलीबार 'हंस' में महेन्द्र भटनागर की कविता प्रकाशित हुई थी ।

कवि श्री महेन्द्र भटनागर अपनी कविता लेखन के विषय में कहते हैं - "आज की कविता 'प्रगति' और 'प्रयोग' के दृष्टिकोण से देखी जाती है । मैं प्रयोग करता हूँ, लेकिन प्रयोग से मेरा अभिप्राय प्रयोगवादियों से भिन्न है, जो प्रयोग के चमत्कारिक प्रदर्शनों से साहित्य की जनवादी विचारधारा को दबा रहे हैं । प्रयोगों का सामाजिक संबंध होना अनिवार्य है । प्रगतिशील दृष्टिकोण से जन-जीवन के भावों की अभिव्यक्ति यदि नाना रूपों में की जाती है तो यह एक स्वस्थ और जीवनदायी परम्परा कही जाएगी । मैं यह देख रहा हूँ कि हिन्दी के अनेक प्रगतिशील-जनवादी कवियों में आज वह तेजी नहीं रही जो पहले थी । उनमें से बहुत से प्रयोग-शैली के भँवर में फँसकर जनवादी परम्पराओं से दूर होते जा रहे हैं । उनकी कविताएँ दुरूह, कलाहीन और अप्रभावशाली होती जा रही है । मैं जहाँ कविता में नये-नये प्रयोगों का समर्थक हूँ, वहाँ दूसरी ओर उसके विचार-पक्ष में प्रगतिशील-दर्शन की छाया भी देखना चाहता हूँ - तभी कविता राष्ट्रीय तथा सामाजिक चेतना दे सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है । अन्यथा वह थोड़े से व्यक्तियों की चीज़ बनकर रह जाएगी और स्रष्टा युगधर्म निभाने में असफल रहेगा ।"[8]

कवि श्री महेन्द्र भटनागर ने अनेक उत्तरदायी कार्यों का सफलतापूर्वक सम्पादन किया । वे 'देवी अहिल्याबाई' (इन्दौर), 'विक्रम' (उज्जैन) और 'जीवाजी' (ग्वालियर) विश्वविधालयों की महत्वपूर्ण समितियों पर रहे । संक्षेप में उनके कार्यों एवं उपलब्धियों की तालिका प्रस्तुत है :

1. साहित्यिक संस्थाओं के पदाधिकारी
   - प्रतिभा निकेतन, देवास (सचिव)
   - युवक साहित्यकार संघ, धार (अध्यक्ष)
   - हिन्दी साहित्य परिषद, उज्जैन (सचिव)

- आन्तर-भारती, उज्जैन (सचिव)
- मानस चतुश्शती समारोह ज़िला समिति, मंदसौर (उपाध्यक्ष)
- सूर-पंचशती समारोह ज़िला-समिति, मंदसौर (अध्यक्ष)
- महर्षि अरविन्द शताब्दी समारोह समिति, मंदसौर (सदस्य)
- प्रबुद्ध भारती, ग्वालियर (अध्यक्ष)
- मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (सदस्य : 'हिन्दी विषय सलाहकार समिति' - 1981 से 1983)

2. *संयोजक :*

युवा-लेखक-शिविर - 1980 (मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, भोपाल एवं जीवाजी विश्वविधालय, ग्वालियर के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित) ।

3. *आकाशवाणी :*

सदस्थ - ड्रामा ऑडीशन कमेटी, केन्द्र इंदौर (1960) अनुबन्धित कवि 1954 से सुगम संगीत, आकाशवाणी के अनेक केन्द्रों से विभिन्न कार्यक्रमों का समय-समय पर प्रसारण ।

4. *निर्णायक (पुरस्कार योजनाएँ) :*

(1) बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना - 1981, 83

(2) उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ - 1983

5. *अनुवाद-कार्य :*

मराठी कविताओं का हिन्दी में ।

(आकाशवाणी केन्द्र - इन्दौर से 'दिल की बोली एक' नामक कार्यक्रमान्तर्गत प्रसारित (1966)

6. *प्रतिभागी :*

लेनिन शताब्दी परिसंवाद (साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा इन्दौर में आयोजित) ।

7. *प्रकाशित मौलिक कृतियाँ :* काव्य

(1) तारों के गीत 1949

(2) टूटती शृंखलाएँ 1949

(3) बदलता युग 1953

(4) अभियान 1954

(5) अन्तराल 1954

(6) विहान 1956

(7) नई चेतना 1956

(8) मधुरिमा 1959

(9) जिजीविषा 1962

(10) सन्तरण 1963

(11) संवर्त 1972

(12) संकल्प 1977

(13) जूझते हुए 1984

(14) जीने के लिए 1990

(15) आहत युग 1997

(16) अनुभूत क्षण 2001

(17) मृत्यु-बोध : जीवन-बोध (2001)

(18) राग-संवेदन 2005

शोध-आलोचना :

(19) समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द (शोधप्रबंध) 1957

(20) आधुनिक साहित्य और कला 1956

(21) विजय-पर्व : एक अध्ययन 1957

(22) दिव्या : विचार और कला 1956

(23) नाटककार हरिकृष्ण 'प्रेमी' और 'संवत-प्रवर्तन' 1961

(24) 'पुण्य-पर्व' आलोक 1962

रेखाचित्र / लघुकथा :

(25) लड़खड़ाते कदम 1952

(26) विकृतियाँ 1958

(27) विकृत रेखाएँ : धुँधले चित्र, संयुक्त, 1966

एकांकी / फ़ीचर :

(28) अजेय-आलोक 1962

बाल / किशोर साहित्य :

(29) हँस-हँस गाने गाएँ हम ! 1957

(30) बच्चों के रूपक 1958

(31) देश-देश की कहानी 1967

(32) जय-यात्रा 1971

(33) दादी की कहानियाँ 1974

8. *विशिष्ट काव्य संकलन - चयनिका* **1966**

- कवि श्री महेन्द्र भटनागर - संवत् 2027 वि.

- बूँद नेह की, दीप हृद का (एक-सौ गेय गीत) 1967

- हर सुबह सुहानी हो 1984

9. *सह-लेखन - हिन्दी साहित्य कोश (भाग एक)*

सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि ।

10. *ग्रन्थावली-योजनान्तर्गत - महेन्द्र भटनागर की कविताएँ*

प्रकाशन (रचनावली भाग-1) 1981

11. *सम्पादन-अनुभव*

- ‘सन्ध्या’ (मासिक) 1948 उज्जैन

- ‘प्रतिकल्पा’ (त्रैमासिक) 1959 उज्जैन

- ‘तुलसी-स्मारिका’ (मानस चतुश्शती समिति, मंदसौर)

- ‘संवाद’ (आलेख । युवा लेखक शिविर, ग्वालियर) 1980

- ‘जनरल ऑफ जीवाजी विश्वविधालय’ (मानविकि) 1981-83

- डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर अभिनन्दन-ग्रन्थ

(समकालीन भारतीय नाटक) - त्रिवेन्द्रम्-केरल, 1983-84 ।

12. *सम्मान एवं पुरस्कार :*

(1) कला-परिषद, मध्यभारत सरकार से 'लड़खड़ाते कदम' (रेखाचित्र-लघुकथा संग्रह) पर पुरस्कार, 1952

(2) मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद, भोपाल से 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द' (शोध-प्रबंध) पर पुरस्कार एवं अध्यक्ष डॉ. कैलाशनाथ काटजू द्वारा प्रदत्त प्रशस्ति-पत्र ।

(3) मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद भोपाल से 'देश-देश की बातें' (किशोर साहित्य) पर रसनिधि-पुरस्कार एवं अध्यक्ष डॉ. कैलाशनाथ काटजू द्वारा प्रदत्त प्रशस्ति-पत्र

(4) मध्य-भारत हिन्दी साहित्य सभा, ग्वालियर द्वारा 'हिन्दी-दिवस' पर सम्मान (1979)

(5) 'अंकुर' नामक साहित्यिक संस्था, ग्वालियर के तत्वाधान में कुलपति, जीवाजी विश्वविधालय द्वारा सम्मान : 1982 ।

13. *अनूदित रचनाएँ :*

- चेक में । अनेक कविताएँ चेक-पत्रिका

'नोवी ओरिएंट' में प्रकाशित अनु. डॉ. ओडोलन स्मेकल, चेक-रेडियो से प्रसारण भी (24 जनवरी, 1957)

- अंग्रेजी में । काव्यानुवाद पुस्तकाकार प्रकाशित ।

(1) फोट्टी पोयम्स : 1968

(2) आफ्टर फोट्टी पोयम्स : 1979

(अनु. श्री अमीर मोहम्मद ख़ाँ, प्रो. लक्ष्मी शंकर शर्मा, डॉ. रामसेवक सिंह यादव, प्रो. वारीन्द्रकुमार वर्मा)

- कन्नड़ में (पुस्तकाकार प्रकाश्य)

(अनु. श्री नारायण राव, डॉ. श्रीमती एम. विमला)

- मराठी में । (पुस्तकाकार प्रकाश्य)

(अनु. डॉ. न.चि. जोगेकर)

- तमिल में (पुस्तकाकार प्रकाश्य)

(अनु. श्री के.आर. जमदग्नि, डॉ. पी.जयरामन)

- तेलुगु में ।

(अनु. डॉ. भीमसेन 'निर्मल')

- मलयालम में । (अनु. डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर, श्रीमती डी.एस. पोन्नम्मा, श्री सी. कृष्णन नायर)

- कन्नड़ में अनेक गद्य-रचनाएँ अनूदित-प्रकाशित

(अनु. श्री का. रामचन्द्र भट्ट)"[9]

कवि महेन्द्र भटनागर की काव्य-यात्रा का शुभारम्भ मात्र बारह वर्ष की छोटी उम्र से शुरु होता है । कविता का यह उनका बाल-प्रयास था। कविता करने की प्रेरणा उन्हें प्रकृति-दर्शन से मिली । आगे चलकर मानवीय सुख-दुःख और सामाजिक वैषम्य ने उनकी काव्य-चेतना को अधिक प्रभावित किया । उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि राजनीति जब साधारण जनता के जीवन को प्रभावित करती है तब उससे विलग भी नहीं रहा जा सकता है । अतः राजनीतिक चेतना से मैं अपने को न बचा सका । महाविद्यालयीन जीवन में प्रवेश करने के साथ ही उनके कवि को दिशा और राह प्राप्त हुई । साथी मिले । माहौल मिला । सम-सामयिक हिन्दी कविता से पहचान हुई । 1944 में 'विशाल भारत' (कलकत्ता) से साहित्यिक पत्र में प्रकाशन हुआ, जिसके सम्पादक श्री मोहनसिंह सेंगर थे । यह पत्र उन दिनों हिन्दी का सर्वाधिक प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्र था । फिर तो महेन्द्र भटनागर हिन्दी के प्रायः प्रत्येक स्तरीय पत्र में नियमित लिखने लगे । 'कर्मवीर' में श्री माखनलाल चतुर्वेदी उनकी कविताएँ लगातार प्रकाशित करते रहे । आगे चलकर महेन्द्र भटनागर 'हंस' और 'जनवाणी' में प्रमुखता से प्रकाशित हुए । श्री स.ही. वात्सायन 'अज्ञेय' के सम्पर्क में आए । 'प्रतीक' में छपे । सम्भवतः जनवादी विचारधारा के कारण 'अज्ञेय'जी की साहित्यिक राह उन्हें रास नहीं आयी । दुरुहता न तो उनके काव्य में है न जीवन में । अतः उन्होंने अपने को 'सप्तक-परम्परा' से

सजग-सचेष्ट होकर अलग ही रखा । श्री गिरिजाकुमार माथुर ने नई 'कविता का भविष्य' शीर्षक से अपने लेख 'आलोचना' में लिखा है "शताब्दी के अर्धचरण तक आते-आते नये कवियों की एक पीढ़ी उठकर साहित्य-क्षितिज पर आई । धर्मवीर भारती, हरिव्यास, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, महेन्द्र भटनागर, सर्वेश्वर दयाल, मदन वात्सायन, विजयदेव साही, नामवर सिंह, सिद्धनाथ कुमार, आदि कितने ही नए कवि ।"[10] कवि महेंद्र अपनी पहचान है । उनका अपना एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है । कवि श्री महेन्द्र भटनागर अपना रचना-धर्म निभाने में खरे उतरे हैं । वे कोई विवाद या बहस में नहीं पड़े । उनका लक्ष्य साफ़ है; जिसे पूरा करने वे अपनी राह पर बिना किसी संशय के आगे बढ़ते रहे हैं ।

संदर्भ ग्रंथ

1. सामाजिक चेतना के शिल्पी कवि महेन्द्र भटनागर : सं.डॉ.हरिचरण शर्मा, पृ.1
2. वही, पृ.1
3. महेन्द्र भटनागर की काव्य-साधना : श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.1 और 3
4. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द नाम से प्रकाशित
5. महेन्द्र भटनागर समग्र : कविता खंड-1 पृ. 36-37
6. वही, डॉ. रामविलास शर्मा
7. महेन्द्र भटनागर समग्र : कविता खंड-1 आमुख
8. महेन्द्र भटनागर समग्र भाग-1 पृ.11 डॉ. श्रीनिवास शर्मा
9. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर अनुभूति और अभिव्यक्ति, डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ. 34-37
10. आलोचना, जुलाई 1954, पृ.64

तृतीय अध्याय

महेन्द्र भटनागर का कविता-संसार एक सर्वेक्षण

1. कविता लेखन का प्रारंभ
2. प्रेरक प्रभावक शक्तियाँ
3. प्रकाशित काव्य-कृतियाँ

तृतीय अध्याय

महेन्द्र भटनागर का कविता-संसार एक सर्वेक्षण

डॉ. महेन्द्र भटनागर ने सन् 1941 से जब विक्टोरिया कॉलेज, ग्वालियर में इण्टर के प्रथम वर्ष में प्रवेश लिया, तब से उनके काव्य लेखन का प्रारंभ हुआ (नवम्बर 1941) । इस काल की रचनाएँ उनके प्रारंभिक कविता-संग्रहों में संकलित हैं । इन कविताओं का कलात्मक मूल्य भले ही इतना न हो, पर वे कवि के विकास-क्रम को आँकने की दृष्टि से अपना ऐतिहासिक महत्व रखती हैं । ये रचनाएँ उनके किशोरकाल की रचनाएँ हैं । इन दिनों हिन्दी की मासिक पत्रिकाओं में 'विशाल भारत' जो कलकत्ता से प्रकाशित होती थी, का नाम अग्रगण्य था । इसके तत्कालीन संपादक श्री मोहनसिंह सेंगर थे । महेन्द्र भटनागर जी की एक लघु कविता 'हुंकार', 'विशाल भारत' (मार्च, 1944) में प्रकाशित हुई । यह उनकी प्रथम प्रकाशित कविता है, जो 'टूटती श्रृंखलाएँ' नामक कविता संग्रह में संकलित है ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर प्रारंभ में 'अज्ञात' उपनाम से कविता लिखते थे । उनके शब्दों में यह उपमान इस बात की स्पष्ट घोषणा करता था कि मैं कवि हूँ, अतः मित्रों के मध्य कवि रुप में जाना जाने लगा ।"[1] कवि की फिर 'महेन्द्र' के नाम से लिखा । आगे से इसी नाम से वे पत्र-पत्रिकाओं में लिखने लगे । जहाँ तक उनकी कविताओं के संकलनों के प्रकाशन का संबध है, वह रचना के कई वर्षों बाद हुआ । उन्होंने इस विषय में कहा है - "काफ़ी समय तक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही हिन्दी-जगत मेरे काव्य और उसके विकास से परिचित होता रहा । सर्वप्रथम सन् 1949 में इक्कीस गीतों की पुस्तिका 'तारो के गीत' प्रकाशित हुई ।" इसके बाद कवि की अन्य कविताओं के संकलन भी प्रकाशित होते रहे ।

इस तरह, पन्द्रह वर्ष की उम्र में कविता करना प्रारंभ करके, कवि रचना-कर्म में रत हुए; जो आज भी इस कर्म में लगे हुए हैं ।

प्रेरक प्रभावक शक्तियाँ :

डॉ. महेन्द्र भटनागर के काव्य की प्रारम्भिक प्रेरणा प्रकृति रही है । उन्होंने स्वयं इस बात की पुष्टि करते कहा है - "कविता लिखने की प्रेरणा

मुझे सर्वप्रथम प्रकृति से मिली । सबलगढ नामक उत्तर-मध्य भारत के वनाच्छादित गाँव में खूब भटका हूँ । उस समय मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था, तभी से कविता लिखने लगा । इन कविताओं के विषय - जंगल, फूल, वर्षा, उषा आदि हुआ करते थे ।"[3] इसके अलावा, उनके काव्य को प्रभावित करनेवाली तत्कालीन परिस्थितियां भी थीं । तब आम लोगों का जीवन दुष्कर व असहाय था । उन्होंने कहा है कि - "तदुपरान्त मेरी भावनात्मक और विचारात्मक चेतना की केन्द्र बनी पीड़ित, पददलित, तिरस्कृत, शोषित मानवता । वहीं से मैं उद्वेलित हुआ । वहीं मुझे सहज-निर्मल सौन्दर्य के दर्शन हुए । सर्वहारा के प्रति मेरे हृदय में सम्मान और प्रेम का भाव रहा है । स्वयं को भी मैं उससे पृथक नहीं मानता ।"[4] अत: कवि की काव्य प्रेरणा प्रकृति से होकर आम जीवन की व्यथा तक है । इस व्यथा को उन्होंने खुद महसूस किया है । लेकिन वे अपनी व्यथा का नहीं; जन समूह की व्यथा का गान गाना चाहते हैं। 'व्यष्टि' में वे कहते हैं -

"मैं केवल अपने सुख दुख का क्या गान करूँ ?"[5]

कवि महेंद्र भटनागर के काव्य की प्रमुख प्रेरणा सामाजिक असंतोष रहा है। वे रूढ़िगत परम्पराओं को तोड़कर 'युग-वीणा' के स्वर से नवयुग का निर्माण करना चाहते हैं । 'कवि' में वे अपने कविता के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

"मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग को निर्मित करनेवाला हूँ ।"[6]

इस तरह, कवि की काव्य-प्रेरणा का स्रोत तत्कालीन परिवेश भी है, जो कई कुण्ठाओं से ग्रस्त था ।

जहाँ तक हिन्दी-साहित्य का संबंध है, वे कबीर और प्रेमचन्द से सर्वाधिक प्रभावित हैं । हिन्दी की जनवादी साहित्यधारा का उन्होंने विशेष अध्ययन किया है । वे अपनी रचनाओं में आद्यन्त प्रगतिशील रहे हैं । सामन्तवादी, पूँजीवादी और साम्राज्यवादी रीतियों-नीतियों को विनष्ट करने के लिए वे सदैव तत्पर रहे हैं । प्रेमचन्द के विचारों से प्रभावित कवि 'प्रेमचन्द' कविता में वे लिखते हैं :

"तुम प्रगति-पथ की

नयी ज्योतित दिशा का

मार्गदर्शन कर रहे हो !

प्राण में बल भर रहे हो !"[7]

गांधीजी का जीवन भी कवि महेन्द्र भटनागर की कविता का प्रेरक है । उन्होंने एक जगह पर कहा है कि गांधीजी की राजनीतिक दृष्टि और उनके समाज व राष्ट्र उत्थान के कार्यों से मैं प्रभावित रहा हूँ । इसी प्रभाव को वाणी देते हुए कवि ने गांधीजी पर लिखित अपनी कविताओं में लिखा है :

"तुमने बुझते

युग-मानव के उर-दीपक में

निज जीवन का संचित स्नेह ढाल

अभिनव ज्योति जगायी है ।"[8]

*　　　*　　　*

"आज हमारी श्वासों में जीवित है गांधी

तम के परदे पर मन के ज्योतित है गांधी,

जिससे टकराकर हारी पशुता की आँधी !"[9]

कवि महेन्द्र भटनागर अपने को सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि मानते हैं । निर्धन, दुर्बल, उपेक्षित, पद-दलित, पीडित शोषित मानवता के वे सदैव पक्षधर रहे । कवि अपने को विद्रोही मानता है, पर उन्होंने हिंसा का समर्थन नहीं किया । उनके हृदय की गहराई में गौतम बुद्ध और गाँधी की करूणा विद्यमान है । शांति पर अपना अटूट विश्वास व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है -

"गौतम और गाँधी को हृदय के पास रखते हैं !

किसी को भी सताना

पाप सचमुच में समझते हैं,

नहीं हम व्यर्थ में पथ में

किसी से जा उलझते हैं !"[10]

डॉ. महेन्द्र भटनागर को कविता की प्रेरणा स्वाधीनता संग्राम से भी मिली । तत्कालीन वातावरण ने उनके काव्य को नए भाव दिए । उनके शब्दों में कहें तो, "उस समय द्वितीय महायुद्ध और भारतीय स्वाधीनता-संग्राम अपनी चरम सीमा पर थे, जिनका भावात्मक प्रभाव मेरे मन पर गहरा पडा । यह असम्भव था कि उसकी अभिव्यक्ति मेरे काव्य में न होती । अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं वरन् इन घटनाओं ने मेरे कवि व्यक्तित्व को ही एकदम नई दिशा में मोड़ दिया । राष्ट्रीय परम्परा को अपनाकर कविता के द्वारा मैं राष्ट्र उद्‌बोधन के कार्य की ओर उन्मुख हुआ ।"[11]

इस तरह, कवि के काव्य-प्रेरणा में द्वितीय महायुद्ध व भारतीय स्वाधीनता संग्राम का महत्वपूर्ण योगदान है ।

राजनीति भारतीय समाज व्यवस्था को प्रभावित करती आयी है । समाज व्यवस्था का आधार राजनीति रही है । इससे अछूता नहीं रहा जा सकता । अस्तु, डॉ. महेन्द्र भटनागर ने भी राजनीति के प्रभाव का अनुभव किया है । वे कहते हैं, "राजनीति विषयक मेरा ज्ञान कुछ न था । राजनीति से मेरा भावात्मक संबंध ही कहा जा सकता है । राजनीति जब साधारण जनता के जीवन को प्रभावित करती है तब उससे विलग भी नहीं रहा जा सकता, अतः राजनीतिक चेतना से मैं अपने को न बचा सका ।"[12]

डॉ. महेन्द्र भटनागर के परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी । वामपक्षीय विचार धारा में ऐसे लोगों को शोषित वर्ग में रखा जाता है । मार्क्सवाद में शोषक-शोषित वर्ग विभाजन है जो पूँजीवादी और शोषित समुदायों को दर्शाता है । मार्क्सवादी विचारधारा से कवि महेन्द्र भटनागर प्रभावित हुए, वे कहते हैं "परिवार की विकट आर्थिक परिस्थितियों के बीच जब मैं ऐसे विचारों के सम्पर्क में आया तो मुझे उसमें अपने मन की बात मिल गई । जो मैं सोचता था वह लोग पहले ही सोच चुके थे - उन विचारों को ग्रंथ-बद्ध कर चुके थे, एतदर्थ यह वैचारिक साम्य पाकर मुझे बड़ा संतोष मिला ।[13] इसके अलावा डॉ. महेन्द्र भटनागर की काव्य-प्रेरणाएँ 1942 का

देशव्यापी आन्दोलन, बंगाल का अकाल, आज़ाद हिन्द फौज़ का अभियान आदि घटनाएँ हैं । ये घटनाएँ इतनी मार्मिक थीं कि साधारण व्यक्ति के मन पर भी उनका गहरा असर पड़ा । डॉ. महेन्द्र भटनागर इन घटनाओं के संदर्भ में कहते हैं - "कोई भी भावुक व्यक्ति जिसके हृदय में देश तथा मानवता के प्रति प्रेम है अपने को इन घटनाओं से अछूता नहीं रख सकता । मैं प्रभावित था, अतः मैंने इन विषयों पर लिखा ।"[14]

डॉ. महेन्द्र भटनागर की काव्य-प्रेरणा उनके मित्र भी हैं; जिनके बीच साहित्यिक गोष्ठियों में वे कविताएँ प्रस्तुत किया करते थे और उनकी स्वस्थ आलोचना से कवि को बल मिलता था ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर के काव्य पर अनेक साहित्यकारों ने अपने विचार प्रस्तुत किये जो उनकी कविता को निखारने व प्रोत्साहित करने में सहायक रहे। ये साहित्यकार हैं सर्व श्री अज्ञेय, राहुल सांकृत्यायन, प्रो. प्रकाशचन्द्र गुप्त, डॉ. रामविलास शर्मा, 'सुमन' आदि । आचार्य विनयमोहन शर्मा की सादगी और उदार दृष्टि का भी कवि महेन्द्र भटनागर के जीवन व सृजन पर गहरा असर है । उनके कवि को प्रभावित करने वालों में साहित्य के एक मौन-साधक श्री अमीर मोहम्मद खाँ भी हैं ।

निष्कर्षतः डॉ. महेन्द्र भटनागर का कवि प्रकृति से काव्य-प्रेरणा लेकर काव्य-रचना का प्रारंभ करता हुआ, 'व्यष्टि' से 'समष्टि' की ओर आगे बढ़ता गया है । कविता में व्यक्तिगत भावों को वाणी न देकर वह युगवीणा के तारों से संसार के साधारण जनों की वेदना को वाणी प्रदान करता है ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर - विरचित प्रकाशित काव्य कृतियाँ 18 हैं जिनके अभिधान और प्रकाशन-वर्ष निम्नांकित हैं :

1. *तारों के गीत (सन् 1949) :*

कवि महेन्द्र भटनागर का यह प्रथम काव्य-संग्रह है । इसमें कुल इक्कीस कविताएँ संगृहित हैं, जिनका रचनाकाल नवम्बर सन् 1941 से 1942 तक का है । यह संग्रह कवि की प्रारंभिक रचनाओं का संकलन है, जिसमें तरुण मन की भावुकता और प्रकृति के प्रति सहज आकर्षण की अभिव्यक्त हुई है । प्रस्तुत संग्रह के प्रकाशक हैं - गया प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा (उ.प्र.) ।

प्रस्तुत संग्रह की रचनाओं में प्रौढ़ कल्पना-शक्ति, उत्कृष्ट शिल्प तथा पुष्ट वैचारिक धरातल का अभाव है । फिर भी, अपने प्रारंभिक काव्य-उन्मेष में भविष्य की महत् उपलब्धियों का आश्वासन है ।

2. ***टूटती शृंखलाएँ :***

टूटती शृंखलाएँ कवि का दूसरा काव्य-संग्रह है; जिसमें सन् 1944 से सन् 1948 तक की रचनाएँ हैं । प्रस्तुत काव्य संग्रह का प्रथम संस्करण 'तारों के गीत' काव्य संग्रह के साथ प्रकाशित हुआ । 'तारों के गीत' की तुलना में प्रस्तुत संग्रह कथ्य व शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट है - 'टूटती शृंखलाएँ' की 'हुँकार' (1944), 'होली जला दो' (1945), 'शहीदों का गीत' (1946), 'सदियों बाद' (1947), 'नई दुनिया' (1948) आदि कविताएँ इस बात की प्रमाण हैं कि 'तारों के गीत' गानेवाले कवि के पैर धरती पर तो हैं ही, उसकी आँखें भी धरती से विमुख नहीं हैं।"[15] राष्ट्रवादी स्वर इस संग्रह की कविता में मुखर हुआ है । साथ ही सामाजिक यथार्थ का निरूपण हुआ है । कवि समाज के लोगों के लिये न्याय की हिमायत करता दृष्टिगत होता है । 'टूटती शृंखलाएँ' शीर्षक समाज और युग के परिवर्तन का संकेत प्रकट करता है ।

'टूटती शृंखलाएँ' संग्रह की प्रथम कविता है 'सदियों बाद'; जो राजनीति में सामंती युग की समाप्ति की घोषणा करती है । कवि इस कविता में सदियों बाद हुए परिवर्तनों को मुखर करता है

'सदियों बाद जगा है मानव
अधिकारों की आवाज़ लगी'

संपूर्ण कविता जन-जागरण से उपजी क्रांति और उससे प्राप्त नई आशा और नये उत्साह से भरी है ।

'स्वातंत्र्य झंझावात' में कवि का राष्ट्रवादी स्वर गूंजता हुआ सुनाई देता है । 'ध्वस्त करो' में कवि नवनिर्माण के लिए आह्वान करता है । पुरानी सभी परम्पराओं को तोड़कर नवयुग का निर्माण करना चाहता है ।

'निशा का युग', 'रात का आलम', 'जीवन दीप', 'प्रलय', 'जिन्दगी की शाम' आदि रचनाओं में परतंत्र जीवन और उससे उत्पन्न जीवन के दु:ख-

दर्द का कवि ने निरूपण किया है; तथा इनके विरोध का स्वर - 'संग्राम', 'मुक्ति की पुकार', 'ढलता महल', 'इंकलाब', 'जिन्दगी', 'ज्वार भर आया', 'मुझे है याद', 'गाडता हुआ', 'धधकती आग', 'झंझा में दीप' जैसी रचनाओं में बुलंद किया है । "विश्व जन-मत में शामिल विद्रोह स्वदेश की स्वतंत्रता से लेकर विश्वव्यापी साम्राज्यवादी तथा फासिज़्म-प्रसूत शोषण और अनाचार से विश्व-जन-मुक्ति को अपना सशक्त समर्थन देता है । यह समर्थन संघर्ष की साझेदारी पर आधारित है ।"[16] 'होली जलादो' संघर्ष की चिंगारी को प्रकट करती है ।

'मेरे हिन्द की सन्तान', 'पिछडे हुए राष्ट्र से', 'उद्‌बोधन', 'नई दुनिया' आदि रचनाओं में कवि सम्पूर्ण मानव समुदाय को एक होने का आह्‌वान करता है । जहाँ कहीं भी शोषण तथा गुलामी है वहाँ कवि अपना झंझावाती आवाज़ पहुँचाना चाहता है । जिससे युग-परिवर्तन की दिशा में जन-गण अविरत प्रवाह से आगे आये । इसी दिशा में कवि की 'बदलो' और 'पाषाण-उर' रचनाएँ हैं; जो परिवर्तन का आह्‌वान करती हैं । बढता हुआ जन आन्दोलन नवयुग निर्माण का पहला कदम है - यह विश्वास कवि इन रचनाओं में प्रकट करता है । कवि की 'पहली बार', 'जागरण', 'युग-विहग', 'जन-रव', 'परिवर्तन' तथा 'जन-समुन्दर' ऐसी ही विश्वास से ओतप्रोत कविताएँ हैं । 'इतिहास' रचना में कवि कहता है

'प्रति चरण पर बना रहा है

नित्य नव इतिहास'

इसमें कवि का स्वर आश्वासन से ओतप्रोत है । 'अजेय' में कवि का विजय-विश्वास उसकी संघर्ष चेतना को नया बल प्रदान करता है ।

इस संग्रह में कुल 60 कविताएँ हैं । कविताओं में क्रान्तिकारी स्वर और युग-परिवर्तन की भावना निहित है । 'टूटती शृंखलाएँ' में वस्तुतः छायावादी काव्य धारणाओं के विरूद्ध, नवीन समाजवादी युगचेतना ने आकार ग्रहण किया है । श्री मुक्तिबोध ने इस नवीनता के कारण ही इसे 'तार सप्तक' की परम्परा से जोड़ा है और 'वस्तुवादी मनोवैज्ञानिक काव्य' कहा है ।"[17]

3. *बदलता युग :*

कवि का यह तीसरा काव्य-संग्रह है; जिसका प्रकाशन 1953 में हुआ। 1943 से 1952 तक की 43 कविताएँ इसमें संकलित हैं । काव्य स्वरूप की दृष्टि से देखे तो इस संग्रह में कुछ रचनाएँ गीति-शैली में तथा कुछ मुक्त छन्द में हैं । संग्रह की रचनाओं में तत्कालीन युग का सन्दर्भ मिलता है। युद्ध, शांति, अकाल, नौसेना-विद्रोह, साम्प्रदायिक दंगे, दलितों की दुर्दशा, पूँजीपतियों की शोषण-वृत्ति, स्वतंत्रता-संग्राम आदि तमाम घटनाओं को कवि ने खुलकर वाणी प्रदान की है । 'बदलता युग' शीर्षक इन्हीं घटनाओं से सार्थक है । कवि ने युग-परिवर्तन की दिशा में अपने क्रांतिकारी क़दम आगे बढ़ाए हैं। मुक्त-छन्दों में विषयानुरुप ओज है । सहज लयात्मकता कविता का प्रमुख तत्व है; जिसे कवि ने क़ायम रखने का प्रयास किया है । रचनाएँ पाठकीय आकर्षण युक्त है । कवि के प्रगतिशील हृदय ने जिन अनुभूतियों को चाहा है उन्हीं अनुभूतियों का निरूपण करने का सार्थक प्रयास किया है ।

संग्रह की पहली रचना 'गिर नहीं सकती' में कवि ने सर्वहारा वर्ग की पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी संस्कृति के विरूद्ध एकजुटता के प्रति प्रगाढ़ आस्था का नारा लगाया है । 'मिटाते चलो' में कवि जन-आन्दोलन के लिए एकजुट होने की प्रेरणा देता है और उन्हें तमाम विसंगतियों और शोषण षड्यंत्रों के विनाश के लिए गतिशील कर देना चाहता है । 1947 के आसपास विश्व के विभिन्न परतंत्र देशों में जनांदोलन हुए । उन आन्दोलनों से प्रभावित रचना 'कुर्बानियाँ' है। "वह उन तमाम जन-क्रान्तियों, आन्दोलनों और उनके परिणाम-स्वरूप नव-स्वतंत्र हुए लघु-राष्ट्रों के रूप में युग की महान उपलब्धियों को साम्राज्यवाद के सम्पूर्ण अन्त की पूर्व-सूचना मानता है और शोषितों की शक्ति की अजेयता का प्रमाण भी ।"[18] 'तूफान' कविता इसी बात को आगे बढ़ाती है। 'सर्वनाश' तथा 'मेरे देश में' रचनाएँ देश में व्याप्त दारिद्रय तथा शोषित जीवन का वर्णन है । 'विकल है देश' कविता में देश की पराधीनता, बटवारे एवं समाज विग्रह से हुई विषमता का वर्णन किया गया है । इसी स्वर में 'अफसोस' कविता की भावभूमि का निर्माण हुआ है ।

'बदलता युग' की अधिकांश रचनाएँ विभाजन और तज्जन्य

साम्प्रदायिक दंगों से जुड़ी हुई हैं । इन रचनाओं में, जन-जीवन में आये परिवर्तन, विभाजन से हुई लूट, हिंसा तथा अत्याचार के तांडव का वर्णन है जो 'साम्प्रदायिक विष', 'साम्प्रदायिक दंगे' तथा 'आज़ाद मस्तक को उठा लेता' रचनाओं में मिलता है । परतंत्रता से मानव-मनोबल जैसे क्षीण हो गया है - ऐसे में कवि अपने देशवासियों को एकजुट होकर देश के नव-निर्माण की प्रेरणा देता है । 'हम एक है', 'एकता', 'हिन्दू-मुसलमान', 'संयुक्त बनो', 'विवशता में' आदि रचनाओं में कवि का यह प्रेरणादायी स्वर बुलंद हुआ है ।

'दमित नारी' में साम्प्रदायिक दंगों में नारी पर हुए अत्याचार के प्रति धिक्कार और उसके प्रति गहरी संवेदना प्रकट की गयी है तो 'नई नारी' रचना में नये युग की शिक्षा संपन्न विकास की ओर अग्रसर पुरुष के प्रति बदलती धारणा और दासता से मुक्ति का स्वर मुखरित हुआ है ।

विषय वैविध्य की दृष्टि से 'बदलता युग' उत्कृष्ट संग्रह है । "जिस काल खंड में यह संग्रह प्रकाशित हुआ वह देशव्यापी राजनीतिक उथल-पुथल के दौर से गुज़रता हुआ काल-खंड था । युग-जीवी कवि के लिए तत्कालीन स्थितियों से तटस्थ रहकर कुछ लिखना संभव भी नहीं था । कवि महेन्द्र की काव्य-दृष्टि हम युगीन संदर्भों से पूरी तरह जुड़ी हुई पाते हैं ।"[19]

संग्रह की शेष रचनाओं में 'युद्धक्षेत्र पर', 'विरोधी शक्तियाँ', 'अमन की रोशनी' तथा 'जंगबाज' रचनाएँ दो महायुद्धों से हुए वैश्विक ह्रास का परिचय देती हैं । 'स्थितियाँ और द्वन्द्व' रचना में भी कवि ने संघर्ष-चेता का परिचय दिया है । 'बदल रही है', 'रक्षा' तथा 'धरती की पुकार' कवि की व्यंग्य रचनाएँ है । इसमें तत्कालीन समाज के खोखलेपन का चित्रण किया गया है ।

'बदलता युग', 'नया प्रकाश', 'मुस्कान के रंग' रचनाओं में युग-परिवर्तन की सुखद अनुभूतियों का चित्रण है । 'जिन्दगी कैसे बदलती है' कविता में कवि ने अभावों से ग्रस्त व बाधाओं भरे जीवन में भी उत्कृष्ट जीवन की आशाभरी इच्छा का चित्रण किया है । वस्तुतः इस संग्रह में युग की बुलंद आवाज़, अपने समय की गहरी पकड़, व्यापक मानवीय संवेदना और उत्कट संघर्ष-चेतना का मार्मिक निरूपण हुआ है ।

4. *अभियान :*

अभियान कवि का चतुर्थ काव्य-संग्रह है । इस संग्रह में 1944 से 1949 तक की कुल सैंतीस रचनाएँ संकलित हैं, जिनमें विविध विषयों तथा अनुभूतियों को कवि ने मूर्तिमंत किया है । इन विषयों में मुख्यतः वैषम्य, संघर्ष, वेदना, क्रांति, नवोन्मेष, तथा परिवर्तन का आह्वान समाविष्ट है । प्रस्तुत संग्रह के कलापक्ष पर दृष्टिपात करें तो भाषा, शिल्प तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से कवि की कलम निखरती रही है ।

'मशाल' प्रस्तुत संग्रह की प्रथम रचना है; जिसमें कवि ने विश्व-व्यापी युगीन विषम परिस्थितियों में जन-एकता तथा उसके अस्तित्व के लिए संघर्ष करना - इस सत्य का उद्घाटन किया है । 'बन्धन-मुक्त' में कवि ने आर्थिक और सामाजिक विषमता के विरूद्ध जन-चेतना के लिए आह्वान किया है । 'दुनिया बदलने के लिए अभिनव अटल विश्वास' की कवि-धारणा तथा उसके लिए संघर्ष 'कहाँ अवकाश ?' रचना में उभरा है । 'ग्रीष्म' कविता में ग्रीष्म ऋतु का प्रकोप और दलित, शोषित जन-जीवन का चित्र प्रस्फुटित हुआ है । 'मृत्युदीप', 'वैषम्य', 'पराजय', 'व्यष्टि', 'अन्तर-ज्वाला' तथा 'बेबसी' रचनाओं में युद्ध से उत्पन्न सामाजिक विषमता, शोषणवृति और भीषण नर-संहार की करुणा का चित्रण हुआ है । इससे कवि हृदय शान्त न होकर सामाजिक विषमता के विरूद्ध जन-जागृति पैदा करने 'प्रलय-संगीत' के तार झंकृत करता है । 'कवि' रचना में जैसे वह 'विद्रोही' बनकर कह उठता है -

"मैं विद्रोही कवि,

मैं नवयुग को निर्मित करनेवाला हूँ !"

कवि मौजूदा व्यवस्था को परिवर्तित कर नवयुग की कामना करता है । 'युग-कवि' में कवि आशावादी हो गया है । अपने स्वर को कवि युग-वीणा का संगीत कहता है । वह यहाँ 'संघर्ष' और 'क्रान्ति' का आह्वान करता है - "क्रान्ति पथ पर बढ़ रहा हूँ द्रोह की ज्वाला जगाने !" इस ज्वाला से प्रभावित कवि के हृदय से जो ज्वाला भड़कती है वह 'मेरी आहे' रचना में उभरी है । कवि इस रचना में जैसे विप्लव गान करता है ।

नवजागरण का दौर मार्क्सवाद से पनपा; जिसमें श्रम के बदले में उचित मूल्य की माँग उठी -

"प्रति हृदय में शक्ति दुर्दम,

मूल्य अपना माँगता श्रम,

जागरण का भव्य उत्सव

सृष्टि का सब मिट गया तम !"

'तरुण' रचना में कवि युग-व्यापी तरुणों के जागरण से प्रभावित हुआ है । 'नारी' में 'चिर-वंचित, दीन, दुखी, बंदिनि !' नारी का स्वतंत्रता संग्राम में समान साझेदारी की कीर्ति का गान हुआ है । 'देश-दीपक' रचना में देश-दीपक निरन्तर जलता रहे; इसलिए कवि नवयुवकों से बलिदान माँगता है ।

"आओ नौजवानो !

आज माता माँगती है

प्राण का उत्सर्ग ।"

'बलिया' में 1942 की जनक्रान्ति का चित्रण हुआ है । 'प्रभंजन' में कवि आशावादी स्वर फूँकता है । नवोन्मेष की कामना इसमें मूर्तिमंत हुई है । 'परिवर्तन हो !' रचना में भी वही नवोन्मेष की भावना से कवि युग-परिवर्तन की बात करता है । 'नया सबेरा' में नव-निर्माण और नव-जीवन की कामना है । 'साधक' रचना में अटल विश्वास, परिश्रम और प्रयास से बड़ी से बड़ी आपदाएँ चकनाचूर हो जाती हैं - यह बात मुखर हुई है ।

इस संग्रह की कुछ रचनाएँ युग-पुरुषों से संबंधित हैं । 'तुलसीदास' शीर्षक से दो रचनाएँ हैं, 'गाँधी' शीर्षक से पाँच तथा 'प्रेमचन्द' शीर्षक से एक रचना है । इस प्रकार कुल ग्यारह रचनाएँ महान व्यक्तियों के जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करती हैं । 'मालवानां जयः' में मालव जाति और प्रदेश के नवोत्थान में मदान् विक्रमादित्य के इतिहास प्रसिद्ध योगदान की यशोगाथा का वर्णन हुआ है । इसी कतार में, उज्जयिनी नगरी की गौरव गाथा को कवि ने 'उज्जयिनी' में शब्दांकित किया है । 'खेतिहर' और 'खेतों में'

शीर्षक से लिखी दो लघु काव्य-नाटिकाएँ कृषक जीवन की असहाय अवस्था तथा किसान-जागृति और जमींदारी प्रथा का विरोध प्रकट करती हैं ।

अन्तिम रचना 'अभियान' है । यह भी एक लघु-नाटिका है; जिसमें जन-द्रोहियों के विरुद्ध जंग का एलान करते युवा सैनिकों के आशा, उत्साह और साहसपूर्ण अभियान को कवि ने वाणी प्रदान की है ।

निष्कर्षतः 'अभियान' काव्य-संग्रह में युग निर्माण का स्वर प्रमुख है ।

5. *अन्तराल :*

कवि महेन्द्र भटनागर का यह पाँचवा काव्य संग्रह है । 'अन्तराल' में पचास कविताएँ संगृहीत है । इनका रचनाकाल 1944 से 1946 है । यह स्वाधीनता-संग्राम के उत्कर्ष का युग है । संघर्ष, निराशा, आशा, आत्म-निवेदन, सफलता और विजय-उल्लास के क्षण इन कविताओं में युगबोध के रूप में अंकित हैं ।

संकलन की पहली रचना 'गन्तव्य की ओर' में ध्येय-प्राप्ति का अटल विश्वास और परिश्रम करनेवाला व्यक्ति ही कुछ प्राप्त कर सकता है यह उभरा है । 'साधना' में कवि साधक प्रतीत होता है; जो प्रत्येक दशा में संतुलन बनाए रखना चाहता है । 'स्नेह-सुधा-जल' में कवि अपने स्नेह और प्रेम से नये युग का निर्माण करता दिखाई देता है । आगे यही विश्वास लेकर वह 'जीवन-पथ के राही से' कहता है कि कैसी भी स्थिति हो व्यक्ति को निराश नहीं होना चाहिए । 'संघर्ष' में ध्येय प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा है । 'दीप' रचना में दीपक आशा, विश्वास तथा जीवन का प्रतीक बनकर आया है । हर स्थिति में उसे जलते रहने के लिए कवि कवि प्रेरित करता है। 'मनुज जीवन' में आज के स्वार्थी मनुष्य का अंकन है । 'धोखा हुआ' रचना में पूर्व में, पथ-प्रशस्त न कर लेने की भूल की ओर संकेत किया गया है ।

'साधना का मर्म' युग-धर्म के प्रति सचेत रहने की ओर इशारा करती है । 'जीवन-तरु' में व्यक्ति की पीड़ा का गान है । कवि अपने मन को संबोधित करके 'रे मन !' में कहता है कि बीती हुई दुखद बातों को याद करके व्यर्थ आँसू मत बहाना । वह स्वस्थ रहने और दुःखों को भूलने की बात कहता है । 'आँसुओं का मोल' में कवि ने व्यक्तिगत पीड़ा का चित्रण किया

है । कवि का मन पीड़ित होकर भी किसी की सहानुभूति की अपेक्षा नहीं करता - 'बहने देना.....' काव्य में यह स्वर प्रकट हुआ है ।

इसके बाद कविताओं का दूसरा वर्ग प्रकृति-गीतों का है । "कवि महेन्द्र भटनागर में प्रकृति के प्रति एक आस्थामयी सौन्दर्य-चेतना है । प्रकृति के साथ कवि के रागात्मक संबंधों के विविध आयाम है । उनमें किसी अतिरिक्त उद्देश्य का आरोप व्यर्थ ही होगा ।"[20] 'विनाश' और 'विकास' दोनों कविताएँ परस्पर विपरीत प्रकृति रूपों का चित्रण करती है । 'विनाश' में विनाश की ओर ले जानेवाले तथ्यों का निरूपण हुआ है । 'पतझर और बसन्त' की एक साथ झाँकी कराने वाली रचना 'पतझर और बसन्त' है । 'री हवा' में कवि हवा से आत्मीय भाव स्थापित कर रूप रस, गंध और संगीत से भरी मन-भावन गति का चित्रित करता है । 'प्रभात', 'रात', 'ढलती रात', 'घटाएँ' तथा 'जल-वृष्टि' रचनाओं में प्रकृति से जुड़ी विशिष्टताओं का वर्णन किया गया है । 'मेघों से', 'घटाएँ' तथा 'जलवृष्टि' - तीन प्रकृति कविताएँ एक ही विषय से संबंधित हैं । 'मेघों से' में कवि पानी बरसाने की कामना करता है ।

"कुछ रचनाओं में कवि की स्वस्थ और संयत प्रणय भावनाएँ प्रकट हुई है । प्रेम के संयोग तथा वियोग पक्षों के साथ प्रेम को जीवन-संबल और आस्था-विश्वास तथा कर्मशीलता का संवाहक निरूपित किया गया है ।"[21] 'एकाकीपन' रचना में अकेलेपन से उपजी मन की पीड़ा का चित्रण हुआ है तो वहीं 'साथी से' में जीवन के कठिन पलों में साथ रहने की बात साथी से की गयी है । 'गाओं गीत' रचना में कवि मिलन-पर्व के अवसर पर हर्षोल्लास के गीत गाता है । 'तुम' रचना में कवि अपने प्रिय पात्र से कहता है कि वह उसके जीवन के नवोन्मेष का कारण है और उसके प्रति वह कृतज्ञता के भाव ज्ञापित करता है । उदास प्रियतमा से उसकी उदासी का कारण पूछते हुए कवि की स्नेहिल भावना 'तुम्हारी मांग का कुंकुम' में प्रकट हुई है। 'प्रतिदान' कविता में कवि अपने प्रिय पात्र के प्रेम के बदले में मधुर प्रेम का प्रतिदान कैसे करूँ ? यह प्रश्न लेकर विह्वल है ।

'तुम्हारी याद' में वियोग-वेदना में कवि जो अनुभव करता है उसका

मार्मिक चित्रण है । अपने स्नेह पात्र से प्रथम मिलन कब कैसे हुआ था उसकी सुखद स्मृति 'याद' नामक रचना में उत्कृष्ट अनुभूति के साथ प्रकट है । जीवन के कठिन पंथ पर अपने प्रियजन से स्नेह और प्यार की लालसा 'साथ न दो ?' में अभिव्यक्त हुई है ।

'प्रतीक्षा में' वियोग की स्थिति में मिलन की आशा और विश्वास की मानसिकता को उर्जा प्रदान की है । प्रेम में निराशा, अन्तर्द्वन्द्व तथा वेदना से भरी अनुभूतियों का उमड़ता सैलाब और उस सैलाब को संयत अभिव्यक्ति 'परिणाम' रचना में मिली है ।

महेन्द्र भटनागर प्रगतिवादी विचारधारा के कवि हैं । उनकी संवेदना व्यक्ति से समष्टि की ओर है । उसमें युग-धर्मी संवेदना मुखरित हुई है । 'अन्तराल' में तमाम ऐसी रचनाएँ हैं; जिनमें कवि व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ा है । 'चुनौती' रचना में कवि 'विश्व की महाशक्ति' को चुनौती देता है । 'जागरण', 'रस-संचार', 'वरदान', 'परिवर्तन' में बदलते युग का सुखद अनुभव करता है । विश्व की मंगल भावना 'प्रभात की चाह' में दीखती है । 'दीपक' में व्यथाएँ सहकर भी अपने नवजीवन के आशा-दीप को न बुझने देने की शुभकामना प्रकट हुई है । 'उन्मेष' रचना कर्मशीलता और अमिट विश्वास को चित्रित करती है । 'कामना', 'जीवन का अभिनय', 'नहीं है', 'सत्य', 'अभी नहीं', 'वेदना' जैसी रचनाओं में जीवन-जगत के प्रति गहरी आस्था की अभिव्यक्ति हुई है । 'जल्दी करो' में उथल-पुथल से उत्पन्न स्थिति का अंकन है तो संग्रह की अन्तिम रचना 'जीवन-धारा' में जन-जीवन की गतिशीलता का चित्रण हुआ है । संग्रह की रचनाएँ भावनात्मक दृष्टि से अपना प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं ।

6. *विहान :*

रचना-कर्म की दृष्टि से 'तारों के गीत' के बाद 'विहान' का सृजन हुआ है । 'विहान' में कुल पैंतीस कविताएँ संग्रहीत हैं । रचना काल की दृष्टि से पाँच कविताएँ सन् 1941 में, तीन 1942 में, तीन कविताएँ 1943 में, ग्यारह कविताएँ 1944 एवं तेरह कविताएँ सन् 1945 में, इस तरह पैंतीस कविताओं का सृजन पाँच वर्षों के भीतर हुआ है । 'तारों के गीत' की तरह 'विहान' भी महेन्द्र भटनागर के कवि-विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

'विहान' की कविताएँ विषय की दृष्टि से अनेकरूपा है । युग-बोध मानवतावाद, संघर्ष-चेतना, एवं शोषित मानवता की पक्षधरता है । जीवन यथार्थ, देश-भक्ति और बलि-पथ की ये कविताएँ ओजस्वी और प्रेरक हैं; जो व्यापक संवेदना प्रस्तुत करती हैं । 'विहान' की अधिकांश रचनाएँ गीत हैं, जो सहज, स्वाभाविक भावप्रवाह से युक्त हैं और मन को आन्दोलित करती हैं । कवि के लिए कारा-गृह जाना; 'शांति-सदन' में जाने के समान है :

संघर्षों की ज्वाला में जलो, जलो !

बलिदान-त्यागमय जीवन हो,

कारा-गृह भी शांति-सदन हो,

जनहित बीहड़ पथ पर भी चलो, चलो ।[23]

'जलो-जलो' संकलन की प्रथम रचना है जो 'जनहित' हेतु त्याग व बलिदान का संदेश देती है । 'जागो' जागरण गीत है; जो परतन्त्रता से मुक्ति का आह्वान करता है । धार्मिक बाह्याडंबर को छोड़, कर्म और श्रम से जीवन-परिवर्तन करने का भाव 'जीवन-दृष्टि' में मुखरित हुआ है । संघर्ष के बाद शांति आती है, - ऐसे विश्वास से परिपूर्ण संघर्ष-रत रहने की प्रेरणा 'बलिपंथ' से मिलती है । 'नव-पथ-राही' नये युग के नये पथ पर चलने की प्रेरणा देती है । कवि संघर्ष के युग-पथ गुज़रा है । वह इसी युग-धर्मा संघर्ष का मुसाफ़िर है । उसका रचनाकार 'युग-जीवन' को गाकर अपने जीवन के सार्थक महसूस करता है, इसी तथ्य से परिपूर्ण है कवि की 'युग-गायक' रचना । 'अभय' रचना में कवि ने अपने को नव युग-दृष्टा और मुक्त-वाणी को मुखरित करने वाले साधक के रूप में प्रस्तुत किया है । कल्पनाशील कवि अपने युग का चित्रण अपेक्षाकृत नहीं कर सकता; विवेकशील कवि ही अपने युग का यथार्थ चित्रण कर सकता है - इस सत्य को 'युग-कवि' रचना में उजागर किया गया है । 'जय-बेला' और 'शांति-लोक' रचनाएँ युद्धोपरान्त उपजी शांति और 'नव-जीवन' की प्रतीक्षा को स्वर दे रही हैं । क्रांति और उससे उत्पन्न नवजीवन का आशावाद 'नया संसार' रचना में उजागर हुआ है ।

'कैदी', 'तुम', 'उत्सर्ग' कवि की प्रणय रचनाएँ हैं; जिनमें जेल की

अँधेरी कोठरी में रात की नीरवता को तोड़ती हथकड़ियों की ध्वनि में प्रियतमा की मधुर याद, जो सुख-दुःख में साथ मिलकर चलने का हौसला बुलंद करती है । 'आशिष' रचना में कवि अपने उपेक्षित शीश पर ममता का हाथ माँगता है । प्रिय पात्र का विरह और उससे उत्पन्न असह्य पीड़ा का वर्णन 'असह' रचना में हुआ है ।

'अन्तर्बोध' कर्मशीलता से जुड़े रहने की भावना का वर्णन करती है तो 'प्रतिकूलता', 'स्नेहहीन जीवन-दीपक की होती जाती है ज्योति मंद !' की व्यथा का निरूपण करती है । 'आशा-किरण' में जीवन में प्रतिकूल समय में भी संसार के कुटिल प्रहारों को सहकर आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है । 'जीवन-ज्वाला' रचना में कवि ने जीवनरूपी ज्वाला को निर्बाध रूप से जलते रहने देने की बात की है । अभावग्रस्त तथा संघर्षमय जीवन से घबराना नहीं चाहिए - यह स्वर 'निवेदन' रचना में बुलंद हुआ है । 'स्वावलंब' रचना में कवि ने स्वावलंबी जीवन को चित्रित किया है । सफलता के अभिमान से मुक्त तटस्थ भावना 'समरस' कविता में मुखर हुई है । जीवन के सुख-दुख का दार्शनिक दृष्टिकोण 'सुख-दुख' रचना में देखा जा सकता है । 'काम्य' रचना में 'संघर्षो में बढ़े..... जीवन रथ' की भावना व्यक्त हुई है । 'नई कला' में कवि अपने कवि से नवयुग तथा नवजीवन के गीत गाने का आग्रह करता है । नवीन जन-चेतना और जागृति से कवि आशावादी बना है - यह स्वर 'नवयुग' में मुखर हुआ है । 'प्रात' रचना में अन्धकार को भगाता हुआ कवि नवजीवन के सबेरे को निमन्त्रण देता है । नवजीवन का सुखदायी रूप 'नव-जीवन' रचना में चित्रित हुआ है ।

सूने वातावरण का अनुभव 'संध्या' में हुआ है । 'बरसात' में वर्षाऋतु की संध्या का मनोरम दृश्य है । प्रकृति का सुन्दर चित्रण इस रचना में हुआ है। 'विश्व-कवि' सन् 1941 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के निधन पर लिखी गई कविता है। इसमें गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पूर्ण काव्य-कर्तृत्व के मूल भाव को चित्रित किया गया है । 'हरिजन' शीर्षक रचना उसके शीर्षकानुसार 'हरिजन' के संघर्षपूर्ण जीवन का चित्रण करती है । हरिजनों के प्रति कवि की अगाध सहानुभूति इस रचना में व्यंजित है ।

संकलन की अन्तिम रचना 'भिखारिन' है जिसमें दरिद्रता और अभावग्रस्त भिखारिन का यथार्थ वर्णन हुआ है; जो सुबह होते-न-होते कवि के द्वार पर दम तोड़ देती है । कवि इस घटना से देश के उन तमाम अभावग्रस्त लोगों की भविष्य चिंता से विगलित हो जाता है ।

इस तरह, अनेकविध रचनाओं से परिपूर्ण इस संग्रह में कवि की उत्कृष्ट भावधारा एवं स्वस्थ विचार-धारा का निरूपण हुआ है । इस कृति से महेन्द्र भटनागर के कवि-जीवन का विहान प्रारम्भ होता है ।

" 'तारों के गीत' गहन अंधकार की पृष्ठभूमि पर है । गहन अन्धकार के बाद 'विहान' का आगमन कवि के आशावाद का ज्वलन्त प्रतीक है ।"[24]

7. *नई चेतना :*

'नई चेतना' में श्री महेन्द्र भटनागर ने नवजाग्रत देश की कितनी ही उमंगों और आवश्यकताओं का अच्छा चित्रण किया है ।

- राहुल सांकृत्यायन

उपर्युक्त अभिमत 'नई चेतना' को एक प्रौढ़ रचना सिद्ध करने में क्षम है । कवि महेन्द्र भटनागर विरचित इन पैंतालीस कविताओं का संग्रह 'नई चेतना'[25] सन् 1956 में प्रकाशित हुआ । कविताओं का रचना-काल 1950 से 1953 ई. तक है । इन चार वर्षों को हम स्वाधीनता का उषा काल कह सकते हैं । 'नई चेतना' के प्राक्कथन में कवि ने एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है, जो कवि की विचारधारा और दृष्टि को बहुत-ही स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है - "कहना न होगा कि मेरा संबंध प्रगतिशील कविता से जोड़ा जाता है और प्रगतिशील कविता को काफ़ी लोग भ्रमवश अथवा जान-बूझकर साम्यवादी कविता मानकर चलते हैं । स्पष्ट है मेरी कविताएँ मात्र साम्यवाद की श्रेणी में नहीं आती, इससे उस वर्ग की मात्र सहानुभूति ही मुझे मिलती है और साम्यवादी वर्ग के विरोधी साहित्यकारों की उपेक्षा । मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब हमारे आलोचक भ्रान्त धारणाओं से मुक्त नई हिन्दी-कविता का यथार्थ मूल्यांकन करेंगे ।"[26] कवि का कथन है कि विषय और रचनाकाल को दृष्टि में रखकर 'नई चेतना' की कविताओं का संकलन किया गया है ।[27] संकलन की रचनाएँ आज़ादी-बाद के संदर्भों से

जुड़ी हैं जो लम्बी पराधीनता के बाद देश के नव-निर्माण और रूढ़ि-मुक्ति का आह्वान करती हैं । शोषण-मुक्ति और जन-जागरण की कामना से 'नई चेतना' का निर्माण हुआ है ।

'बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे' इस संकलन की पहली रचना है; जिसमें 'हम कभी भी शांति की आवाज़ को दबने नहीं देंगे' का संकल्प है । यही संकल्प साम्राज्यवादियों और पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ ललकार-सी बन गया है जो 'ललकार' रचना में सुनाई पड़ता है । 'आजादी का त्यौहार' रचना में कवि दीन-हीन दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ जीवन के कटु सत्य का निरूपण करता है । रोटी के टुकड़ों पर झगड़कर सोए बच्चों को तूफ़ानों के अंधड़ से बचाने के लिए अपनी बाहों में जकड़ने का कारण बताते हुए कहता है - 'क्योंकि नये युग के सपनों की ये तसवीरें हैं ।' संकलन की 'अपराजिता', 'चेतना' तथा 'रोक न पाओगे' रचनाएँ नवीन जन-जागरण तथा जन क्रांति के प्रति विजय की कामना लिए अजित रहने की घोषणा करती हैं। 'काटो धान' किसान-गीत है; जो सम्पूर्ण देश की सुख-समृद्धि के लिए श्रम साधना में रत रहने की बात करता है । 'जागते रहेंगे' में कवि ने सर्वहारा वर्ग की क्रांति-पताका को लहराया है । क्रान्ति से मुक्ति पाकर लक्ष्य तक पहुँचने का दृढ़ निश्चय 'नया इन्सान' रचना में प्रकट हुआ है ।

कृति के उत्तरार्द्ध में नवीन युग के आगमन, प्रगति और जन-बल की विजय में आस्था, संघर्ष की प्रक्रिया और निर्माण के चित्रण में कवि की लेखनी सक्रिय हुई है ।

'नई चेतना' की कविताओं की भाषिक संरचना में कई आयामों का स्पर्श मिलता है । महेन्द्र भटनागर की कविताओं में 'गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न' तुलसी के इस आदर्श का पूरा अनुसरण हुआ है। मार्मिक संवेदना का निरूपण 'नई चेतना' में दृष्टव्य है । आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का मत है - 'नई चेतना' में कवि के उद्‌गार सशक्त और उसकी भावना उच्च कोटि की संवेदना समन्वित है । उसकी शैली में सरलता के साथ अभिव्यंजना का अच्छा सामर्थ्य झलकता है ।"[28]

निष्कर्षतः 'नई चेतना' काव्य-संग्रह व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व-कल्याण के लिए जन-मन में 'नई चेतना' व अद्म्य उत्साह भरता है ।

8. *मधुरिमा*[29] :

काव्य-संकलनों के क्रम में यह कवि का आठवाँ संकलन है । इस संकलन का प्रकाशन सन् 1959 में हुआ । इसमें कवि महेन्द्र भटनागर के पचपन मधुर गीत संगृहीत है । रचना काल की दृष्टि से इसमें सन् 1948 से लेकर सन् 1957 तक की रचनाएँ संकलित हैं । इस संकलन के गीत गेय हैं, जो 'आकाशवाणी' के विभिन्न केन्द्रों से 'सुगम संगीत' कार्यक्रमान्तर्गत प्रसारित हुए व रहते है । 'मधुरिमा' में महेन्द्र भटनागर के ह्दय की मादक भावनाओं की सुगन्ध परिव्याप्त है । समस्त रचनाएँ कवि के व्यक्तिगत जीवन से संबंद्ध हैं। इनमें है प्रेम और प्रणयजन्य पीड़ा व उल्लास एवं इसी तरह की भाव-लहरियों का क्रीड़ा-कलनाद है । मर्यादा इन्हें सौम्य-सौष्ठव से मंडित करती है - 'प्रेम और प्रणय की भावनाएँ अपने स्वस्थ रुप में व्यक्ति और समाज के लिए शिव हैं । 'मधुरिमा' के गीतों से यदि भावुक और स्वस्थ व्यक्तियों के ह्दय सहज तादात्म्य स्थापित करते हैं तो उनकी उपादेयता स्वयं सिद्ध है ।"[30]

संकलन की अधिकांश रचनाएँ चाँद के प्रति समर्पित हैं । यह चाँद कहीं नभस्थ चाँद की ओर तो कहीं कवि-प्रिया की ओर इंगित करता है । समस्त रचनाओं का मूल-स्वर प्रेम है ।

संकलन की प्रथम रचना 'आदमी' जीवन में प्रेम की महत्ता घोषित करता है । 'कौन हो तुम' प्रेम की प्रथम अनुभूति को वाणी देती है। 'तुम' रचना में प्रिया के भोलेपन और उसके भावों को न समझ पाने की उलझन का चित्रण है । 'दर्शन' रचना में प्रिय-दर्शन से प्रेम के बंधन में बँध जाने का और इस बंधन से उत्पन्न मनोभावों का मधुर चित्रण किया गया है । 'मत बनो कठोर' रचना में कवि अपनी प्रियतमा के प्रेम सौन्दर्य से भरपूर दृष्टि को झेल नहीं पाता; अतः उससे इस तरह देखने के बजाय उसे निकट आने का आग्रह करता है । 'किरण' रचना में चन्द्र-किरणों के सौन्दर्य का वर्णन हुआ है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से यह श्रेष्ठ रचना है । 'चाँद से' रचना नभ में

प्रकाशित चाँद और कवि की प्रियतमा दोनों को लक्ष्यकर चलती है । 'चाँद' को श्लेष अलंकार के रूप में चित्रित करके उसके प्रति अपने प्रणय-भाव को अभिव्यक्त किया हैं । इसी तरह की अभिव्यक्ति का एक और उदाहरण 'चाँद सोता है' गीत में मिलता है । 'कौन कहता है' रचना में चाँद के समग्र जीवन की झाँकी का चित्रण हुआ है ।

'शिशिर की रात (1)' में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण कवि ने बख़ूबी से किया है । इसी शीर्षक वाली दूसरी रचना में कवि ने अपने एकाकीपन में अपनी प्रेयसी के प्रति मनुहार अभिव्यक्ति किया है । 'वसन्त' रचना में बसन्त के आगमन से उत्पन्न उमंग की अभिव्यक्ति है तो प्रेयसी के रूप लावण्य का मनोहारी वर्णन 'छा गए बादल' काव्य में निहित है । 'आ गया सावन' रचना में कवि सावन के सौन्दर्य से चकित है । ऐसे नयनरम्य सौन्दर्य में वह अपनी प्रेयसी से उसके निकट रहने के लिए आग्रह करता है । 'बरखा की रात' में प्राकृतिक वातावरण का मानवीकरण है ।

सम्पूर्ण 'मधुरिमा' प्रेयसी के प्रति कवि की प्रणयानुभूतियों से सिक्त है। इस मधुर क्षेत्र में कवि की निष्कपट ईमानदारी का दर्शन होते हैं । इसमें कहीं भी कोई दुराव-छिपाव नहीं है न कोई कृत्रिमता है । सर्वत्र असाधारण संयम और संतुलन देखने को मिलता है ।

एक प्रगतिशील-जनवादी कवि की प्रेम, रूप, सौन्दर्य, श्रृंगार और काम-वासना के प्रति विचार-दृष्टि इस कृति में देखने योग्य है ।

'मधुरिमा' के गीत वैयक्तिक जीवन से संबंध रखते हैं । वैयक्तिकता जीवन का महत्वपूर्ण पहलू है । मनुष्य का जीवन व्यष्टि और समष्टि की परिधि में आबद्ध है । दोनों में से किसी का भी अस्तित्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता । पर, वैयक्तिकता सामाजजिक पक्ष के समान उपादेय नहीं मानी जा सकती और एकान्त वैयक्तिकता तो समाज विरोधी तत्व ही समझी जायेगी। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक भावनाओं की एक सीमा होती है, उसका अतिक्रमण सामाजिक दृष्टि से वांछनीय नहीं ।"[31] 'मधुरिमा' काव्य संग्रह की कविताएँ वैयक्तिक होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति में प्रेमांकुर पल्लवित करने में सक्षम है । 'जागृति' (चंडीगढ़) में 'मधुरिमा' की समीक्षा करते हुए आधुनिक

कविता के विशेषज्ञ डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं, "यद्यपि यह वैयक्तिक प्रणय के गीत हैं, लेकिन इसलिए असामाजिक हैं - ऐसा नहीं कहा जा सकता । क्या बसंत के मादक सुरभित वातावरण में प्रत्येक ग्रंथि-रहित मानस में निम्नांकित भाव-तरंगे नहीं लहरा उठती होगी ?

"अंग-अंग में उमंग आज तो पिया,
बसंत आ गया !
खिल गया अनेक फूल पात से चमन,
झूम-झूम मौन गीत गा रहा गगन,
यह लजा रही उषा कि पर्व है मिलन,
आ गया समय बहार का, विहार का,
नया, नया, नया ।"[32]

निष्कर्षतः कह सकते है कि महेन्द्र भटनागर की रचनाओं में अनुभूति की तीव्रता और अभिव्यक्ति की ऋजुता का अनोखा संगम है । श्री वीरेन्द्र कुमार जैन केशब्दों में कहे तो 'मधुरिमा' में जीवन की लालसा और अतृप्ति इतनी तीव्र है कि उसके संस्पर्श से "मन का मौसम बदल जाता है ।"[33]

9. *जिजीविषा :*

'जिजीविषा'[34] का प्रकाशन सन् 1962 में हुआ । यह कवि का नवम् काव्यसंग्रह है । इसमें सन् 1948 से सन् 1955 तक की कुल 56 रचनाएँ संकलित हैं । यह नेहरू युग की उल्लेखनीय काव्य-कृति है । अधिकांश रचनाएँ सामाजिक धरातल से जुड़ी हुई जन-चेतना और संघर्ष-कामना से ओत-प्रोत हैं। कवि के पिताश्री के निधन पर लिखित 'पूज्य पिताजी की पावन स्मृति में' (17 जुलाई, 1959) शीर्षक से शोकपरक कविता समर्पण-स्वरूप है । जिस कविता के आधार पर कृति का नामकरण हुआ है - 'जिजीविषा' वह संग्रह की अन्तिम रचना है । इस कृति में वाम विचारधारा बड़ी स्पष्टता के साथ मुखरित हुई है; इसलिए इस संग्रह को प्रगतिवादी काव्य-धारा के प्रतिनिधि संग्रहों में परिगणित किया जाता है । लेकिन महेन्द्र भटनागर ने अपना सृजन कार्य आन्तरिक प्रेरणा से ही किया है । वस्तुतः मानवतावाद ही उनके काव्य मूलाधार है ।

मनुष्य लाखों आपदाओं से गुजरता है, फिर भी उसकी जिजीविषा मरती नहीं, टूटती नहीं । संघर्षों और आपदाओं से वह शक्ति पाता है । यही 'जिजीविषा' का मूल स्वर है ।

निष्कर्षतः 'जिजीविषा' में विषय, शैली, शिल्प में नवीनता के साथ कवि की धारणाओं, मान्यताओं, स्थापनाओं और विश्वासों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का अनोखा संगम है । जिसमें विचार-भूमि और भावभूमि का वैश्विक फलक दृष्टिगोचर होता है ।

10. ***संतरण :***

डॉ. महेन्द्र भटनागर का यह दशम् काव्य संकलन है । 'संतरण'[35] में कुल अस्सी रचनाएँ संगृहीत हैं । इस संग्रह की कविताओं में कवि ने जीवन के विविध पक्षों और भाव-तरंगों को उजागर करने का प्रयास किया है । 'संतरण' में सन् 1956 से लेकर 1963 तक की कविताएँ संगृहीत हैं । भाषा, शिल्प और अभिव्यक्ति की दृष्टि से इसकी अधिकांश रचनाएँ प्रौढ़त्व-पूर्ण हैं ।

साहित्येतिहासकार डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने 'सतरंण' की समीक्षा में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि - "महेन्द्रजी ने इस संग्रह में न केवल सच्ची कविताएँ प्रस्तुत की हैं, अपितु उन्होंने एक कविता ('मच्छरों का संगीत') में कृत्रिम काव्य-रचयिताओं की भी खबर ली है । इस संग्रह में अधिकांश गीत और कविताएँ पाठकों को स्वस्थ विचार, नई प्रेरणा एवं मधुर अनुभूति प्रदान करने की क्षमता से युक्त हैं ।"[36]

'संतरण' का एक स्वर जनवादी भी है; जिसमें पीड़ित मानवता के प्रति अपार सहानुभूति के दर्शन होते हैं ।

11. ***संवर्त :***

'संवर्त'[37] कवि महेन्द्र भटनागर का ग्यारहवाँ काव्य संग्रह है जो 'संतरण' के प्रकाशन के लम्बे अन्तराल के बाद 1972 प्रकाशित हुआ । 'संवर्त' में कुल पचास कविताएँ संगृहीत हैं । इन कविताओं का रचना-काल सन् 1962 से सन् 1966 है ।

कवि महेन्द्र भटनागर के काव्य-लेखन में ठहराव नहीं आया, भले ही

इधर उनके लेखन की गति धीमी रही । 'संवर्त' का रचना-काल भारतीय जन-जीवन के मोह-भंग का काल है । तत्कालीन युगीन परिस्थितियों की छाप 'संवर्त' की कविताओं में देखने को मिलती है । कवि महेन्द्र मानवीय आस्था के प्रगतिशील गायक हैं । एक सहज युगवाचक के रूप में वे कविताएँ लिखते गए हैं । उन्हें आम आदमी तक पहुँचने के लिए किसी वाद या किसी विशेष शैली की अपेक्षा नहीं हुई है । " 'संवर्त' की कविताएँ पथ के मोड़ से प्रारंभ की और 'नवोन्मेष' पर समापन किया; क्योंकि वे लगातार युग और जीवन को अनाचार-अत्याचार शोषण-मुक्त बनाना चाहते हैं । जिसमें मानवता सुरक्षित और प्रगतिशील रहे । साठोत्तर भारतीय परिवेश में मूल्य-भ्रंश की विषम स्थितियों में भी कवि ने आस्था का दामन नहीं छोड़ा है । हरेक पीड़ा के बाद नव-निर्माण का संदेश और भी प्रखर होता गया है ।"[38]

कवि महेन्द्र भटनागर मानते हैं - "कवि समाज का एक उत्तरदायी प्राणी होता है । मानवता की जय-यात्रा में उसका भी योगदान कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है ।" इसी मान्यता को साकार करने के क्रम में 'संवर्त' की कविताएँ उपस्थित है । नवीन राहों का संधान, श्रम में - कर्म में आस्था, संघर्षशीलता, नये जीवन-मूल्य, भयविहीन लोकवाद, सहज शिल्प इन कविताओं की पहचान है । वे पूरे विश्व-मानव को संबोधित हैं और वर्गवादी सरहदों का अतिक्रमण करती हैं ।

12. *संकल्प :*

'संकल्प'[39] कुल पैतीस रचनाओं का संकलन है । इसका प्रकाशन 1977 में हुआ । 'संकल्प' में सन् 1967 से सन् 1971 के मध्य की रचनाएँ संगृहीत हैं। कवि महेन्द्र भटनागर का रचना धर्म उन्हें किसी 'वाद' में बँधकर रचना करने को बाधित नहीं करता । 'संकल्प' की कविता विविध-रूपा हैं । जीवन की समग्रता महेन्द्र भटनागर के काव्य-कतृत्व में प्रमुखता से मुखरित हुई है । एक युगचेता समाजवादी विचारधारा के कवि की रचनाओं में जिन संदर्भों की बात होनी चाहिए वह 'संकल्प' की रचनाओं में उपस्थित है । युग की आशा-आकांक्षाओं, जन-चेतना के बहु-आयामों, लक्ष्यों और संकल्पनों को मुखर करती ये रचनाएँ दीर्घ जीवन की धारिका होंगी - यह सहज ही कहा जा सकता है ।

निष्कर्षतः 'संकल्प' की कविताएँ जीवन-धर्मी हैं । उनमें गति और वेग है । भावों और विचारों की दृष्टि से वे समृद्ध हैं ।

13. *जूझते हुए :*

'जूझते हुए'[40] कवि का तेरहवाँ काव्य संग्रह है; जिसका प्रकाशन सन् 1984 में हुआ । इसमें कुल पैंतालिस कविताएँ संगृहीत है; जिनका रचना काल सन् 1972 से सन् 1976 है । इन कविताओं में विषय-वैविध्य देखने को मिलता है । ये विषय जिंदगी के यथार्थ, प्रेम-भावना, राष्ट्र-चेतना, मानवीय-संवेदना, श्रम तथा श्रमिक-महिमा तथा विश्व-बोध आदि की भावभूमियों से जुड़े हुए हैं ।

संकलन की पहली कविता 'कश-म-कश' में संघर्षरत मनुष्य का संघर्ष-सौन्दर्य प्रतिबिम्बित है । कुछ कविताओं में जीवन के अँधेरे निराश पक्ष की भी अभिव्यक्ति हुई है; जो समकालीन कविता का प्रमुख प्रतिपाद्य है ।

मनुष्य की प्रकृति है कि वह सदैव न प्रसन्न रहता है और न ही निराश। महेन्द्रजी की कविताओं में भी कहीं सौन्दर्य का उल्लास और आस्था की ज्योति है, तो कहीं हताशा और अनास्था का धुँधलापन है ।

कवि महेन्द्र भटनागर ने जब काव्य-रचना का आरंभ किया; तब वह समय हिन्दी कविता में तब प्रगतिवाद का था । 'प्रगति' युग की माँग थी । इस भावना से कवि महेन्द्र भटनागर भी प्रभावित हैं । समकालीन कविता में यह प्रगतिवाद जनवाद के नाम से जाना जाता है । महेन्द्रजी, 'जूझते हुए' की अनेक रचनाओं में इस आन्दोलन से प्रभावित लगते हैं । उनमें विजय का विश्वास है, पराजय की निराशा नहीं । कवि यहाँ सर्वहारा-वर्ग के साथ जैसे क़दम-से-क़दम मिलाकर चलता दीखता है । अत्याचार से लड़ने की मुद्रा उसमें दृष्टव्य है ।

संकलन की अंतिम रचना 'संधान' है । इसमें कवि 'जलती ज़िंदगी से जूझते इन्सान की गाथा सुनाने' को प्रस्तुत हुआ है । संकलन के शीर्षक से जुड़ी यह रचना कवि के अधिकांश रचना-संसार की आधारभूमि प्रतीत होती है। कवि के काव्य-विषय, भाव-भूमि और मन्तव्य सभी में जूझते रहने की बात सर्वत्र दिखाई सुनाई देती है ।

14. *जीने के लिए :*

'जीने के लिए'[41] काव्य संग्रह कवि का चौदहवाँ संकलन है जिसका प्रकाशन सन् 1990 में हुआ । इसमें कुल चालीस कविताएँ संगृहीत है; जिनका रचना काल सन् 1977 से 1986 है । इन कविताओं से कवि ने जीने के लिए कुछ सूत्र और सिद्धांतों की स्थापना की है । जीवन श्रम, दायित्व-निर्वाह एवं सुव्यवस्था के सहारे चल सकता है, परन्तु ऐसा जीवन नीरस भी हो सकता है । कवि ने अपनी कविताओं से यह उजागर किया है कि जीवन को सरस एवं रुचिकर बनाने के लिए भावना अथवा संवेदना ज़रूरी हैं ।

'जीने के लिए' की कविताएँ यह बताती है कि कविता संवेदनाओं की हृदय को प्रभावित करनेवाली मानवीय करुणा के विस्तार के हेतु वाणी के विशिष्ट विधान का नाम है ।[42]

आज की दुनिया को बेहतर बनाने की चेष्टा 'जीने के लिए' संग्रह में विद्यमान है । जीवन कैसा है और कैसा हो ? इस द्वन्द्व का कवि ने निराकरण करने का प्रयत्न किया है ।

15. *आहत युग :*

'आहत युग'[43] कवि महेन्द्र भटनागर का पन्द्रहवाँ काव्य संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 1997 में हुआ । इस संकलन में कुल 44 कविताएँ संगृहीत है । सन् 1987 से 1997 इसका रचना-काल है । इस संकलन की रचनाएँ जीवन्त और सशक्त युग-बोध की भाव-भूमियों पर लिखी गई हैं । कृति के पूर्व-कथन 'स्रष्टा और सृष्टि' में कुमार आदित्य विक्रम का कथन सर्वथा उपयुक्त है - (1) कुछ कविताएँ कवि के जीवन-दर्शन को प्रतिबिम्बित करती है (2) कुछ व्यंग्यपरक कविताएँ वर्तमान भ्रष्ट राजनीतिक माहोल को उजागर करती है (3) वैयक्तिक भावनाओं से कुछ गीत भी हैं ।[44]

कविताओं में ओज है । वैश्विक भावना के साथ स्व-अनुभूति की अभिव्यक्ति है । 'आहत युग' की कविताएँ जीवन-सत्यों से रुबरु होने के क्रम में रची गई हैं ।

भावपक्ष सबल और भाषा सरल है । रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में प्रचलित वाक्यांशों और मुहावरों का प्रयोग हुआ है ।

'आहत-युग' में आम आदमी का जीवन चित्रित है ।

16. *अनुभूत क्षण*

'अनुभूत क्षण'[45] कवि महेन्द्र भटनागर का सोलहवाँ काव्य संग्रह है, जिसमें पचपन कविताएँ संगृहीत है । यह कविताएँ 1998 से 2000 के अरसे में लिखी हुई है । इनमें कवि ने अपने भोगे हुए क्षणों का चित्रण किया है । शीर्षक से भी यही तथ्य प्रकट है ।

'अनुभूत क्षण' में कवि ने समाज, संस्कृति, प्रकृति, परिवेश आदि का चित्रण किया है ।

17. *मृत्यु-बोध : जीवन-बोध*

'मृत्यु-बोध : जीवन-बोध' कवि महेन्द्र भटनागर का सत्रहवाँ काव्य संग्रह है । इस संकलन में कुल पचास कविताएँ संगृहीत हैं जिनका रचना-काल सन् 2001 से 2002 है । इस सग्रह का प्रकाशन इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली ने 2002 में किया ।

18. *राग-संवेदन :*

'राग-संवेदन' कवि का अठारवाँ काव्य-संग्रह है । इस संग्रह में कुल पचास कविताएँ संगृहीत हैं । इन रचनाओं का रचना-काल 2003 से 2004 तक का है ।

इस तरह, कवि महेन्द्र भटनागर के अब-तक अठारह काव्य-संग्रह प्रकाशमें आ चुके हैं । इन समग्र कविताओं की संख्या करीबन (852) आठसौ बावन होती है । उनका कवि-कर्म आज भी जारी है ।

कवि महेन्द्र भटनागर ने कविता के अलावा आलोचना (हिन्दी कथा-साहित्य, हिन्दी-नाटक, साहित्य-रुपों का सैद्धांतिक विवेचन एवं उनका ऐतिहासिक क्रम विकास, आधुनिक-काव्य) साक्षात्कार, रेखाचित्र, लघुकथाएँ, एकांकी / रेडियो-फ़ीचर, गद्य-काव्य आदि पर भी लेखनी चलाई है ।

संदर्भ

1. कवि महेन्द्र भटनागर : सृजन और मूल्यांकन : सं.डॉ.दुर्गाप्रसाद झाला (मेरे कवि जीवन के पन्द्रह वर्ष - महेन्द्र भटनागर) पृ.141
2. 'हुंकार', टूटती श्रृंखलाएँ, पृ.71
3. अभियान : डॉ. महेन्द्र भटनागर (मेरी कविता-भूमिका) पृ.1
4. महेन्द्र भटनागर समग्र-5
5. वही, भाग-1, पृ.176
6. वही, पृ.179
7. वही, समग्र-1, पृ.192
8. वही, समग्र-1, पृ.195
9. वही, समग्र-1, पृ.196
10. नई चेतना : बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे, पृ.1
11. कवि महेन्द्र भटनागर : सृजन और मूल्यांकन : सं. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला (परिशिष्ट-प्रथम) मेरे कविजीवन के पन्द्र वर्ष - महेन्द्र भटनागर, पृ.142
12. वही, पृ.142
13. वही।
14. वही।
15. कवि महेन्द्र भटनागर : सृजन और मूल्यांकन : डॉ. सियाराम तिवारी ग्रंथ में प्रकाशित समीक्षा से पृ.80
16. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर अनुभूति और अभिव्यक्ति, डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.43
17. कवि महेन्द्र भटनागर का रचनासंसार : सं. डॉ. विनयमोहन शर्मा में संकलित समिक्षा से, पृ.41
18. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर अनुभूति और अभिव्यक्ति, डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.45
19. वही, पृ.46
20. महेन्द्र भटनागर समग्र-1, पृ.115

21. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर : अनुभूति और अभिव्यक्ति, पृ.50
22. प्रकाशक : स्वरुप ब्रदर्स, इन्दौर (म.प्र.)
23. विहान : जलो - जलो, पृ.1
24. महेन्द्र भटनागर की काव्य साधना, श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.40
25. प्रकाशक : श्री अजन्ता प्रेस (प्रा.ली.) पटना
26. 'नई चेतना', प्राक्कथन, पृ.2
27. वही, पृ.2
28. महेन्द्र भटनागर समग्र-2, पृ.127
29. प्रकाशक : साहित्य प्रकाशन मन्दिर, ग्वालियर।
30. 'मधुरिमा' की 'दो-शब्द' (भूमिका) से।
31. महेन्द्र भटनागर की काव्य साधना, श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.81
32. बसंत, पृ.20
33. श्री वीरेन्द्रकुमार जैन (पत्रावली)
34. प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।
35. प्रकाशक : कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल-ग्वालियर-1963
36. 'जागृति' (अक्टूबर) पृ.45-46 डॉ. गपणतिचन्द्र गुप्त (चंदीगढ)
37. प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
38. महेन्द्र भटनागर समग्र खंड-3, पृ.65-66
39. प्रकाशक : प्रबुद्ध भारती प्रकाशन, ग्वालियर।
40. प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद।
41. प्रकाशक : सर्जना प्रकाशन, ग्वालियर।
42. सामाजिक चेतना के शिल्पी कवि महेन्द्र भटनागर सं. डॉ. हरिचरण शर्मा : जीने के लिए : मानव धर्म का प्रतिपादन, डॉ. विजय द्विवेदी, पृ.209
43. प्रकाशक : सर्जना प्रकाशन, ग्वालियर।
44. महेन्द्र भटनागर समग्र खंड-3, पृ.101
45. प्रकाशक : निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली-120011

चतुर्थ अध्याय

महेन्द्र भटनागर का जीवन और साहित्य के प्रति दृष्टिकोण

4.1 जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण

4.2 आशावाद

4.3 भाग्यवाद-नियतिवाद के विरुद्ध

4.4 काव्य-सृजन का उद्देश्य

4.5 कला-धारणा

4.6 वैचारिक आधार

4.7 निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय

महेन्द्र भटनागर का जीवन और साहित्य के प्रति दृष्टिकोण

4.1 *जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण :*

व्यक्ति का जीवन किसी आदर्श या विचार पर निर्भर होता है । मनोविज्ञान उसे 'प्रवृति' नाम देता है । मूल प्रवृति वह प्रकृति प्रदत्त शक्ति है जो प्राणी के मन में संस्कारों के रूप में विद्यमान रहती है और जिसके कारण वह किसी विशेष प्रकार के पदार्थ की ओर ध्यान देता है, उसकी उपस्थिति में किसी विशेष प्रकार की वेदना अथवा संवेग की अनुभूति करता है और किसी विशेष कार्य में प्रवृत्त होता है ।"[1] यद्यपि आज के बहुत से मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्तियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते है, लेकिन उनकी यह उपेक्षा उचित प्रतित नहीं होती । मनुष्य की नैसर्गिक क्रियाएँ शिक्षा-दिक्षा की उपेक्षा नहीं रखती । मानव आचरण पर सभ्यता एवं संस्कृति के कितने ही आवरण क्यों न डाल दिये जाएँ, उसका मूल प्रवृत्तियात्मक रूप छिप नहीं सकता और फिर साहित्य के क्षेत्र में तो उनका और भी महत्व है । साहित्यकार ने मनोवैज्ञानिक रूप का व्यवस्थित अध्ययन भले ही न किया हों; किन्तु वह उसके स्वरूप एवं महत्व से परिचित अवश्य रहता है । साहित्यकारों ने साहित्य के स्थायित्व को उसमें सन्निविष्ट मूल प्रवृतियों पर निर्भर माना है । इस विषय में उपन्यास सम्राट प्रेमचंद लिखते हैं - "वही साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अवलंबित हो । ईर्ष्या और प्रेम, क्रोध और लोभ, भक्ति और विराग, दुःख और लज्जा, सभी हमारी मौलिक प्रवृतियाँ हैं । इन्हीं की छटा दिखाना साहित्य का परम उद्देश्य है और बिना उद्देश्य के कोई रचना हो ही नहीं सकती ।"[2]

मूल प्रवृत्तियों के महत्व को स्वीकारते हुए मनोवैज्ञानिक साहित्यकार इलाचंद्र जोशी ने लिखा है - "अन्तर्मन के अतल में दबी पड़ी ये प्रवृतियाँ वैयक्तिक और फलस्वरूप सामूहिक मानव के आचरणों तथा पारिवारिक और सामाजिक संगठनों को किस हद तक युगों से परिचालित करती आयी हैं और आज भी कर रही हैं इसका यदि खाता तैयार किया जाये तो, आश्चर्य से स्तब्ध रह जाना पडेगा ।"[3]

स्पष्ट है कि मूल प्रवृत्ति प्राणी की वह मानसिक अथवा शारीरिक प्रकृति है जो किसी विशिष्ट परिस्थिति में उसे किसी विशिष्ट प्रकार के आचरण की प्रेरणा देती है ।

कवि महेन्द्र भटनागर कविता का संबंध जीवन से जोड़ते हुए कहते हैं "कविता का जीवन से अटूट संबंध है । जैसा जीवन हम जीते है उसकी अभिव्यक्ति काव्य में होती है ।"[4] रचना प्रक्रिया को लक्ष्य कर कवि महेन्द्र भटनागर जीवन को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं - "रचनाकार का व्यक्तित्व उसकी कृति में अनिवार्य रूप से प्रतिबिम्बित रहता है - रचना चाहे वैयक्तिक हो, चाहे समष्टिगत, चाहे समसामयिक हो चाहे शाश्वत । आपबीती ही नहीं, जगबीती भी स्रष्टा के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अभिव्यक्त होती है ।"[5]

"कविता आत्म-प्रकाशन का माध्यम भी है । आत्म प्रकाशन के लिए व्यक्ति-स्वातंत्र्य अनिवार्य शर्त है । व्यक्ति के जीवन का यदि एक सामाजिक पक्ष है तो दूसरा उसका अपना निजी । आज हम जिस परिवेश में जी रहे हैं, उसने मानव-व्यक्तित्व के उपर्युक्त पक्षों को पर्याप्त नियंत्रित कर रखा है । निरन्तर संघर्ष के बावजूद अनेक विफलताओं का अनुभव हमें प्राय: होता है । विफलताएँ मानव-मन पर अपना प्रभाव अंकित करती ही हैं । अत: उनकी अभिव्यक्ति काव्य में स्वाभाविक है । व्यक्तिगत स्तर पर भी संबंधों का अनुकूल अथवा प्रतिकूल स्वरूप दृष्टव्य है । जीवन में थकान, ऊब, पराजय, प्रवंचना आदि की अनुभूति समय-समय पर प्रत्येक को होती है । परिणाम-स्वरूप इन सबका अनायास प्रकाशन कविता में हो सकता है, होता है । बस, देखना यह है कि कवि-मन का चेतन पक्ष असफलताओं और निराशाओं के सम्मुख हतप्रभ हो जाता है अथवा भावी संघर्ष में आत्म-विश्वास प्रकट कर सुंदर भविष्य की कल्पना करता है ।"[6]

कवि महेन्द्र भटनागर संवेदना के कवि हैं । व्यक्ति जीवन संवेदना से सुख व दुख की अनुभूति करता है । जब संवेदना मृतप्राय: हो जाती है तो व्यक्ति में मानवता नहीं रहती, वह पाषाण-सा हो जाता है । कवि महेन्द्र ऐसे संवेदनहीन लोगों के जीवन को देखकर प्रश्न करते हैं :

क्या यही है मनुज-जीवन ?
मन दुखी है इसलिए तुम
मौन-स्वर में रो रहे हो,
हो रहे बेचैन इतने
आश सारी खो रहे हो,
पर, कभी मिलता सरस सुख,
हँस लिया करते उसी क्षण !
क्या यही है मनुज जीवन ?

प्रकृति का नियम है जो जन्म धारण करता है उसकी मृत्यु निश्चित है। कवि ने इस बात को 'ज्योति कुसुम' कविता में 'पतझर' के नियम से स्पष्ट की है । यथा :

देह जिसकी बाद पतझर के
नवल मधुमास के, नवल कोंपलों-सी
शुद्ध, उज्ज्वल, रसमयी,
कोमल मधुरतम ।

मृत्यु के आते ही हर व्यक्ति को उसके अधीन होना पड़ता है । कैसा भी शक्ति-संपन्न व्यक्ति क्यों न हो मृत्यु के आगे उसकी एक भी नहीं चलती। यथा :

"आ कभी जाता प्रभंजन
बेल के कुछ फूल
या लघु पाँखुडी सूखी
गँवाकर ज्योति, जीवन शक्ति सारी,
मौन झर जातीं गगन से !
या कभी

जन स्वर्ग के आ,
अर्चना को,
तोड़ ले जाते कुसुम
इस बेल से,
जो विश्व-भर में छा रही है
नाम तारों की लड़ी बन !"[7]

कवि महेन्द्र नये अंकुरों की अदम्य शक्ति के सराहक है और उनके लिए रास्ता छोड़कर चलने का आग्रह करते हैं :

अंकुरों की राह से हटकर चलो !
अंकुरों की बाँह से हटकर चलो !
अंकुरों को फैलने दो
धूप में
विस्तृत खुले आकाश में ।[8]

जीवन के प्रति आसक्ति के कारण ही उसे इच्छाओं की आपूर्ति विक्षुब्ध करती है । वातावरण की विषमता उसे कुछ विवश-शिथिल भी कर देती है । जीवन के बिखराव, उसकी अव्यवस्था और विशृंखलता का ही नहीं, उसकी गंदगी और किचपिचाहट का भी अहसास उसे है; किन्तु जीने की अदम्य इच्छा इतनी बलवती है कि वह इस सबके पार से शक्ति ग्रहण करता रहता है । वह जीवन की विडम्बना से परिचित होकर भी वेदना-विगलित होने और रोने-धोने के पक्ष में नहीं है; बल्कि चाहता है :

"हृदय में दर्द है
तो
मुस्कुराओ
उर में वेदना है
तो सहज कुछ इस तरह गाओ

कि अनुमति तक न हो उसकी
किसी को,
सिक्त मधुजा कंठ से
उल्लास गाओ !
पीत पतझर की
तनिक खड़खड़ाहट हो नहीं
मधुमास गाओ !

और 'अनुबोध' में कहता है :

पीर ही देगी तुम्हारा साथ,
थाम लो इसका
करुण-निधि-रेख-अंकित हाथ,
हिम शीत प्यारा हाथ !
रे यही देगा तुम्हारा साथ
वर लो !"[9]

डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित के शब्दों में "महेन्द्र भटनागर आत्म-केन्द्रित कवि नहीं हैं । जीवन संघर्ष से पलायन और अतीत में रमण उनकी कविता का विषय नहीं है । सौन्दर्य, प्रेम और रहस्य से उन्हें गुरेज़ नहीं है, पर मानव-संदर्भ और मानवीयता की परिधि को लाँघकर किसी दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में वे पदार्पण नहीं करते ।"[10]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में एक ऐसा जीवन-बोध ही उन्हें जीवन और समाज के प्रति निरन्तर आकर्षित करता रहता है । उनकी कविता आसमान से टपकी हुई या किसी नक्षत्र लोक की काल्पनिक दुनिया की सैर नहीं कराती, वह तो इन्सान, इन्सानी जिंदगी और उसकी फ़ितरत से साक्षात्कार कराती हुई हमें हमारी पहचान कराती है । महेन्द्र भटनागर पीड़ित और प्रताड़ित व्यक्ति को अपना स्नेहमय उपहार देते हुए यह कहते हैं कि जीवन है

तो सपने भी होंगे, क्योंकि सपनों को सँजोये बिना जीवन कहाँ और कैसे चल पायेगा ? सपने ही तो मनुष्य को मनुष्य बनाये रखते हैं और वह उन्हीं को सँजोकर ही तो आगे कदम बढ़ाता है :

सपने देखना, मानो -

जीवन की निशानी है

यम की पराजय की कहानी है !

x x x x

स्वप्नदर्शी शब्द

परिभाषा मनुज की ![11]

कहने का तात्पर्य यह है कि कवि महेन्द्र स्वप्निल दुनिया के नहीं, बल्कि स्वप्नों के सहारे जीवन को गतिशील बनाये रखने की भावना से भरे हुए जीवंत कवि है ।

हर व्यक्ति के जीवन में सुख-दुख आते रहते हैं जिनसे व्यक्ति बनता है, बिखरता है । जीवन व्यापी विसंगतियों, विषमताओं और विभीषिकाओं से कवि का मन भी आहत हुआ है । उन्हें लगा है कि जीवन के बिखरे पत्ते मुरझा गये हैं, फूल बिखरकर धरती की रेत में मिल गये हैं और कितनी ही धूल-भरी आँधियाँ एक साथ कवि की आँखों में भर गयी हैं, पर इन सब स्थितियों के बावजूद आहत चेतना से, कवि का मन न तो थका है, न हारा है और न कुंठित होकर चुपके से एकान्त में चला गया है । वह संघर्ष के लिए हर क्षण तत्पर है । वह कहता है -

मैं नहीं दुर्भाग्य के सम्मुख झुकूंगा

आज जीवन में हुआ असफल भले ही !

जीवन नाशवंत है, यह बात कवि महेन्द्र भटनागर खुद समझकर हर व्यक्ति को समझाते हैं । वे कहता हैं कि जीवन का भरपूर आनन्द लेना चाहिए क्योंकि इसे एकदिन समाप्त होना ही है । यथा :

जीवन हमारा फूल हरसिंगार-सा
जो खिल रहा है आज
कल झर जायगा !
इसलिए हर पल विरल
परिपूर्ण हो रसरंग से
मधु प्यार से
डोलता अविरल रहे हर उर
उमंगों के उमड़ते ज्वार से[12]

कवि महेन्द्र भटनागर जीवन में हताशा को स्थान नहीं देते । वे कहते हैं :

जीवन में पराजित हूँ
हताश नहीं !
x x x x
अभिशप्त हूँ
पग-पग प्रवंचित हूँ
निराश नहीं ![13]

महेन्द्र भटनागर की कविता में आधुनिक भावना का प्रसार मिलता है। आनन्द की प्रक्रिया और रसास्वादन के सुखद अनुभव को वे अधूरा छोड़ना नहीं चाहते - वे कहते हैं :

जीवन दिया है
तो
लेने दो
हर फूल की मधु गंध,
जीवन दिया है तो

सोने दो

हर लता के अंक में निर्बन्ध ![14]

कवि महेन्द्र भटनागर जीवन के अंतिम क्षण तक संघर्ष करने को कहते हैं । शांति तभी ही मिलती है । यथा :

प्राणों के अंतिम पल तक

जग में जमकर संघर्ष करो

विप्लव होता जब जग में

शांति तभी ही आती है ।[15]

जीवन-संग्राम में आदमी को अथक प्रयत्न करना चाहिए और सदा निडर रहना चाहिए । जो कहता है कि जग मिथ्या है और जीवन नश्वर है वह संघर्षों से डरनेवाला है । कवि को पूरा विश्वास है कि जीवन कठिन सत्य है और यहाँ कर्म का नाम ही तपस्या है -

जीवन जब है एक समस्या

कर्मो का ही नाम तपस्या ।[16]

कवि महेन्द्र भटनागर के अनुसार व्यक्ति को स्थित-प्रज्ञ होना चाहिए । सुख-दुख में विचलित होना पौरुष का लक्षण नहीं है । कवि यह तत्व भली-भाँति जानता है । तभी वह कहता है -

अनुभव न हो कभी जीवन में

हृदय शिथिल होने का,

अवसर आये न कभी असमय

संयम बल खोने का ।[17]

डॉ. रमाकान्त शर्मा कहते है कि “महेन्द्र भटनागर की प्रतिबद्धता जीवन के प्रति है, क्योंकि मार्क्सवाद जीवन से सबसे अधिक जुडा हुआ दर्शन है । वह तरफ़दार है जीवन का, वह तरफ़दार है खूबसूरती का, वह तरफ़दार है इंसान की मुक्ति का ।”[18] कवि कहता है

भाग्य से

अथवा जगत से

हर प्रताडित व्यक्ति को

आजन्म-संचित स्नेह मेरा

है समर्पित ![19]

'तारों के गीत' संग्रह में कवि 'तारों' को लक्ष्य कर कहता है :

चाहे पवन धीरे चले,
चाहे पवन जल्दी चले,
आँधी चले, झंझा मिले,
तूफान के धक्के मिलें,
          तिलभर जगह से बिन हिले
          जलते रहो जलते रहो !
या शीत हो, कुहरा पड़े,
गरमी पड़े, लूएँ चलें,
          बरसात की बौछार हो,
          ओले, बरफ ढक लें तुम्हें,
आकाश से पर बिन मिटे
जलते रहो, जलते रहो !
          चाहे प्रलय के राग में
          जीवन-मरण का गान हो,
दुनिया हिले, धरती फटे
सागर प्रबलतम साँस ले,
          पिघले बिना सब देखकर
          जलते रहो, जलते रहो ![20]

उक्त काव्य में 'तारों' को 'जलते रहो, जलते रहो' कहता कवि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में किसी भी परिस्थिति में जीवन जीने की बात करता है । महेन्द्र भटनागर यहाँ जीवन से हार कर भागने का नहीं बल्कि संघर्षरत रहने का आह्वान करता है । यही बात कवि 'जलते रहना' में करता है । यथा :

तुम प्रतिपल मिट-मिट कर जलते रहना ![21]

कवि कहता है कि दुख सबको सताते हैं पर उससे व्यक्ति को टूटकर बिखरना नहीं चाहिए । 'नश्वर तारक' तारक में वह कहता है कि तारों पर भी दुख टूटता है, मगर दूसरे क्षण ही वे सँभल जाते हैं । यथा :

"इन तारों की दुनिया में भी मिटने का अमिट विधान छिपा !
जीवन की क्षण भंगुरता को
इनने भी जाना पहचाना,
बारी-बारी से मिटना, पर
अगले क्षण ही जीवन पाना,
आत्मा अमर रही, पर रूप न शाश्वत, यह मंत्र महान छिपा !"[22]

कवि कहता है कि जीवन में हर व्यक्ति का अपना लक्ष्य निश्चित होना चाहिए । अंतिम पल तक व्यक्ति को अपने कर्तव्य से, लक्ष्य से विमुख नहीं होना चाहिए । इसमें संयम रखना आवश्यक है । कवि कहता है :

"कर्तव्य-विमुख जाना है कब,
चाहे घेरे जग-आकर्षण ?"[23]

कवि इतिहास को दोहराता हुआ कहता है कि जो संघर्ष में धैर्य से आगे बढता है वह विजयश्री को प्राप्त होता है । यथा :

"अविराम अचंचल, मौन-व्रती ये युग-युग से जलते आये,
लाँघ गये बाधाओं को, ये संघर्षो में पलते आये ।"[24]

वह जानता है कि सुख-दुख तो मानव जीवन में बारी-बारी से आते है, इसलिए विपदाओं के झोकों और सुख के मधु स्वप्नों से विचलित और

चंचल न होना ही स्थित-प्रज्ञ का लक्षण है । कवि ने समरसता को इसी भाव भूमि पर स्वावलंबन का पाठ किया है -

मैं अपना खुद पतवार बना

मैं अपना खुद आधार बना

निज की निर्भरता पर रखता,

अविचल जीवित विश्वास घना !

कवि का यह विश्वास त्यागमय जीवन का है, बलिदान का है । यथा :

'संघर्षो की ज्वाला में जलो, जलो !

बलिदान-त्यागमय जीवन हो ।'[25]

'जीवन दृष्टि', 'नव-पथ राही' में कवि परिश्रम से जीवन-पथ को पार करना सिखाता है । यथा :

'जीवन में तुमको होना है

श्रमशील अथक उन्मुक्त निडर ![26]

x x x x

अंतिम पल तक संघर्ष अथक ।'[27]

'विहान' का कवि जीवन की कामना करता हुआ कहता है -

"ओ मेरे मन ! तुम आकांक्षाओं के भंडार बनो,

नव-नव स्वस्थमना इच्छाओं के रे आगार बनो !

जीवन में प्रतिपल मादकता हो, गति हो, सिहरन हो,

अन्तर में जीने का नव-उत्साह भरा कंपन हो !"[28]

'विहान' की कुछ कविताएँ कवि की जीवनदृष्टि की परिचायक है । इनमें से कुछ कविताओं में युवकोचित उत्साह और आदर्श-भावना है । श्रमशील और निडर बनने का संकल्प है । पूजा और उपासना द्वारा सुख-वैभव प्राप्ति की कामना को निस्सार बताया गया है । जीवन संघर्ष में लिप्त रहना ही मानवता का धर्म व मर्म है । जो दर्शन 'मिथ्या जग, जीवन नश्वर' का प्रचार करता है, उसे कवि अस्वीकार करता है ।"[29]

कवि महेन्द्र भटनागर अँधेरे में आशा की किरण ढूँढकर आगे बढना सिखाते हैं । यथा :

मूक जीवन के अँधेरे में, प्रखर अपलक,
जल रहा है यह तुम्हारी आश का दीपक !
ज्योति में जिसके नई ही आज लाली है
स्नेह में डूबी हुई मानों दिवाली है !
दीखता कोमल सुगन्धित फूल-सा नव-तन,
चूम जाता है जिसे आ बार-बार पवन !
याद-सा जलता रहे नूतन सबेरे तक,
यह तुम्हारे प्यार के विश्वास का दीपक ![30]

'युग चेतना' (लखनऊ) में यशस्वी साहित्यकार प्रतापनारायण टण्डन ने 'अन्तराल' पर निम्नलिखित प्रतिक्रिया व्यक्त की है : "वे इस गतिशील जीवन में निष्क्रिय होकर नहीं बैठना चाहते अथवा पलायनवाद का सहारा नहीं लेते, बल्कि जीवनसंघर्ष से लोहा लेने को तैयार होकर विश्व की महाशक्ति को चुनौती देने को तैयार हो जाते हैं ।"

महेन्द्र भटनागर का कवि वर्तमान को जीनेवाला कवि है । वह बीते हुए पल में रहकर रोना नहीं चाहता । कवि ने जीवन की महत्वपूर्ण बात बताई है :

रे मन !
बीती गाथाओं की स्मृति पर
तुम अश्रु बहाना मत पल भर,
जीवन में आहे भरना मत ।[31]

मन दीपक का चरम धर्म अकम्प भाव से जलते रहना है :

हँस-हँस तिल-तिल जलते रहना
आघात सभी सहते रहना

तभी तुम्हारा सार्थक जीवन

रे मन ![32]

कवि जीवन की सार्थकता शांति के लिए मिट जाने में मानता है । यही व्यक्ति का जीवन धर्म है । वह कहता है :

कब मिटे हो तुम जगत में शांतिमय जीवन बसाने,

कब बढ़े हो गहन तम में दूर का आलोक पाने ?

जान जाओगे तभी तुम साधना का मर्म क्या है !

है सतत संघर्ष का युग, फिर मनुज का धर्म क्या है !"[33]

महेन्द्र भटनागर का कवि ज़िंदगी के हर बीहड़ रास्ते से गुज़रा है, किन्तु न वह थका है न हारा है । प्रत्येक क्षण संघर्षरत रहा है । वह कहता है :

"कितना बीहड़ दुर्गम रे पथ,

उलझ-उलझ जाता जीवन-रथ,

पर, रोक नहीं सकती मेरी गति को कोई भी लाचारी !"[34]

कवि में लक्ष्य-प्राप्ति के लिए संघर्ष और परिश्रम की ओर संकेत करता। संघर्ष और परिश्रम से उसने प्रत्येक मुसीबत से लोहा लिया है । इस आशा से कि भविष्य सुखमय हो । वह कहता है :

'स्नेह-सुधा-जल बरसा दूँगा, टूटी-फूटी दीवारों में !

जन-उर में द्रोह उठा दूंगा,

यौवन का तेज जगा दूंगा,

उन्नति की राह बता दूंगा,

मूक अभावों के जीवन में, घोर निराशा में, हारों में !'[35]

4.2 *आशावाद :*

छायावादी युग के कवि भी साहित्य की सामाजिक भूमिका के प्रति सजग थे । 'रुपाभ' के संपादकीय में कवि सुमित्रानंदन पंत ने लिखा था -

"इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं । अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती ।..... उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है । हमारा उद्देश्य इस इमारत में चूनिया लगाने का कदापि नहीं है, जिसका कि गिरना अवश्यम्भावी है । हम चाहते हैं उस नवीन के निर्माण में सहायक होना जिसका प्रादुर्भाव हो चुका है ।"[36]

कवि महेन्द्र भटनागर सजग साहित्यकार हैं । उन्होंने अपनी कविता को 'नारा' होने से बचाया है । अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों पर उनकी समान दृष्टि रही है । "अकेले महेन्द्रजी ने कविता के क्षेत्र में जितने तरह के प्रयोग किये हैं, वह विविधता तथाकथित प्रयोगवादी कवियों में भी देखने को नहीं मिलती ।"[37]

"महेन्द्रजी की कविताओं का धनात्मक पक्ष है - विचारों, विश्वासों की निर्भीकता । शुरु से ही वे अपने लेखन में विद्रोही, क्रांतिकारी रहे हैं । कवि का विद्रोह ओढ़ा हुआ या आरोपित नहीं है । महेन्द्रजी को छल-छद्म में जरा भी विश्वास नहीं है ।"[38] विश्वास है तो परिश्रम और संघर्ष में ।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम से जुड़कर कवि परंपरा को तोड़ने का आग्रह करता और आशा-विश्वास से आगे बढ़ता हुआ कहता है :

चल रहा है वेग से स्वातंत्र्य-झंझावात !
आज जन-जन की पुकारें, अग्नि की बरसात !
आज जन-जन की दहाड़ें, मृत्यु का आघात !
दासता की शृंखलाएँ तोड़ देगें आज,
घोर प्रतिद्वन्द्वी हवाएँ मोड़ देगें आज,
निज निराशा, फूट, जड़ता छोड़ देगे आज !

महेन्द्र भटनागर का कवि दुख में ही सुख का मार्ग ढूँढता है । उत्थान-पतन से ही व्यक्ति का जीवन मधुर बनता है । कवि का कथन है :

"उत्थान-पतन औ अश्रु-हास

से मिल बनता जीवन सुखकर ।"[39]

कवि महेन्द्र भटनागर की दृष्टि में निराशा एवं हताशा पराजय का ही दूसरा नाम है । वे प्रयत्न द्वारा अनुकूल फल-प्राप्ति के सिद्धांत में विश्वास करते हैं और मानते हैं कि यदि हम निष्ठापूर्वक कर्म-साधना में लगे रहे, तो निराशा और हताशा हमारी चौखट पर आने का साहस नहीं करेगी । यथा :

जीवन की हर सुबह सुहानी हो !

भर लो हास बहारों का

नदियों फूल कछारों का

फूलों गजरों हारों का

कन-कन की हर्षान्त कहानी हो !

शीतल नेह निगाहों से

प्यार भरे गलबाहों से

लहकी-लहकी मधुर जवानी हो !

कवि महेन्द्र भटनागर संघर्ष और आस्था के कवि है । विषमताओं से लड़ने का साहस कवि में भरा पड़ा है । उनमें इतना आत्मविश्वास है कि वे विषमताओं से 'अप्रभावित' रहकर सतेज कह सकते हैं :

विषज हर द्रव्य

हँसकर

शेष जीवन-हेतु

अपने-आप पी लेंगे !

मत करो चिन्ता

निवासी विष-निलय का मैं,

महाशिव तीर्थ हूँ

अपने समय का मैं !

यह बहुत सुखद है कि वे इस उत्साह और ऊर्जा को आज तक सहेजे हुए हैं। परिवर्तन की साध लिए, वे बड़े अरमान के साथ अवरोधों पर घन चोट करते हैं, क्योंकि उन्हें नव-जीवन और नवयुग की अवतारणा में विश्वास है :

मुक्ति मशाले थामे

जन-जन गुज़रेंगे

कोने-कोने में

अपना जीवन-धन खोजेंगे !

नवयुग का तूर्य बजेगा,

प्राची में सूर्य उगेगा ![40]

व्यक्तिगत पीड़ाओं-व्यथाओं की आँच में जलने-तपने के बाद कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि समष्टि में अपनी व्यष्टि को तिरोहित किए बिना मुक्ति संभव नहीं । इसीलिए वह कहता है :

मैं आऊँगा

फिर आऊँगा,

निज को विसर्जित कर

सामूहिक चेतना का अंग बन

अन्त हीन भीड़ में मिल जाऊँगा ।[41]

कवि स्वयं में आए अन्तबोध से हैरान है । वह जानना चाहता है :

कौन-सा ज्योतित सबेरा,

आज आशा की लकीरें

मन-पटल पर कर रहा अंकित ?[42]

उसके अडिग आत्म-विश्वास और अमिट आशावाद को उकेरती हैं ये पंक्तियाँ :

मुझको मिली कब हार है ![43]

क्योंकि उसका :

प्रगति ही ध्येय जीवन का, बना संबल ![44]

उसे

विश्वास है

एक दिन काली घटाओं से घिरा आकाश

खुलकर ही रहेगा ![45]

कवि की यह अदम्य आस्था जो दुर्गम विजनों में मौत से जूझते हुए नई राह बनाने का दावा कर रही है, अपना प्राण-आसव जुटाती है । जन-शक्ति के प्रति वह आश्वस्त :

मुझे भरोसा है -

मेरे साथी आकर

कारा के ताले तोड़ेंगे

जन-द्रोही सत्ता का

ऊँचा गर्वीला मस्तक फोड़ेंगे !

इन्सान नहीं फिर कुचला जाएगा

इन्सान नहीं फिर

इच्छाओं का खेल बनाया जाएगा ![46]

यह भी कि :

हँसूगा व जीवित रहूँगा

सफलता बिना,

निखरता मनुज का न जीवन

विफलता बिना ![47]

उसका साहस, आत्मबल और विश्वास समस्त जगत को जड़ता के परे करता हुआ नवजीवन और आशावाद की रसधार में नहलाता रहा है :

समेटो मनुज प्राण-साहस अमर,

अनल में तपो जो लगा है प्रखर

जवानी बड़ी जायगी यों निखर

सुनाकर सबल स्वर जगत को जगाता रहा हूँ ![48]

पीड़ा में व्यक्ति जाग्रत रहता है । पीड़ा से हततेज के विरुद्ध कवि का यह स्वर विरुद्ध परिस्थितियों में भी डटे रहने का जबरदस्त संबल बन जाता है :

पीर ही देगी तुम्हारा साथ

थाम लो इसका

करुण-निधि-रेख-अंकित हाथ,

हिम-शीत प्यारा हाथ ![49]

जो जीवन की तृष्णा को रोने के बजाय गा सकता है, गहन आशा के साथ जीवन-यापन कर सकता है; उसकी जिजीविषा को कौन बाधित कर सकता है ! कवि स्वीकार करता है :

जीवन में

पराजित हूँ

हताश नहीं ![50]

क्योंकि वह जानता है :

जीवन प्राप्त जो -

अच्छा

बुरा

अविराम जीने के लिए ![51]

प्रत्येक क्षण कवि नयी आशा के साथ क़दम रखता है । शायद, उसने 'मानस' के कवि तुलसी को अपना आदर्श माना है । तुलसी के शब्दों में कहें तो

'मन के जीते जीत, मन के हारे हार !'

कवि इसी चिन्तन को अपने काव्य में स्वर देता कहता है :

आशा में घोर निराशा को आज

बदलना सीख रहा हूँ ।

कवि का यह विश्वास दृढ़ से दृढ़तर होता जा रहा है कि :

'एक दिन काली घटाओं से घिरा आकाश खुलकर ही रहेगा !'[52]

युगीन आस्था :

जीवन जगत के प्रति प्रगाढ़ आस्था कवि महेन्द्र भटनागर की प्रमुख विशेषता है । उनका आशावादी स्वर अनेक रचनाओं में सहज ही गूँजा है । इसी स्वर से उन्होंने शोषित, दलित, दुर्बल, अभावग्रस्त, पराजित, प्रताड़ित मानवता में नवीन प्राणों का संचार करने का प्रयास किया है । कवि ने इटली, फ्रांस, रूस और फिर स्वदेश में जन-आन्दोलनों का जो क्रम देखा है, उसने उसे प्रगाढ़ आशा से अनुप्राणित कर दिया है । वह जन-जन के जीवन से दु:ख-दैन्य के भावी पलायन की स्पष्ट पदचाप सुन रहा है :

सदियों बाद जगा है मानव

अधिकारों की आवाज़ लगी,

सुन जग की जनता आज जगी

दुख, दैन्य, निराशा भगी-भगी ![53]

और कवि को सुखद भविष्य के आसार दिखाई देने लगते हैं :

शीघ्र गूँजेगी गगन में महत मानव

लोक-वाणी शक्तिशाली और अभिनव !

दे सकेगी पीड़ितों को सुदृढ़ संबल

विश्व के सब शोषितों का स्नेह निश्छल ![54]

जनता की यह बग़ावत है पशुता और दानवता-प्रसूत व्यवस्था के विरुद्ध । जन-बल का यह एकात्म भाव रंग लाये बिना न रहेगा । वह आशा करता है :

अब आनेवाली है आँधी कट जाएँगे जिससे बंधन,

अगणित शोषक-साम्राज्यों के भू-लुण्ठित होंगे सिंहासन ![55]

कवि अपने युग की यह रवानी देखकर आशान्वित हो उठता है :

मनुज को नए गान देता

सरल स्नेह मुस्कान देता

सबेरा नया आ रहा है ![56]

क्योंकि उसकी आँखों के सामने पल-पल पर परिवर्द्धित होता जन-शक्ति का सैलाब है और है उसकी युग-परिवर्तन के प्रति अटूट कटिबद्धता :

नवीन ज्योति की मशाल

आज तो गली-गली में जल रही,

अंधकार छिन्न हो रहा,

अधीर-त्रस्त विश्व को उबारने

अभ्रांत गूँजता अमोघ स्वर

सरोस उठ रहा है बिम्ब-सा

मनुष्य का सशक्त स्वर ![57]

और जब दलित, शोषित, व्यथित मनुष्यता सर उठाती है तो कुछ भी ऐसा नहीं होता जो उसे झुका दे, रौंद दे, दबा दे मिट्टी में । उसके सर की यह उठान युग को जो फौलादी विश्वास देती है वह किसी भी तरह खण्डित नहीं किया जा सकता । यथा :

गिर नहीं सकती कभी विश्वास की दीवार !

निर्मित तप्त जन-जन के लहू से,

वज्र-सी, फौलाद-सी, दृढ़ हड्डियों से ।[58]

जब लोग दुःखी हैं, तो कवि हृदय में कम्पन्न होना स्वाभाविक है । कवि अपने सुख के साथ समग्र मानवता के सुख की कामना करते हैं । अभागों की दुनिया में वह अपनी वाणी को मुखरित देकर नवीन समाज के निर्माण की कल्पना करते हैं । कवि का विश्वास है कि एक दिन अवरोधों को दूर करके मनुष्य सुख के बीज बाएगा -

बढ़ो विश्वास ले अवरोध पथ का दूर होएगा !

मुसीबत की शिलाएँ सब चटक कर टूट जाएंगी

गरजती आँधियाँ दुःख की विनत ही धूल खाएंगी

तुम्हारे प्रेरणा-जल से मनुज सुख-बीज बोएगा ![59]

कवि आशावादी दृष्टि से जीने की प्रेरणा देता है ।

जियो इस आस पर

एक दिन बाले रवि किरण-सा

राग-रंजित हेम मंगल-दीप !

और .....

हर बार

तमस युगों पर

प्रोज्जवल विद्युत आभा

फूटेगी

फूटेगी ।[60]

वर्तमान कितना भी विरूप और त्रासदायक हो, आस्था की शक्ति परिवर्तन की कामना को बल पहुँचाती है और भविष्य के प्रति हमें आश्वस्त करती है । यथा :

ओ भवितव्य के अश्वो !

तुम्हारी रास

हम

आश्वस्त अन्तर से सधे

मज़बूत हाथों से दबा

हर बार मोड़ेंगे ।[61]

कवि महेन्द्र भटनागर आशान्वित हैं । वे नए युग की प्रतीक्षा में रत विश्व-परिवर्तन पर आँख टिकाए हुए हैं :

विश्व अस्थिर, प्रति चरण पर

बन रहा है नित्य नव इतिहास ![62]

उन्हें सुखद भविष्य के आसार दिखाई देते हैं :

"शीघ्र गूँजेगी गगन में महत मानव

लोक-वाणी शक्तिशाली और अभिनव !

दे सकेगी पीड़ितों को सुदृढ़ संबल

विश्व के सब शोषितों को स्नेह निश्छल !"[63]

कवि को यह विश्वास है कि परिवर्तन के लिए छटपटाती युग-आत्मा तत्पर हो चुकी है । वह आशान्वित है कि

"एक दिन काली घटाओं से घिरा आकाश खुलकर ही रहेगा !"[64]

कवि अपने युग में हो रहे परिवर्तनों को देख आशान्वित होकर कहता है :

"मनुज को नया गान देता

सरल स्नेह मुस्कान देता

सबेरा नया आ रहा है !"[65]

कवि की आँखें युग-परिवर्तन के पथ पर टकटकी लगाए हैं :

"ये आँखें देखेंगीं कुछ क्षण के बाद

नया सबेरा, नया ज़माना !"[66]

प्रत्येक कण में नवजीवन की संभावनाओं को साकार करने की निष्ठा से अनुप्राणित अपने युग को पूर्णता देता कवि कहता है :

"सींचो,

कण-कण को सींचो !

हर सूखे बिरवे को पानी दो,

टूटे उखड़े झाड़ों को

अभिनव बल

फिर-फिर बढ़ने की तेज़ रवानी दो ।"[67]

क्योंकि उन्हें आशा व विश्वास है कि :

"हर मिट्टी में गर्मी है

हर मिट्टी पूत प्रसव-धर्मी है !"[68]

नये युग में कवि को आशा है कि

"अब नहीं छाया रहेगा

शीश पर काला कफ़न ।

कुछ पलों में रंग बदलेगा गगन !"[69]

नये युग में कवि ऐसे इन्सान की अपेक्षा करता है जो अपने अधिकारों के प्रति जागृत और अपने कर्तव्यों के लिए तत्पर होगा । वह अत्याचार नहीं सहेगा कवि कहता है :

मानव

अनाचार-नरकाग्नि में

अब दहेंगे नहीं ![70]

आज के इंसान का यह अस्वीकार हर अमानुषिक व्यवस्था और आदमख़ोर सत्ता के विरुद्ध मोर्चे पर डटा हुआ है :

"पशुता की गुलामी

हज़ारों शताब्दियाँ

ढो चुकी हैं,

लेकिन अब

ऐसा नहीं होगा !"[71]

कवि महेन्द्र भटनागर में यह आस्था उनके आशावादी दृष्टिकोण से पैदा हुई है कि वह प्राणों की हर कली हर फूल को मधु-वाही पवन के हिंडोले में खिला सके, झुला सके । इसलिए वह अपने युग-धारकों से कहता है :

नहीं,

यह बंध

शिथिल हो,

हर धड़कन पर

शिथिल हो !

कण्ठ मुक्त हो,

उन्मुक्त हो ।

बोलो -

जकड़न टूटेगी

शब्द-शब्द से

रोशनी फूटेगी ।[72]

4.3 *भाग्यवाद-नियतिवाद के विरुद्ध :*

'भाग्य' शब्द का अर्थ है - "वह निश्चित तथा अटल देवी विधान जिसके अनुसार मनुष्य के सब काम पहले ही नियत किये हुए माने जाते हैं तथा जिसका स्थान माथा और ललाट बताया जाता है । तक़दीर, नसीब, क़िस्मत, नियति, विधि इसके पर्याय है ।"[73]

'वाद' शब्द का अर्थ है - "किसी तथ्य या तत्व के निर्णय के लिये होने वाला तर्क ।"[74]

'भाग्यवाद' शब्द का अर्थ हुआ क़िस्मत के आधार पर चलता कार्य ।

व्यक्ति अगर भाग्य पर विश्वास करके बैठा रहेगा तो उसे खाना भी नसीब नहीं होगा; क्योंकि खाने के लिए व्यक्ति को परिश्रम करना पड़ता है । जो व्यक्ति मात्र भाग्य पर विश्वास कर कर्म से दूर रहता है वह जीवन में कभी प्रगति नहीं कर सकता । भगवद् गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को भाग्य पर विश्वास न करके कर्म के लिए प्रेरित करते हैं । कर्म को भगवद् गीता में फल की आशा किये बिना करने को कहा है :

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।"

आधुनिक युग में कर्म की यह विभावना बदल गई है । हर व्यक्ति निश्चित उद्देश्य से कर्मरत होता है ।

कवि महेन्द्र भटनागर भाग्यवाद और नियतिवाद के विरुद्ध हैं ।

डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में डॉ. महेन्द्र भटनागर - "संघर्ष और विजय में दृढ़ विश्वास" रखनेवाला कवि है । "आशा और उत्साह उनकी कविता का मूल स्वर है ।"[75] कविता के प्रेरणा स्रोत के विषय में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कवि ने स्वीकार किया है कि "मैं अपने को किसी वाद या मतवाद के अन्तर्गत रखा जाना पसंद नहीं करूंगा ।" कवि महेन्द्र भटनागर रचना-धर्मिता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि "आधुनिकता बोध यही है कि मनुष्य समस्त संकीर्णताओं से मुक्त हो । कविता की सार्थकता इसी में है कि वह हमारे मानवता-बोध को जाग्रत रखे, हमारे सौन्दर्य बोध को विकसित करे, हमें अधिकाधिक उदार और सहनशील बनाये, हमारे दृष्टि-क्षितिज को व्यापक करे तथा हमारे हृदय और मस्तिष्क का परिष्कार करे ।"[76]

महेन्द्र भटनागर की यही बात उन्हें भाग्यवाद-नियतिवाद से दूर रखती है। कवि के लिए मानवता-बोध ही मनुष्य-धर्म है । व्यक्ति को यदि स्वयं का कर्तव्य समझ में जाये तो वह कभी निराश होकर नियति पर विश्वास नहीं करेगा ।

'तारों के गीत' का कवि भाग्य पर भरोसा करके हाथ पर हाथ धरे बैठने के बजाय 'जलते रहो' का संदेश देता है । वह निराश न होकर संघर्ष करने का स्वर प्रकट करता है :

"जलते रहो, जलते रहो !
चाहे पवन धीरे चले,
चाहे पवन जल्दी चले
आँधी चले, झंझा मिलें,
तूफान के धक्के मिलें,
तिल भर जगह से बिन हिले
जलते रहो, जलते रहो !"[77]

कवि महेन्द्र भटनागर रचना की श्रेष्ठता जनहित में मानते हैं । "संघर्षो की ज्वाला में जलने और बीहड़ पथ पर चलने का उसका उद्देश्य लोक-कल्याणकारी है । उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि जन-मानस को उद्वेलित करता है ।" उसके लिए कारा-गृह जाना 'शांति-सदन' जाने के समान है । वह निराश होने के बजाय संघर्ष द्वारा लक्ष्य प्राप्त करने को प्रेरित करता है :

संघर्षो की ज्वाला में जलो, जलो !

कवि समय की चोट को सकारात्मक ग्रहण करता है । जीवन में जो घटित होता है वह मिथ्या नहीं है । आशा की एक किरण जो रोशनी की ओर ले जाती है; उसे कवि छोड़ना नहीं चाहता । नियति से वह सुख नहीं; दुःख लड़ने का साहस माँगता है -

अँधेरा दो
पराजय का अँधेरा दो
निराशा का सघन-गहरा अँधेरा दो
पर
विजय की आश मत छीनो
सुबह की साँस मत छीनो !

कभी-कभी कवि की आस्था द्विवेदी-युगीन उपदेशात्मक और प्रबोधात्मक शैली में भी व्यक्त हुई है । जैसे :

रे हत् हृदय

टूटना मत

विपद घोर घन चोट सहना ।

दहकती दुखों की प्रबल भट्ठियों में

सतत मूक दहना ।

या

हिम्मत न हारो !

कंटकों के बीच मन-पाटल खिलेगा एक दिन,

हिम्मत न हारो !   (हिम्मत न हारो)[78]

यहाँ कवि आशावादी है; वह भाग्य के अधीन न होने और हिम्मत रखने का संदेश देता है । तभी एक दिन व्यक्ति का स्वप्न पूर्ण होगा । यथा :

"दिन पर दिन होता साकार हमारा सपना,

सार्थक होगा निश्चय युग-ज्वाला में तपना !"[79]

उपलब्धि का यह अहसास उस अदम्य उत्साह और अखण्ड पौरूष बल से जन्म लेता है जो भावी को मन-चाहा आकार देने में समर्थ है । वर्चस्वी, धरा-पुत्रों में आज उसी शक्ति के अक्षय-स्रोत के दर्शन हो रहे हैं । भवितव्य के अश्वों की वल्गा थामे ये पृथ्वी-पुत्र उन्हें चाहे जिस दिशा में मोड़ने में समर्थ हैं और उनका दावा है :

"ओ नियति के स्थिर ग्रहो !

श्रम-भाव-तेजोहप्त

हम

अक्षय तुम्हारी ज्योति

ग्रसकर आज छोड़ेंगे ।"[80]

व्यक्ति विश्वास और संघर्ष से नियति की जड़ता को बदल सकता है। क्योंकि वह जानता है कि :

"सिर उठा

फैला भुजाएँ

जब गगन में झूमता है वह

अमंगल, नाश का विश्वास सारा

टूटता है

सृष्टि की जीवन-विरोधी भावनाओं का

उमड़ता वेग

धीरज छूटता है।"[81]

सदियों से नियतिवाद के कुचक्र में फँसे मनुष्य की मुक्ति का आह्वान करता हुआ कवि कहता है :

विश्व जन-समुदाय को

हम

मुक्त दोहन से करेंगे

न्याय आधारित

व्यवस्था के लिए

प्रतिबद्ध हैं हम,

त्रस्त दुनिया को

बदलने के लिए

सन्नद्ध है हम।"[82]

आधुनिकता के फलस्वरूप व्यक्ति का जीवन बदलता गया है। आधुनिक युग का दलित-पीड़ित व्यक्ति भी भाग्य या नियति से संचालित न होकर; अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गया है। यथा :

"व्यवस्था को निरन्तर

और अन्तिम साँस तक

दलित देगा चुनौती

याद रखो -

तड़पती घायल

लहू-मुख चीखती

जनता नहीं सोती ।"[83]

हर निराशा में कवि आशा की किरण को ढूँढता है । वह अंधकार की नींद में गर्त होना नहीं चाहता :

"कि हम बिना प्रभात के हुए

व तामसी निशा विनाश के हुए

नींद के समुद्र में

कभी न डूब पाएँगे !"[84]

महेन्द्र भटनागर की कविता आशा और उत्साह की कविता है । यह दृष्टि कवि को कर्तव्य-भावना से मिली है । प्रेयसी के रूप-जाल में फँसे रहने की स्वप्निल ज़िंदगी की निरर्थकता का अहसास दिलाकर समष्टि से एकाकार हो जाने की सार्थकता से ला जोड़ा है । कवि अपनी प्रेयसी को संबोधित करता हुआ कहता है :

"आज सपनों की नहीं मैं बात करता हूँ ?

चाँद-सी तुमको समझकर

अब न रह-रह कर

विरह में आह भरता हूँ

नहीं है रुग्ण मन के प्यार का उन्माद बाक़ी,

अब न आँखों में

तुम्हारी झिलमिलाती रूप की झाँकी ।
कि मैंने आज
जीवित सत्य की तस्वीर देखी है,
जगत की
ज़िन्दगी की
एक व्याकुल दर्द की
तस्वीर देखी है !"[85]

कवि का 'जीवित सत्य' है - परिश्रम करना । विश्वास भरे शब्दों में वह कहता है :

मैं नहीं दुर्भाग्य के सम्मुख झुकूंगा
आज जीवन में हुआ असफल भले ही ![86]

कवि अपनी आन्तरिक दुर्बलता को त्राण देता है :

जिए यदि किसी की दया माँग
तो क्या जिए ?
कभी भूल चिंता करूँगा न
अपने लिए !

यह भी कहता है :

हँसूगा व जीवित रहूँगा
सफलता बिना
निखरता मनुज का न जीवन
विफलता बिना !

भाग्यवाद को कवि स्वीकार नहीं करता । वह दुभाग्य हुए लोगों को परिश्रम की याद दिलाकर उन्हें संघर्ष से जूझने के योग्य बनाना चाहता है । क्योंकि इन्सान की मुक्ति भाग्यवाद में नहीं बल्कि परिश्रम में है ।

भाग्य से

अथवा जगत से

हर प्रताड़ित व्यक्ति को

आजन्म संचित स्नेह मेरा

है समर्पित ! ('आस्था का उपहार')

जीवन-वास्तविकता व्यक्ति को अंततः स्वीकारनी पड़ती है । वास्तविक जगत कठोर, दर्द, संघर्ष से भरा होता है। अतः सपनों की दुनिया में उचित नहीं । ख्वाबों को हक़ीकत में बदलने के लिए भी परिश्रम आवश्यक है । कवि कहता है :

"सपने देखना, मानो -

जीवन की निशानी है,

यम की पराजय की कहानी है ।" ('आदमी और स्वप्न')

कवि यहाँ संघर्ष चेतना का स्पष्ट संकेत करता है । वह भाग्यवाद को नकार देता है । "निश्चय ही कवि जीवट का कवि है । जिजीविषा, आस्था और क्रांति दर्शन का कवि है । समाज की तमाम जड़ता के ख़िलाफ़ चेतनामय आलोक की वर्षा महेन्द्र भटनागर की कविताओं में बराबर होती रहती है ।"[87]

व्यक्ति जब अकेला हो जाता है, तब उसे कोई दिशा नहीं सूझती वह निराश हो जाता है । किन्तु कवि महेन्द्र भटनागर का कवि जीवन के एकाकीपन में भी निराश होकर किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होता । वह अपने अंतर मन में 'नव-संचित बल' की कामना करता है, जिससे वह नियति से मिली निराशा का छेदन कर सके । यथा :

छाया सघन अँधेरा पथ पर

लगता एकाकीपन दूभर

झंझा के उन्मत्त प्रहारों से

होता प्रखर विध्वंसक स्वर

नव बल संचित हो प्राणों में

संघर्ष प्रकृति से नया-नया ![88]

संघर्ष की घड़ी में कवि स्वयं परिश्रम से आगे बढ़ता है । यदि कोई दया-भाव से उसके प्रति सहानुभूति जताना चाहता है तो इस पर कवि आपत्ति करता है :

अनजाने में, तुमने क्यों
मेरे सारे दुख्र छीन लिए ?
तुमने क्यों काँटे बीन लिए ?[89]

दूसरों के सहारे कवि अपना सफ़र तय करना नहीं चाहता । क्योंकि इससे व्यक्ति कमज़ोर बनाता है :

"आधे पथ तुम ले जाओगी
क्या तुमने सोचा था मन में
अंतिम मंज़िल में, ले जाता
निर्जन वन के सूनेपन में

कवि को भाग्य पर नहीं कर्म पर विश्वास है :

मैं बुझते दीपक का न कभी
धूमिल नीरव उच्छ्वास बना
जीवन के कितने ही भ्रम में,
भूला न कभी अपने क्रम में
x x x x x
मैं अपना ख्रुद पतवार बना,
मैं अपना ख्रुद आधार बना,
निज की निर्भरता पर रख्रता
अविचल जीवित विश्वास घना !"[90]

कवि भाग्य के अधीन जीवन स्वीकार नहीं है :

दीपक की लौ उकसाकर
पूजा के सामान जुटाकर
वरदान अमरता का प्रतिपल

मत माँगों जड़ पाहन से

गा-गा अगणित वंदन के स्वर !

पत्थर की मूर्ति के सम्मुख प्रार्थना करके अपने सौभाग्य की भीख माँगने वालों को कवि पागल कहता है :

इतना भी रे क्या पागलपन,

इतनी भी क्या यह मौन लगन

अर्पित करके मृत-पुतलों को

तन-मन-धन जीवन-सुख, वैभव

दुनिया के किस आकर्षण पर ?[91]

कवि इसे मानव-धर्म के विरुद्ध समझता है :

'यह मानवता का धर्म नहीं

यह मानवता का मर्म नहीं ।'[92]

भाग्य को परिश्रम से बदलना ही सच्चा धर्म है :

'जीवन जब है एक समस्या

कर्मों का ही नाम तपस्या,

प्राणों के अंतिम पल तक

जग में जमकर संघर्ष करो

बहता जाए जीवन-निर्झर !

जीवन में तुमको होना है

श्रमशील अथक उन्मुक्त निड़र !'[93]

कवि कहता है कि परिणाम की परवाह किए बिना परिश्रम करें तो प्रत्येक कार्य का फल अनुकूल प्राप्त कर सकते हैं :

परिणामों की परवाह न, हम तो कर्मों में तत्पर,

पल-पल का उपयोग यहाँ खोने पाये कब अवसर ?[94]

कवि अपने जीवन को परिश्रम के आधार पर निर्मित करना चाहता है। जीवन में आने वाले प्रत्येक संकट का वह सामना करना चाहता है, बिना किसी के सहारे :

'संघर्षों में मिटने देना पर, दान नहीं देना मुझको

अभिशाप भले ही दे दो पर वरदान नहीं देना मुझको ।'

व्यक्ति का जीवन सुख-दुःख से परिपूर्ण है । किन्तु कवि विपरीत परिस्थितियों से घबराता नहीं; बल्कि संघर्ष में डटे रहना चाहता है :

"सुख-दुख तो मानव-जीवन में बारी-बारी से आते हैं ।"[95]

भाग्यवाद का विरोध करके, कर्म को महत्व देते हुए, कवि अपने जीवन-रथ को आगे बढ़ाता है :

भाग्य अधीन नहीं हो किंचित

विस्तृत भावी का पथ

संघर्षों में ही बढ़े अथक

प्रतिपल जीवन का रथ ।

कवि कर्म-रथ पर सवार है । उसे विश्वास है कि वह अपना जीवन-रथ-संघर्ष-पथ पर आगे बढ़ा सकेगा । भाग्य के सहारे वह जीना नहीं चाहता । उसकी गति को तथाकथित पूर्व-निर्धारित नियति नहीं रोक सकती है :

पर, रोक नहीं सकती मेरी गति को कोई भी लाचारी

ध्येय पहुँचने की तैयारी ।[96]

असफल रहने पर वह संघर्ष-विमुख नहीं होता । उसमें संघर्ष के सामने त्राण करने ज्वालाओं का भीषण ताप है । 'साधना' कविता कवि की नियतिवाद के विरुद्ध चुनौती है :

मत समझो मुझमें ज्वालाओं का भीषण विस्फोट नहीं है,

तूफ़ानों के बीच भँवर में आँचल तक की ओट नहीं है,

मत समझो, अगणित उच्छ्वासों का भी मूल्य नहीं कुछ मेरा

कौन जानता ? इस अंतर में असफलता की चोट नहीं है,

दुर्गम-बीहड़ जीवन-पथ के कंटक दलना सीख रहा हूँ !

आशा में घोर निराशा को आज बदलना सीख रहा हूँ ![97]

कवि हर क़दम पर चुनौती का सामना करता है । वह स्वयं अपनी परीक्षा लेता है :

'मुझको अपने उर साहस की आज परीक्षा ले लेने दो !'[98]

कवि जीवन में 'मिटता'[99] 'खिलता'[100] गया है । तब कहीं जाकर उसे सफलता प्राप्त हुई है :

आज जीवन में सफलता की मुझे आहट मिली है !

उठ रही हैं मुक्त लहरें,

भाव रोदन के न ठहरें,

पास यह गन्तव्य आया

हार का बंदी नहीं, जीत मुझसे आ हिली है ![101]

निराशा के क्षण में आशा की किरण उसे नवजीवन प्रदान करती है । बड़ी मेहनत से उसे जीवन-नैया की रक्षा करने के लिए पतवार हाथ लगी है । वह पतवार उसका सम्बल है :

सिंधु करता जब गरज अट्टहास,

नाचती थी मृत्यु आकर पास,

आँधियों की गोद में जब हो रहा था -

अब गिरा हा ! अब गिरा, तब

हाथ में दृढ़ आ गयी पतवार ![102]

कवि कहता है कि व्यक्ति यदि भाग्य के भरोसे न बैठे कर; कर्म करे तो संसार में से सारे दुख-दर्द दूर हो जाएँ :

जागे सोया मानव-जीवन

बदले जग का जीवन-दर्शन,

निर्धनता व्यथा मिटे सारी,

हो नवल विश्व, नूतन जन-मन,

मिट जाए सपनों की दुनिया,

लहराए जागृति का सागर ![103]

विषम परिस्थितियों में भी कवि अपनी कर्तव्य-भावना से हटना नहीं चाहता । वह आशावादी और परिश्रम का कवि है । अपनी जीवन-सहचरी से वह पूछता है कि क्या तुम मेरा साथ दोगी ? :

जीवन की मूक पराजय में

घुट-घुट कर जब घुलना होगा,

क्या उस धुँधले क्षण में तुम

भी बोलो, मेरा साथ न दोगी ?[104]

'जीवन-धारा' का कवि जीवन में आनेवाली निराशा से विचलित नहीं होता; बल्कि उससे संघर्ष करना सीखाता है :

जीवन द्रोह अभिनव गीत

सुनकर मत बनो भयभीत

यह अरोहमय नूतन सृजन-संगीत !

जड़वत्

x x x x

लघु-लघु रूप का परिणाम

जीवन-द्रोह का झरना नहीं है ![105]

कवि महेन्द्र भटनागर भाग्यवाद का विरोधी है । उसके पास नियति के भरोसे बैठे रहने के लिए अवकाश नहीं है :

हमको कहाँ अवकाश है ?

वह कहता है कि लक्ष्य के लिए वह शूल और धूल से होकर गुजरा है :

हमने न देखे शूल भी,
हमने न देखी धूल भी,
हमने न देखे राह के
हँसते हुए मधु फूल भी,
हमने न जाना प्यार क्या औ' मोह का क्या पाश है ।
हमको कहाँ अवकाश है ?
हम हैं नहीं जो कल रहे,
हम चाल अपनी चल रहे,
क्या हार में, क्या जीत में
हम एक-से प्रतिपल रहे,
दुनिया बदलने के लिए अभिनव अटल विश्वास है
हमको कहाँ अवकाश है ?[106]

कवि महेन्द्र भटनागर परिवर्तन के आकांक्षी हैं,

परिवर्तन का आकांक्षी हूँ, मन्थन कर सकता सागर का,
वह भीषण आँधी हूँ जिससे कँपता वक्षस्थल अम्बर का,
मैं नवयुग का अग्रदूत हूँ, नयी व्यवस्था का निर्माता,
मैं नवजीवन का गायक हूँ साधक अभिनव प्राणद स्वर का

और इसी परिवर्तन के लिए क्रांति पथ पर चल पड़ा है :

क्रांति-पथ पर बढ़ रहा हूँ द्रोह की ज्वाला जगाने !
आज जीवन के सभी मैं तोड़ दूँगा लोह-बंधन ।[107]

लोहबंधन तोड़ने कवि निरंतर जलता है । उसकी आहें निराशा की नहीं; बल्कि दावानल की है जो सभी तमस को मिटा देंगी :

इनमें ज्वाला जलती अविरल,
इनमें तूफ़ानों सी हलचल
ये विप्लव करने को चंचल,
मेरी आहें, मेरी आहें ![108]

तूफ़ान की तरह आगे बढ़ता हुआ कवि बंधन तोड़ने को तत्पर है । वह रुकना नहीं जानता :

कर्म का उत्साह-निर्झर

आज उमड़ा जा रहा है !

आज मैं आगे बढ़ूँगा,

आपदाओं से लड़ूँगा,

राह की दुर्गम सभी

ऊँचाइयों पर जा चढ़ूँगा ![109]

आधुनिक युग के युवा भाग्य व नियति पर विश्वास करके बैठे नहीं रहते। कवि ने इस भावना को अपनी कविता में शब्दबद्ध किया है :

दुनिया के अगणित मुक्त-तरुण

बंधन की कड़ियाँ तोड़ रहे ![110]

कवि दलित-पीड़ित मानवता का पक्षधर है । सदियों से पीड़ित नारी की नियति को भी कवि ने चित्रित किया है । स्त्री जो शोषण का पात्र बनती थी, भाग्य के नाम पर सब अत्याचार सह लेती थी; आज आधुनिक चेतना से जाग्रत होकर समस्त बंधन तोड़ने के लिए कटिबद्ध है । कवि उसे उत्साहित करता हुआ कहता है - जगत के नव-युवा तुम्हारे साथ हैं; तुम अपने बंधन तोड़ो । यथा :

है साथी जग का नव-यौवन,

बदलो सब प्राचीन व्यवस्था

वर्ग-भेद के बंधन सारे

तुम आज मिटाने को आयीं ![111]

कवि भाग्यवाद के विरुद्ध कर्म की नव-प्रेरणा जगाना चाहता है

"नव-प्रेरणा का ज्वार ऐसा

जन-समुन्दर में बहेगा जब

तभी यह क्रांति का इतिहास

निर्मित हो सकेगा !"[112]

कवि भाग्यवाद को जड़ से मिटा देना चाहता है । वह नियति के लिखे को बदलने के लिए कहता है :

'तुम आँधी बन बढ़ते जाओ,

साहस से, उन्मुक्त-निडर ।'[113]

आगामी सदियों में कोई भाग्यवाद के भरोसे निष्क्रिय न बैठा रहे; इसलिए वह संघर्ष से नियति को निष्प्रभावी कर देना चाहता है :

आगामी सदियाँ समझेंगी उसको निज प्राणों की थाती,[114]

कवि के पास अटल विश्वास है :

'पास में विश्वास है

सृष्टि में मधुमास है ।'[115]

विश्वास हो तो परिवर्तन की अपेक्षा करना सार्थक है । यह विश्वास कवि के पास है :

परिवर्तन हो !

नव-जीवन हो !

जग के कण-कण में

जागृति का नव कंपन हो ![116]

नवजागृति का इच्छुक कवि जब निष्काम भाव से कर्म-रत होता है तब उसे कुछ भी प्रतिकूल नहीं दीखता :

छिप चुके कटु शूल हैं,

खिल रहे मधु फूल है,

कौन जो प्रतिकूल है ?[117]

कवि प्रगति और परिवर्तन का आकांक्षी रहा है और सम्पूर्ण जगत से ऐसी अपेक्षा रखता है :

युग-युग के बाद उठे फिर से
उर-सागर में लहरे सुख की,
स्रोत बहे जीवन का निर्मल !
जन-जन-मन
संसार सुखी हो !
आये मधु-क्षण ।[118]

कवि निराशा, हताशा के बदले साहस, प्रगति, नव-चेतना के गीत गाना चाहता है । जिससे समाज भयभीत न हो :

मानव हो न किञ्चित देखकर तू
काल के निर्दय भयंकर रुप से भयभीत ![119]

कवि महेन्द्र भटनागर प्रेमचंद के साहित्य व विचारों से प्रभावित हैं । प्रेमचंद ने हिन्दी साहित्य में अपनी एक मिसाल क़ायम की । कवि प्रेमचंद के कर्मशील व्यक्तित्व का उदाहरण देकर कहते हैं कि क्या ऐसे युग-पुरुष के प्रभावक विचारों को काल मिटा सकेगा ? यथा :

ओ अमर साधक !
सतत चिंतित रहे तुम
स्वर्ग धरती को बनाने !
अभय सामाजिक सुधारक,
युग-पुरुष !
तुमको तुम्हारी ज्योति को
क्या ढक सकेंगी काल-रेखाएँ ?
x x x x
तुम प्रगति-पथ की
नयी ज्योतित दिशा का
मार्गदर्शन कर रहे हो ![120]

आधुनिक भारत के कर्णधार गांधी को पूरा विश्व आदर करता है । सत्य-अहिंसा के पुजारी भारत भाग्य-विधाता महात्मा गांधी से कवि महेन्द्र भटनागर भी प्रभावित हैं । कवि जब-जब निराशा के गर्त में गया है, तब-तब उसने इस महात्मा के जीवन से प्रेरणा ग्रहण की है :

घिरे निराशा के घन में तुमने,
भर दी तड़ित-चमक-सी आश ![121]

पथहीन जगत को सही कर्मशीलता की राह गांधी ने बतायी । कवि यह बात स्वीकृत करता है :

तुमने बुझते
युग-मानव के उर-दीपक में
निज जीवन का संचित स्नेह ढाल
अभिनव ज्योति जगायी है ।[122]

कवि गांधी की राह पर कर्म करता हुआ आगे बढता गया है । फलस्वरूप वह अनेक मुसीबतो उबर सका है :

आज हमारी श्वासों में जीवित है गांधी,
तम के परदे पर मन के ज्योतित है गांधी,
जिससे टकराकर हारी पशुता की आँधी ![123]

अंग्रेजों के शासन काल में देश को कई अकालों का सामना करना पड़ा । विवश हो विदेश से अन्न आयात करना पडता था । कवि इस लाचारी को सह नहीं सकता । पृथ्वी-पुत्रों को वह खेती करने का आह्वान करता है :

'उठाओ हल, चलाओ हल ।'[124]

कवि प्रत्येक व्यक्ति की सोयी चेतना को जगाता कहता है :

महेनतकश उठो !
बलवान हो तुम,
हल चलाकर ही
उगा सकते हो तुम सोना ।[125]

खेतो में हल चला कर पीड़न और अत्याचार को मिटाया जा सकता है :

'ज़माने को बदलने के लिए !

पीड़न और अत्याचार का साम्राज्य

धरती पर सुलाने के लिए

संगठित हैं हम !'[126]

'तारों के गीत' का कवि 'अभियान' में पराधीनता व भाग्य के विरुद्ध अभियान छेड़ता हुआ कहता है :

अभियान करो !

अभियान करो !

हिम्मत से दृढ़ व्यूह रचो

गतिरोधी ताक़त से

न डरो,

न डरो !

अभियान करो,

अभियान करो !

'बदलता युग' में कवि ने विश्वास की मज़बूत दिवार निर्मित की है :

गिर नहीं सकती कभी -

विश्वास की दीवार ।[127]

यहाँ वह जीवन-धारा बदलने के लिए आह्वान करता है :

सदियों के बंधन मिटाते चलो तुम,

तम के ये परदे हटाते चलो तुम,

अवरुद्ध राहों के पत्थर सभी ये

निर्झर सदृश सब उडाते चलो तुम ![128]

कवि नियति की विवशता को जड़ से निकाल देना चाहता है :

आज धड़कन, आज कंपन हो बुभुक्षित के उरों में ![129]

कवि भाग्यवाद के विरुद्ध मोर्चा सँभाले खड़ा हुआ है :

लेंगे छीन आज़ादी कि हममें शक्ति है इतनी,

लो प्रतिशोध युग-युग का कि ज़ुल्मों की कथा कितनी ![130]

सिपाही का सरदार बनकर आदेश देता कवि कहता है :

सिपाही छोड़ दो आलस, कहीं दुश्मन न खा जाये

नहीं अब नींद के झोंके, बुरी हालत न आ जाये ।[131]

कवि महेन्द्र भटनागर देश के नागरिकों को अपनी संस्कृति की याद दिलाता हुआ कर्मरत रहने के लिए प्रेरित करता है :

तुम्हें क़सम है चाँद की, तुम्हें क़सम है पाकतम कुरान की,

तुम्हें क़सम ज़मीन की, तुम्हें क़सम है आसमान की ।[132]

भाग्य के सहारे बैठे रहने से कुछ प्राप्त नहीं होता । माखनलाल चतुर्वेदी ने 'कैदी और कोकिला' कविता में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए अंग्रेजों से भारतीय सेनानियों को वीरतापूर्ण लड़ने के लिए प्रेरित किया है । कवि का यह भी विश्वास है कि केवल गांधीवादी सिद्धांतों को अपनाने से स्वाधीनता नहीं मिल सकती; इसके लिए रक्त का बलिदान करना ही होगा । इसलिए उसने बार-बार आह्वान किया है -

मसलकर अपने इरादों सी उठाकर

दो हथेली है कि पृथ्वी गोल करदे ।

रक्त है या है नसों में क्षुद्र पानी

जाँच कर, तू सीस देकर जवानी ।।"[133]

कवि महेन्द्र अपने सिपाही को सचेत करता यही बात करता है :

"सिपाही छोड़ दो आलस, कहीं दुश्मन न खा जाये

नहीं अब नींद के झोंके, बुरी हालत न आ जाये ।"[134]

भाग्यवाद के विरुद्ध अनेक कवियों ने मानव-धर्म का मर्म प्रस्तुत किया है । छायावाद युग के प्रमुख स्तम्भ पं. सुमित्रानंदन पंत की निरंतर विकसित-परिवर्तित होती हुई काव्य-चेतना की भाँति नरेन्द्र शर्मा की रचनाओं में भी नित्य नवीनता का स्वर सुनाई देता है :

जागो पहचानो अपने को,
मानव हो समझो निज गौरव ।
अन्तस्तल की आँखें खोलो,
देखो निज अतुलित बल-वैभव ।"[135]

यही बात महेन्द्र भटनागर इन शब्दों में करते है :

महान हिंद की महानता बनी रहे !
उदार हिंद की उदारता बनी रहे !
सभी दिलों की चाह जो
वही सतत किये चलो !
महान ध्येय के निमित्त तुम
जलो, जलो, जलो !

"डॉ. महेन्द्र भटनागर की रचनाओं में यह प्रगति-दर्शन ही एक सर्वांगीण स्वातंत्र्य दर्शन के रूप में विकसित हुआ है ।"[136] 'युग-विहग' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं - 'विश्व को संदेश नूतन मुक्ति का दे, तुम बढ़ोगे।'[137] कवि का नूतन मुक्ति संदेश नियति के विरूद्ध कर्मभावना है । 'परिचय' शीर्षक कविता में उन्होंने स्वयं को 'शक्ति का संचार' और 'मुक्ति की पतवार' कहा है ।"[138] डॉ. महेन्द्र भटनागर सतत साधना और संघर्ष में ही जीवन की सार्थकता मानते हैं । उनका आत्मविश्वास ही उनके स्वावलंबन का अजस्त्र स्रोत है, जिसके बल पर वे किसी बाह्य सहायता को स्वीकार नहीं करते -

'गिर-गिर चलने देना मुझको, क्षणभर भी आधार न देना ।'[139]

'सहारा' कविता में वे किसी सहारे की लालसा त्याग कर एकाकी

संघर्षरत रहने का संकल्प करते हैं और साधना-क्रम में विफलता को भी वरेण्य मानते हुए कहते हैं - 'निखरता मनुज का न जीवन विफलता बिना ।'[140] महादेवी वर्मा स्रप्त एकांत मन में इच्छा की लहर जगा देना चाहती हैं । इच्छा की यह लहर की नियति के विरुद्ध विद्रोह है । यथा :

"इच्छाओं की कम्पन से
सोता एकांत जगादो,
आशा की मुस्कराहट पर
मेरा नैराश्य लुटा दो ।"[141]

तो कवि 'अज्ञेय मुक्ति' शीर्षक कविता में कहते हैं :

दान कर दो खुले कर से, खुले कर से होम कर दो
स्वयं को समिधा बनाकर -[142]

'अप्रतिहत' कविता में डॉ. महेन्द्र भटनागर दुर्भाग्य और असफलता को साधना-क्रम का स्वाभाविक आयाम मानते हुए कहते हैं -

मैं नहीं दुर्भाग्य के सम्मुख झुकूँगा,
आज जीवन में हुआ असफल भले ही ।[143]

महेन्द्र भटनागर ज्योति के कवि हैं । जिस तरह कवि केदारनाथ सिंह 'दीप-दान'[144] से हर अँधेरे को रोशनी से भर देना चाहते हैं, वैसे ही महेन्द्र भटनागर कहते हैं :

कह दो अब अँधेरे से प्रभा का राज है,
हर दीप के सिर पर सुशोभित ताज है !

कवि महेन्द्र भटनागर का दीप प्रतिकूल परिस्थितियों में अकेले ही प्रज्वलित रहने में अपनी साधना की सार्थकता समझता है । वास्तव में कवि अपने भाग्य को स्वयं बनाने में विश्वास रखता है ।

"उद्देश्यमूलकता साहित्य का एक अनिवार्य गुण है । संसार के किसी भी देश का साहित्य ऐसा नहीं है जिसका कुछ-न-कुछ उद्देश्य न रहा हो । हम

अपने ही देश के हिन्दी-साहित्य को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर सकते हैं । आदिकाल से लेकर अब तक का समस्त हिन्दी-साहित्य किसी न किसी उद्देश्य को लेकर ही चला है । वीरगाथा काल में "राज्याश्रित कवि अपने राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन अनूठी उक्तियों के साथ किया करते थे और अपनी वीरोल्लास भरी कविताओं से वीरों को उत्साहित किया करते थे ।"[145] समस्त कृष्ण-काव्य एक साम्प्रदायिक काव्य है, जो वल्लभ-संप्रदाय की विशिष्ट धारणाओं से प्रभावित है । "सूरदास ने श्री वल्लभाचार्य द्वारा प्रचारित पुष्टिमार्ग की भक्ति-भावना को स्पष्ट करने के लिए ही अपने अधिकांश पदों की रचना की है ।"[146] "रामभक्ति का प्रचार तुलसीदास की रचनाओं द्वारा चिरस्थायी जीवन और साहित्य का एक अंग बन गया ।"[147]

"जीवन मूलतः क्रियात्मक है और क्रियात्मक जीवन से ही मनुष्य के मन में नाना भाव-भावना और अनुभूतियों की उत्पत्ति होती है और समाज-मानस तथा व्यक्ति-मानस में रागात्मक जीवन की सृष्टि होती है । मानवीय क्रिया मात्र उद्देश्यमूलक है और इन उद्देश्यमूलक क्रियाओं के साथ विभिन्न देश-काल में विभिन्न प्रकार की राग-विरागात्मक अनुभूति भी होती है । अगर साहित्य मनुष्य के इस रागात्मक जीवन का प्रतिफलन हो तो उस साहित्य में रागात्मक जीवन की अन्तर्निहित उद्देश्यमूलकता की अभिव्यक्ति भी अवश्य ही होगी । हमारे जीवन में जो भाव और अनुभूतियाँ अत्यंत अगंभीर हैं उनके पीछे जो उद्देश्य है वे भी वैसे ही गंभीर और क्षीण होंगे । किन्तु जो उद्देश्य अर्थात् जीवनादर्श हमारी सत्ता की गहराई से उद्भूत है, उनके साथ संबंधित भाव और अनुभूतियाँ भी वैसे ही गहरी प्रबल आवेगयुक्त होने को बाध्य हैं । इसलिए गंभीर और विराट जीवनादर्श को वर्जित कर भी गंभीर और हृदयालोड़नकारी साहित्य की सृष्टि नहीं हो सकती । दुनिया में जो साहित्यिक कृतियाँ आज भी श्रेष्ठ मानी जाती हैं, उनकी परीक्षा करने पर हमें सर्वत्र साहित्य की इस उद्देश्यमूलकता का परिचय प्राप्त हो सकता है ।"[148]

"काव्य और कला का प्रमुख ध्येय मनोरंजन और आनन्द माना जाता रहा है । काव्य से मनोरंजन होता है, उसके मनन से आनन्द मिलता है, इसमें संदेह नहीं । इसकी आनन्ददायिनी शक्ति के कारण ही काव्य को ब्रह्मास्वाद-सहोदर भी कहा गया है ।"[149]

"कवि या कलाकार कविता या कलाकृति की रचना करते समय, कोई निश्चित प्रचारवादी या उपदेशात्मक उद्देश्य को लेकर नहीं बैठता । उसकी प्रतिभा के स्वच्छन्द प्रस्फुटन के लिए प्रयोजन या उद्देश्य का कोई बंधन या सीमाएँ नहीं होनी चाहिए, अन्यथा उसका पूर्ण विकास न हो सकेगा । कवि या कलाकार का प्रमुख उद्देश्य काव्य या कला की सृष्टि ही है ।"[150]

"कवि या कलाकार की दृष्टि से कला के लिए है, यह मत मानते हुए भी पाठक या श्रोता की दृष्टि से दूसरे प्रयोजन स्वतः आ जाते हैं । जब कोई रचना का पाठ करता है या कलाकृति का अवलोकन करता है तो उसे आनन्द प्राप्त होता है । हो सकता है कि उससे उसे जीवन में कोई प्रेरणा भी प्राप्त हो, कोई शिक्षा मिले अथवा थोड़ी देर के लिए वह चिन्ताग्रस्त परिस्थितियों से निकलकर कलाकार के काल्पनिक संसार में विचरण करने लगे। ऐसी दशा में जिसे कलाकार ने केवल कला के दृष्टिकोण से रचा है, वही पाठक के लिए अनेक प्रयोजनों से युक्त हो जाती है ।"[151]

कवि महेन्द्र भटनागर अपनी कविता के लक्ष्य के प्रति सजग हैं । क्योंकि "पाठक जब कविता को आत्मसात् ही नहीं कर पाएगा, तब उसके प्रति आकर्षित कैसे हो सकेगा ? जब कुछ कहना होता है तब कविता, कला और शिल्प के नाना रंग-बिरंगे परिधानों में सज-सँवर कर, स्वतः आकार ग्रहण करने लगती है ।"

"कविता सौन्दर्य-बोध जाग्रत करने, हृदय और मस्तिष्क का परिष्कार करने, मनुष्य को आस्थावान व आशावादी तथा संघर्ष-साहसिक बनाने के लिए है ।..... आज समकालीनता का तकाज़ा है कि वर्ग-भेद मिटाया जाये, अमीरी-गरीबी का अन्तर दूर किया जाये, मानव संवेदना व विचारणा को अन्तर-राष्ट्रीय व्यापक क्षितिज प्रदान किया जाये, तथा शांति और प्रेम को मानवीय सभ्यता का अपरिहार्य मूल्य माना जाये ।"[152]

किसी भी बडे साहित्यकार की विशेषता होती है कि वह प्रत्येक घटना, वस्तु या चित्र को अपने ढंग से देखता है । सामान्य वस्तु में भी साहित्यकार सौन्दर्य की बरसात करता है ।

महेन्द्र भटनागर प्रयोगवाद की चौंकानेवाली प्रवृत्ति से बहुत दूर हैं । वे हमारे समक्ष अपनी कविताओं में जातीय सांस्कृतिक-बोध का संश्लिष्ट-स्वरुप

प्रस्तुत करते है । आनन्द की प्रक्रिया और रसास्वादन के सुखद अनुभव को अधूरा छोड़ना नहीं चाहते - इसीलिए वह कहते हैं :

जीवन दिया है

तो

लेने दो

हर फूल की मधु गंध,

जीवन दिया है

तो सोने दो

हर लता के अंक में निर्बन्ध ![153]

'तारे और नभ' का कवि अंधकारभरी रात्रि में झिल-मिलाते तारों पर अभिमान करता है । क्योंकि चारों तरफ़ अंधकार है, तारे ही सौन्दर्य की चमक हैं । यथा :

"नव-मोती-सी छवि को लख कर

अपने उर का श्रृंगार किया ।"[154]

कवि महेन्द्र भटनागर 'तारों के गीत' में 'नश्वर तारक' कविता में सौन्दर्य के साथ जीवन की कर्तव्यनिष्ठा के दर्शन भी कराते हैं । कवि 'तारे' की तरह अंतिम चमक तक अपना तेज विकीर्ण करने के लिए कहता है ।

जलते जाएगे हँसमुख जब

तक शेष चमक, साँसे धड़कन,

कर्तव्य-विमुख जाना है कब,

चाहे घेरें जग-आकर्षण ?[155]

कवि 'नृत्त' कविता में तारों का नृत्य सबसे श्रेष्ठ बताता है । सच्चा सौन्दर्य कवि को तारों के नृत्य में दिखता है । वास्तविक स्थिति का सही आकलन ही कवि का धर्म है, जो कवि ने 'युगकवि' कविता में स्पष्ट किया है । यथा :

झूठ, मिथ्या-कल्पनाओं का नहीं है अब ठिकाना

मिट चुकी है पूर्ण जड़ से, अब न उनका है बहाना

टिक सकीं बातें अरे क्या, खोखली जो सब तरफ़ से

आज कण-कण ढह चुका है, कौन जो उनको उठाता ?

विश्व के उस पार की, कवि कौन है जो आज गाता ?[156]

'भिखारिन' कविता में कवि ने भिखारिन का जो शब्दचित्र अंक्ति किया बनाया है वहाँ कुरूपता में भी सौन्दर्य की लाली खिल पड़ी है । यथा :

करुणा की प्रतिमा-सी युवती चुपचाप खड़ी थी मुख खोले

जिस पर थीं भय की रेखाएँ, सोच रही थी वह क्या बोले !

कवि महेन्द्र भटनागर ने यह स्वीकार किया है कि किसी 'वाद' से बँधकर उन्होंने कविता का सृजन नहीं किया । फिर भी उनके विचार मार्क्सवाद से मिलते हैं, यह संयोग है । मगर जब वे कहते हैं :

केवल

जगत नव-साम्य पथ पर

ले सकेगा साँस

सुख की साँस !

जिसमें आश नूतन ज़िन्दगी की भरी होगी,

कि जिसकी राह पर चलकर

धरा सूखी हरी होगी ![157] ('नयी दिशा')

तब वे मार्क्सवादी विचार से प्रभावित जान पड़ते हैं । कवि अपनी कविता से मनुष्य को संघर्ष करना सिखाता है :

"आँधी चले, झंझा मिले,

तूफ़ान के धक्के मिले

तिल-भर जगह से बिन हिले

जलते रहो जलते रहो ।"[158]

दुनिया में आज चारों ओर जातिवाद, क्षेत्रवाद, राष्ट्रवाद को लेकर दंगे होते हैं, जिसका कारण है सामनेवाले का ईर्षाभाव । अगर हम मान ले कि हम सब एक ही माता-पिता की संतान हैं तो यह सारा झगड़ा समाप्त हो जाये ।

"'युग-कवि' ने युग-धर्म की पुकार सुनी है, इसलिए जीर्ण पुरातन जड़-बंधनों को समाप्त करने के लिए उसने विश्व के उस पार की अनुभूतियों और कल्पित संसार को कविता के क्षेत्र से निर्वासित कर दिया है । पूर्व-युग की निस्सारता को रेखांकित करनेवाली शब्दावली भी सक्षम है - 'ईश की कल्पित कहानी', 'झूठ मिथ्या कल्पनाओं', 'खोखली बातों', 'अलंकृत रीति कवि की वाणी' इत्यादि । पूर्व युगों के आदर्शों को युग-कवि ने खारिज कर दिया है, क्योंकि उनके कण-कण ढह चुके हैं । इसलिए समकालीन कवि-कर्म का धर्म है :

तोड़ बंधन, आज जग को
मुक्ति के पथ पर चला दूँ,
हर सड़े, विश्वास मिथ्या
खोद कर जड़ से बहा दूँ,
है यही कर्तव्य मेरा,
इसलिए ही मुक्त वाणी ![159] ('अभय')

कवि युग-युग के सोये जीवन और यौवन को जगाना चाहता है । उसका काव्य-लोक 'उत्सर्ग भरे गानों' और 'प्राणों के बलिदानों' से आपूरित है । 'चपला' की-सी तड़पन और 'ज्वालागिरि' की-सी हलचल वह जन-जन में देखना चाहता है :

जागो, हे जीवन जागो !
त्रस्त-मनुज के उद्धारक, हे नवयुग के मन जागो !"[160]

पीड़ित और पददलित मानवता से कवि अटूट रूप से जुड़ा हुआ है । जन-हित उसकी दृष्टि में सबसे बड़ा जीवन-मूल्य है । इसके लिए ही उसकी

जीवन-साधना है । संघर्षों की ज्वाला में जलने और बीहड़ पथ पर चलने का उसका उद्देश्य लोक-कल्याणकारी है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह बड़े-से-बड़े त्याग और बलिदान के लिए जन-मानस को उद्धेलित करता है ।"[161] इसके लिए कारा-गृह जाना 'शांति-सदन' में जाने के समान है :

संघर्षों की ज्वाला में जलो, जलो !

बलिदान-त्यागमय जीवन हो,

कारागृह भी शांति-सदन हो,

जन हित, बीहड़ पथ पर भी चलो, चलो ![162]

कवि परंपरागत रुढ़ि को तोड़कर समाज को नई मंज़िल पर ले जाना चाहता है ।

हम नव-जीवन-पथ के राही !

नई व्यवस्था के संचालक, उन्मुक्त नवयुग के मानव[163]

प्रभात से कवि को विशेष मोह है । कवि प्रकाश-धर्मी है । 'प्रात' शीर्षक कविता में प्रभात से कवि जीवन-दृष्टि सीखता है :

पवन के साथ भरकर डग

करो पूरा असीमित मग

दिखो वरदान-से दीपित

'विहान' का कवि अपनी काव्य-रचना का उद्देश्य इन शब्दों में घोषित करता है :

गीत गाता जा रहा हूँ !
रक्त की संस्कृति मिटाने को सुनाता हूँ नये स्वर,
मैं दिशा भूले जगत को, हूँ चलाता नव डगर पर,
हर मनुज को घोर तम से रोशनी में ला रहा हूँ !
गीत गाता जा रहा हूँ ![164]

'बलिपंथी' में कवि परिणामों की परवाह किये बिना सतत कर्मरत रहने को कहता है :

परिणामों की परवाह न, हम तो कर्मों में तत्पर,

पल-पल का उपयोग यहाँ, खोने पाये कब अवसर ?[165]

कवि कहता है कि जीवन में जब दर्द आये तो आँसू मत लाना । क्योंकि आँसू से दिल की ज्वाला ठंडी पड़ जाएगी । यथा :

आँसू मत लाना, आँसू से

ज्वाला ठंडी पड़ जायेगी ।[166]

"कवि केवल प्यार के ही गीत नहीं गाता, वह संघर्षों से जूझने की प्रेरणा एवं आगे बढ़ने की लय भी देता है । वह अनवरत आग में जलते हुए मनुष्यता की रक्षा करना कर्म और धर्म के रूप में स्वीकार करता है ।"[167]

"प्रगतिवाद का प्रारंभ ही अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध हुआ था । साम्यवादी व्यवस्था का लक्ष्य लेकर मानव-चेतना को समस्त अमानवीय कृत्यों के विरुद्ध संघर्षशील कर देना ही उसका लक्ष्य था ।"[168] कवि महेन्द्र भटनागर की समस्त काव्य-यात्रा में इस लक्ष्य और इस संघर्ष का स्वर मुखर हुआ है । यही कारण है कि उनकी रचना में मानवतावादी रुझान और साम्यवादी व्यवस्था के प्रति ललक के दर्शन होते हैं । कवि का आतुर आग्रह इन शब्दों में फूट पड़ाता है :

'आओ -

दूरियाँ

देशान्तरों की

व्यक्तियों की

अत्यधिक सामीप्य में

बदलें

    बहुत मज़बूत

    अन्तर-सेतु

    बाँधें ।'[169]

सहभाव के बिना किसी सुनियोजित सामाजिक गन्तव्य को पा लेना सम्भव नहीं ।

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता उद्देश्यगत है ।

कवि स्वयं अपने कवि से कहता है -

'कवि उठो ।

रचना करो, तुम एक ऐसे विश्व की

जिसमें कि सुख-दुख बँट सकें ।'

कवि की करुणा दलितों, शोषितों और प्रताड़ितों के प्रति नाना सुरों में ढल गई है । वह अपने अन्तर का समस्त प्यार-दुलार उनकी झोली में उड़ेल देना चाहता है :

भाग्य से

अथवा जगत से

हर प्रताड़ित व्यक्ति को

आजन्म संचित, स्नेह मेरा

है समर्पित ![170]

कवियों की मान्यता थी कि "सामाजिक संघर्ष में आधुनिक साहित्य जितना ही तपेगा, उसका रंग उतना ही निखरेगा । इस संघर्ष से दूर रहकर यदि लेखक सोने की कलम से भी काल्पनिक साधनों के गीत लिखेगा तो उसकी कलम और साहित्य का मूल्य दो कोड़ी से ज्यादा नहीं होगा ।"[171] इन पंक्तियों में डॉ. रामविलास शर्मा ने युग-सत्य को वाणी प्रदान करने में कला की सार्थकता मानी है । कला के संबंध में डॉ. महेन्द्र भटनागर की पंक्तियाँ युग-सत्य या युगीन चेतना को महत्व देती हैं :

"व्यक्त सिर्फ आज के सवाल चाहिए

तम नहीं प्रभात लाल-लाल चाहिए

व्यक्ति की करुण उतारती

आग जो दबी उसे पुनः उभारनी ।"[172]

केदारनाथ अग्रवाल ने 'धरती और किसान' कविता में यह स्पष्ट किया है कि हम 'धरती और किसानों' के कवि हैं :

हम लेखक हैं

कथाकार हैं

हम जीवन के भाष्यकार हैं

हम कवि हैं जनवादी ।

हम सृष्टा है

श्रम शासन के

मुद मंगल के उत्पादन के

हम दृष्टा हितवादी ।[173]

लोकहित की इसी भावना से डॉ. महेन्द्र भटनागर दलित-पीड़ित जनता को जगाना चाहते हैं :

उठो, पीड़ित, तिरस्कृत

आज युग-युग के सभी मानव !

जगाता है तुम्हें

नूतन जगत का अब नया यौवन ।[174]

कवि अपनी कविता से ऐसे विश्व की रचना करना चाहता है जिसमें सुख-दुख लोग आपस में बाँटें, जिस समाज में कोई भेदभाव न हो, केवल मानवता-महिमा का गान हो; यथा :

भूलें जग के भेद-भाव सब

वर्ण जाति के, धन-पद-वय के,

गूँजे दिशि-दिशि में स्वर केवल

मानव महिमा गरिमा जय के ।[175]

जीवन में निराशा और सूनापन हर व्यक्ति को परेशान करता है -

जीवन में कितना सूनापन

पथ निर्जन है, एकाकी है

उर में मिटने का आयोजन

सामने प्रलय की झ़ाँकी है ।[176]

डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की जीवन के सूनेपन की उक्त निराशा डॉ. महेन्द्र भटनागर ने भी महसूस की है :

जीवन

अर्थ - सूनापन ।

नहीं कुछ भी नया

सदा-सा

आज भी दिन ढल गया ![177]

दिन ढल जाने से कवि उदास ज़रूर है, पर नयी सुबह में क्रांति करने का उत्साह उसमें है

हूँ नए युग का मनुज मैं, बद्ध हो पाया न जीवन,

मार्ग में रुकना कहाँ जब पा रहा युग का निमन्त्रण,

यदि बदल पाया ज़माना, है तभी सार्थक जवानी !

है अमर ये गान मेरे, है अमर मेरी कहानी !

डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' भी यही कहते हैं :

आओ उठो,

आओ वीरोचित कर्म करो

यों कब तक सहते जाओगे, इस परवशता के जीवन से

विद्रोह करो, विद्रोह करो ।

किसी भी असत, अन्याय अथवा अमानवीय स्थिति के साथ समझौता

करना उसकी उक्त साधना के विरुद्ध है । इसलिए उसकी घोषणा है :

मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग को निर्मित करनेवाला हूँ ![178]

यह भी कि :

क्रांति-पथ पर बढ रहा हूँ द्रोह की ज्वाला जगाने ![179]

और यह भी :

मेरे भावों का वेग प्रखर,
मेरी कविता की पंक्ति अमर,
मेरी वीणा युग-वीणा है
कब मौन हुए हैं उसके स्वर ?[180]

कवि को विश्वास है कि, आँधी-पानी के दिन सदा नहीं रहेंगे -

विश्वास है
एक दिन काली घटाओं से घिरा आकाश
खुलकर ही रहेगा ![181]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता का लक्ष्य है - समाज को अन्धकार से प्रकाश में लाना, पथ से गुमराह हुए को पथ-प्रदर्शित करना और शोषित पीड़ित समाज को अपने अधिकार के लिए जाग्रत करना । 'कविता : नये कवि' में आलोचक विश्वम्भर मानव ने महेन्द्र भटनागर की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की हैं :

मैं शोषित दुनिया के
आज करोड़ों इन्सानों से कहता हूँ,
मैं भूखो-नंगों, पद दलितों,
बेबस और निरीहों की
आहों से कहता हूँ
अब और अँधेरे में

मत खोजो पथ अपना,

खोलो पलकों को साथी

नया सबेरा,

आज तुम्हारे स्वागत को तैयार

नव युग का जय-जयकार करो ।

क्रांति अभियान का कवि 'खेतिहर' में किसानों को जगाता हुआ कहता है :

मेहनतकश उठो !

बलवान हो तुम[182]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' 'विप्लव-गान' में कवि को ऐसी तान सुनाने के लिए कहते है कि जिससे 'उथल-पुथल मच जाये' तो मेरे 'जन नायक की वाणी' में नव-निर्माण के प्रेरणाकारी संदेश और जागरण के स्वर भी अभिव्यक्त करते हैं :

जागो, जागो, अमृत सुवन तुम,

जागो, जागो, सोनेवालो,

जागो, तुम सिंहों के छौनों, जागो सब कुछ खोने वालो ।

जागो, देश-काल, निर्माता जागो, तुम निज भाग्य-विधाता,

जागो इतिहासो के ज़ाता, जागो तत्वज़ान के दाता ।[183]

'विहान' में महेन्द्र भटनागर 'बंदी युग-यौवन' को जगाते हुए कहतें है :

जागो, हे जीवन जागो !

उत्सर्ग भरे गानों से,

प्राणों के बलिदानों से

त्रस्त मनुज के उद्धारक,

हे नवयुग के मन जागो

जागो, हे जीवन जागो ।[184]

डॉ. भगीरथ मिश्र लिखते हैं, "महेन्द्र भटनागर के काव्य में नवयुग, नवमानव और नयी सभ्यता के गान हैं ।..... साम्यवादी रंग में उसका मूल स्वर प्रगतिवादी है । इन्हें नागार्जुन, केदार और मुक्तिबोध की कला-दृष्टि की अपेक्षा है ।"[185]

कवि परंपराओं को तोड़ने का आह्वान करता है । निराश-यौवन और भटके हुए राही को उत्कर्ष की राह दिखाना चाहता है । यथा :

"जन-उर में द्रोह उठा दूँगा,
यौवन का तेज जगा दूँगा,
उन्नति की राह बता दूँगा ।"[186]

कवि प्रगतिशील विचारधारा का गायक है :

हम नव प्राणद संदेश लिए
बलिदान सिखाने को आये

इस तरह "डॉ. महेन्द्र भटनागर का काव्य-व्यक्तित्व सोद्देश्य प्रामाणिक ईमानदारी का व्यक्तित्व है, जिसकी संवेदना के तार जग-यथार्थ की धातु से कवि-व्यक्ति के यथार्थ की भट्ठी में गले-ढले हैं ।"[187] 'हर मनुष्य में सौन्दर्य का बोध जाग्रत हो - कवि की कला-साधना का उद्देश्य है ।[188]

काव्य कला :

"काव्य और कला जीवन के लिए हैं, उसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता । जीवन के विकास और उत्कर्ष के साथ कला का स्थान महत्वपूर्ण होता जा रहा है, उसकी व्यापकता बढ़ती जा रही है । यदि काव्य और कला को जीवन से निकाल दिया जाय, तो जीवन का जो रूप होगा उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते । इसके अतिरिक्त काव्य-जीवन को प्रेरणा-प्रदान करता है, उसमें एक समरसता और उत्साह का संचार करता है । उदासी और चिंता के क्षणों में प्रसन्न करने की उसमें शक्ति है । आदर्श और यथार्थ जीवन के दोनों पक्षों का चित्रण काव्य करता है । यथार्थ के आधार पर हम आदर्श की ओर अग्रसर होते हैं । अतः आदि से अन्त तक काव्य और कला में जीवन की झाँकी

रहती है । जीवन को काव्य एक विशेष सुन्दर, स्वस्थ और उदात्त दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है । हम एक साथ थोडे ही समय में व्यापक और सम्पूर्ण जीवन का दर्शन कर ज्ञान, आनन्द और शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं ।''[189]

"काव्य का प्रमुख कार्य हमारे आन्तरिक जीवन की अभिव्यक्ति है''[190] और यह अभिव्यक्ति भाषा से होती है । "जहाँ वैचारिक उलझाव है अथवा अभिव्यक्ति-दूरूहता है, वही कविता पंगु हो जाती है । पाठक जब कविता को आत्मसात् ही नहीं कर पाएगा, तब उसके प्रति आकर्षित कैसे हो सकेगा ? जब कुछ कहने को होता है तब कविता, कला और शिल्प के नाना रंग-बिरंगे परिधानों में सज-सँवरकर, स्वतः आकार ग्रहण करने लगती है ।''[191] "प्रत्येक कवि ने अपनी अनुभूति को सर्वप्रथम गीत में ही ढाला होगा अथवा जिस दिन उसने ऐसा किया होगा उस दिन से ही उसे कवि होने का अहसास हुआ होगा। वैसे तो प्रत्येक कला में सत्य (यथार्थ) विकृत रहता है, पर गीत की कला सत्य के अधिक निकट रहती है । वहाँ भावावेश के कारण अधिक काट-छाँट के लिए अवकाश नहीं होता ।''[192]

"निर्माण के क्षणों में स्रष्टा की समस्त मानसिक चेतना कला-कृति से तदाकार हो उठती है । उसकी चित्तवृत्ति लक्ष्य के प्रति संकुचित हो जाती है । भावावेश एक विशिष्ट भूमि पर केन्द्रित हो जाता है । अनुभूतियों, संवेदनाओं एवं भावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करते समय शिल्प के प्रति अवश्य जागरूक रहना पड़ता है । शिल्पगत निपुणता अभ्यासाश्रित होती है । कवि को यह निपुणता प्राप्त करनी चाहिए । अन्यथा, उसकी सुसंस्कृत भावनाएँ, समृद्ध कल्पनाएँ तथा उन्नत विचार प्रभावहीन हो जाएंगे ।..... अतः स्पष्ट है, स्रष्टा का उद्देश्य सुसंस्कृत भावनाओं, स्वस्थ विचारों एवं समृद्ध स्वाभाविक कल्पनाओं को काव्य-शिल्प में ढालना ही है । भाव, विचार, कल्पना और शिल्प के संतुलित संयोग से कला का जन्म होता है ।''

"भावातिरेक कृति को वैचारिक जगत से विच्छिन्न का देगा तो आवश्यकता से अधिक वैचारिकता उसे बौद्धिक व नीरस बना देगी । यदि कल्पना की उन्मुक्त उड़ान उसे अवास्तविक धरातल पर घसीट ले जायेगी तो शिल्पाधिक्य उसे निर्जीव बना देगा । पर, यह तथ्य निर्विवाद रूप से स्वीकार

करना चाहिए कि काव्य में प्राथमिकता का भाव-पक्ष को प्राप्त है । शिल्प को प्राथमिकता प्रदान करनेवाले, काव्य-शक्ति का अनुपयोग अथवा दुरुपयोग ही करते हैं । सामाजिक उत्तरदायित्व से कवि को मुक्त नहीं किया जा सकता । इसका अभिप्राय यह नहीं कि कवि अपनी नितान्त वैयक्तिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त ही न करे । वैयक्तिक अनुभूतियाँ सामाजिक सापेक्षता में सुन्दर प्रतीत होती है । अन्यथा, हमारे मन की कुरुचिपूर्ण भावनाएँ समाज को नैतिक गिरावट की ओर ले जा सकती है । उदात्त वैयक्तिक भावनाएँ जब अभिव्यक्त होती हैं तो उनकी प्रेषणीयता सर्वदेशिक एवं सर्वकालिक हो जाती है ।''[193]

प्रामाणिक लेखन की दृष्टि से सामान्यतः रचना-प्रक्रिया के समय पाठक को लक्ष्य में रखने का प्रश्न ही नहीं उठता, प्रेषणीयता के प्रति भी स्रष्टा सजग नहीं रहता, क्योंकि वह जानता है कि जिस अभिव्यक्ति से उसे तोष होगा, उससे पाठकों को भी । स्रष्टा का सारा प्रयास निज की संतुष्टि के लिए होता है । विकृतियों को सचेत होकर अभिव्यक्त करनेवाले साहित्यकार अक्षम्य हैं । जो रुग्ण व्यक्ति विकृतियों एवं कुत्साओं को विवश व अनजान भाव से व्यक्त कर जाते हैं, उन्हें साहित्य को स्व-अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने अथवा उसे साधन के रूप में उपयोग में लाने का कोई अधिकार नहीं । यदि वे अनधिकार चेष्टा करते हैं तो वे कभी भी साहित्य में सम्मानित नहीं हो सकते । मानवता ऐसी रचनाओं को ग्रहण नहीं कर सकती ।''[194]

कवि महेन्द्र भटनागर मानते हैं कि कला-धारणा का आधार काल्पनिक न होकर यथार्थ होना चाहिए है । आज की कला का आधार कल्पना नहीं बल्कि हमारे आसपास जो घटित हो रहा है उसका चित्रण होना चाहिए । हमारे साहित्य का आधार वास्तविक जीवन का अनुभव होना चाहिए। यथा :

'झूठ - मिथ्या - कल्पनाओं का नहीं है अब ठिकाना'

x x x x x x

'आज कण-कण ढह चुका है कौन जो उनको उठाता ?
विश्व के उस पार की कवि कौन है जो आज गाता ?'[195]

कला के मूल के संबंध में एंगेल्स का कथन है कि ''हाथ केवल श्रम

का साधन ही नहीं, अपितु श्रम का परिणाम भी है ।" आर्ट एण्ड सोशल लाइफ़ में प्लेरवोनव का विधान है कि 'श्रम कला से पुरातान है', 'सुन्दर वह है जो अपने सभी हितों से स्वतंत्र रूप में आनन्द प्रदान करता हो', 'कला को सामाजिक महत्व तभी प्राप्त होता है जब वह सामाजिक महत्व की क्रियाओं को, भावनाओं एवं घटनाओं को चित्रित, उद्दीप्त एवं संक्रमित करती है ।' कॉडवेल का यह मानना है कि जिस प्रकार मोती सीप का परिणाम है उसी प्रकार कला समाज का प्रतिफलन है ।"[196] यही बात डॉ. महेन्द्र भटनागर ने अपनी कविता में बख़ूबी से प्रस्तुत की है ।

साहित्य में कुंठित वासनाओं का चित्रण प्रयोगवाद की देन है । ऐसा साहित्य में अधिक समय टिक नहीं पाता । कवि महेन्द्र भटनागर स्वस्थ साहित्य के पक्षधर हैं । वे कहते हैं कि "कविता में कुंठित भावों का चित्रण नहीं"; बल्कि स्वस्थ अनुभूतियों का चित्रण ही साहित्य को जीवित रख पाता है । यथा :

"रुद्ध अचेतन कुंठित हो न कभी भावों की सरिता,
प्राणों की वेगवती बहती जाये जीवित कविता ।"

साथ ही, कवि का कथन है नवयुग की कविता नये जीवन के लिए हो । यथा :

"नूतन गति दो आज कला को !
ओ कवि ! निकले तेरे उर से
स्वर नव-युग के नव-जीवन के,
शांति-सुधा की मधु-लहरों-से,
कल-कल निर्झर मधुर स्वरों से,
विश्व नहाता जिनमें जाये
मुस्कान मधुर मानव पाये
झूम-झूम कर मस्ती में भर
सुन्दर-सुन्दर कहता जाये
दो नूतन-स्वर नूतन साहस ।"[197]

स्पष्ट है कि कवि अपनी कविता-कला से मानव में शांति, मुस्कान और साहस भरना चाहता है । कवि की कला कला के लिए नहीं बल्कि जीवन के लिए है । कवि उस 'कला' को हेय समझता है जो जीवन से पलायन कर 'सुदूर स्वप्न' राज्य में विहार करती है । यथा :

जो सुदूर स्वप्न-राज्य की विहारिका

हेय, व्यर्थ, युग-उपेक्षिता अमर कला !

कवि ऐसी कला का पक्षपाती है जो 'कण-कण को सींचे' तथा सूखे बिरवे को पानी दे ।[198]

'अवन्तिका' (पटना) में आलोचक श्री रामेश्वर शर्मा ने 'टूटती शृंखलाएँ' की विशेषताओं को उद्‌घाटित करते हुए कहा है कि "कवि के पास न केवल नवीन स्वस्थ विचार-सरणि तथा जीवनोन्मुख वस्तुविधान है, वरन् उसमें अंकन की अद्‌भुत क्षमता भी है ।"[199]

अंकन की अद्‌भुत क्षमता शब्द-चयन से होती है । शब्द ही साहित्यकारों का धन है, हथियार है, औजार है और कच्चा माल भी है । कवि महेन्द्र ने इस धन, हथियार का कैसा प्रयोग किया है; यहाँ देखेंगे ।

बिम्ब-योजना :

काव्य में प्रतीक-विधान एवं अलंकार-विधान के समान बिम्ब-विधान का भी महत्व है । जिस प्रकार प्रतीक भावों एवं विचारों की संवेदनशीलता एवं अभिव्यक्ति में तीव्रता उत्पन्न करने में सहायक होते हैं, उसी प्रकार बिम्ब भी काव्यगत भावों की संवेदनशीलता को प्रखर तो बनाते ही हैं साथ ही उसके मूर्त रूप को भी प्रकट करते हैं । तात्पर्य यह कि बिम्ब-योजना द्वारा कवि विचारों और वस्तुओं के कल्पित रूप को इन्द्रिय-ग्राह्य बनाने की कोशिश करता है । केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि "बिंब-विधान का संबंध जितना काव्य की विषय-वस्तु से होता है उतना ही उसके रूप से भी । विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को संक्षिप्त और दीप्त ।"[200] बिंब काव्य-शिल्प का एक महत्वपूर्ण अंग है । "बिम्ब वस्तु का मात्र चित्रण नहीं होता, वरन् सम्पूर्ण अनुभूति के विशिष्ट संदर्भ से उसका आकलन होता है ।"[201] बिम्ब कवि का

व्यक्तित्व ही है । एक कवि अनजान रूप में अपनी भीतरी पसन्द-नापसंद, अपनी दिलचस्पी और पर्यवेक्षण की बातें, मनोवृत्ति और विश्वास आदि को अपने बिम्बों के माध्यम से व्यक्त कर देता है ।[202]

बिम्ब विधान का क्षेत्र काफ़ी व्यापक रहा है । बिम्बों का वर्गीकरण अनेक दृष्टियों से किया जाता रहा है । डॉ. शंभुनाथ चतुर्वेदी ने उसे दो कोटियों में विभाजित किया है, पहला ऐन्द्रिय बिम्ब, दूसरा मानस-बिम्ब ।[203]

जीवन के यथार्थ को प्रकट करता यह बिम्ब :

ज़िन्दगी

वीरान

मरघट-सी

जिन्दगी

अभिशप्त

बोझिल और एकाकी

महावट-सी ![204]

क्योंकि कवि कविता को यथार्थ से जोड़ता है :

समाज में सर्वत्र विषमता परिव्याप्त है । सामाजिक विषमता को स्पष्ट करता यह बिम्ब :

हर व्यक्ति का जीवन

नहीं है राज-पथ ।

उपवन सजा

वृक्षों लदा

विस्तृत

अबाधित

स्वच्छ

समतल

स्निग्ध ![205]

कवि महेन्द्र भटनागर उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद से प्रभावित रहे हैं । नवजीवन का सन्देश देता, प्रेमचंदकृत ‘गोदान’ उपन्यास से लिए गये बिम्ब हैं -

धूप से झुलसे हुए ‘होरी’ कृषक
आ रही ‘जल की हवा’ जीवन-जनक !
उर लगाले जीर्ण ‘धनिया’ देह को
(रोक ले रे ! छल छलाते स्नेह को !)[206]

महाकवि निराला ने ‘बादलराग’ में ऐसा ही बिम्ब प्रस्तुत किया है :

“जीर्ण बाहु, हे शीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ये विप्लव के वीर ।
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावार ।”[207]

तो दिनकर जगत के अन्धकार में लिप्त इन्सानियत को जगाते हुए कहते हैं :

“जग में भीषण अंधकार है जागो तिमिर-नाशक जागो
जगो मंत्रदृष्टा, जगती के गौरव, गुरु, शासक जागो !
जय हो खोलो द्वार अमृत दो, हे जग के पहले दानी
यह कोलाहल शमित करेगी किसी बुद्ध की ही वाणी !”[208]

(दिनकर)

तो महेन्द्र भटनागर युग के बंदी यौवन को जगाते हैं । यथा :

जागो, हे जीवन जागो !
उत्सर्ग भरे गानों से
प्राणों के बलिदानों से
त्रस्त-मनुज के उद्धारक,
हे नवयुग के मन जागो !”[209]

और यह भी :

जाग शोषित, देख सम्मुख है नया संसार !

महेन्द्र भटनागर का यह बिम्ब -

"हमने

जीवन भर

हाँ

जीवन भर

मन की हर क्यारी में

सहज खिलाएँ

भावों के सुरभित फूल ।"[210]

आज का सामाजिक वातावरण और उसका यथार्थ उजागर करता हुआ सार्थक बिम्ब :

"सामने बस स्वार्थ का जंगल घना

दुर्ग जिसमें डाकुओं का है बना !

मौत की शहनाइयाँ बजती जहाँ

रंग-बिरंगी अर्थियाँ सजती जहाँ ।"[211]

इस तरह कवि महेन्द्र भटनागर के काव्य में बिम्ब-विधान अधिकतर प्रकृति, अप्रस्तुत-विधान और विभिन्न अलंकारों के संयोग से है ।

प्रतीक-विधान :

व्युत्पतिमूलक अर्थ में जिस वस्तु अथवा साधन के द्वारा बोध अथवा ज्ञान की प्रतीति होती है, उसे प्रतीक कहते हैं ।[212] प्रतीयते अनेन इति प्रतीकः । प्रतीक शब्द का प्रयोग चिन्ह, प्रतिरूप, प्रतिमा, संकेत आदि विभिन्न अर्थों में मिलता है ।[213] 'हिन्दी-साहित्य-कोश' में प्रतीक की परिभाषा इस प्रकार दी गई है - "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य अथवा गोचर वस्तु के लिए किया जाता

है जो किसी अदृश्य विषय का प्रतिविधान, उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समान वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करनेवाली वस्तु प्रतीक है ।"[214]

"प्रतीक का उद्गम मानव-मन का एक अभियान है । प्रतीक केवल कल्पना की ही उन्मुक्त उड़ान नहीं है । उसके पीछे अनुभव के नित्य नूतन संयोग की प्रगति रेखा है ।"[215] डॉ. भगीरथ मिश्र ने भी प्रतीक की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए लिखा है - "अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्षता के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है ।"[216] वस्तुतः प्रतीक भावों की अभिव्यंजना की प्रस्तुति में सहायक का कार्य करते है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी लिखा है कि प्रतीक का आधार सादृश्य या साधर्म्य नहीं, बल्कि भावना जागृत करने की निहित शक्ति है ।"[217]

इस तरह, "प्रतीकों का व्यवहार केवल काव्य का एक प्रमुख अंग नहीं है, अपितु मनुष्य की अभिव्यक्ति मात्र का इससे घनिष्ठ संबंध रहा है ।"[218]

हर युग के कवियों ने अपनी भावनाओं को आकार देने के लिए प्रकृति के विभिन्न उपकरणों का सहयोग लिया है । जो बात उनकी वाणी से नहीं बनी वह प्रकृति के ये उपकरण बना गए । कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में प्रकृति-प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है । रात, चाँद, अँधेरा, आँधी, तूफ़ान, बादल, चट्टान, भोर, उषा, रोशनी, किरण, पर्वत, शूल, फूल, गुलाब, कूप, अँधेरे, वीहड़, आदि प्रतीकों से कवि ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को भाव स्थितियों को व्यंजित किया है । इसके अलावा कवि महेन्द्र भटनागर ने कुछ सामाजिक, औद्योगिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक और पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग किया है ।

कवि महेन्द्र का काव्य प्रतीकों से भरा पड़ा है । यथा :

"आओ
नई ऋचाओं का निर्माण करे ।"[219]

इसमें कवि जीवन के नये दौर को अपनाने की बात 'नई ऋचाओं के निर्माण' के प्रतीक से कहता है ।

पुराने प्रतीकों से नवीन युग बोध प्रकट नहीं होता । अतः उनके त्याग की आवश्यकता स्वीकार करता हुआ आधुनिक कवि कहता है :

"ये उपमान मैले हो गये हैं ।

देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है ।"[220]

यही बात कवि महेन्द्र भटनागर 'मरु-थल' और 'ऊष्मा-घर' के प्रतीकों से व्यंजित करते हैं :

"कल्पों से यह जीवन क्या ? - मरुथल

बना हुआ है जग का ऊष्मा-घर

एकाकी पथ, फिर उस पर मृग-जल

तब मानूँगा तुममें रस-सागर

यदि मेरे ऊसर-मन को नहला दो !"[221]

विश्व अंधकारमय है । भयभीत है । कवि महेन्द्र यह बात इस प्रकार कहते हैं :

"व्योम कुराच्छन्न, गहरा तम घिरा, कम्पित धरा भयभीत,

विश्व-आँगन में मचा रोदन, खड़ी है दुःख की दृढ़ भीत ।"[222]

साम्राज्यवाद ने मनुष्य का शोषण किया है, जिसका परिणाम दो विश्वयुद्धों की विभीषिकाएँ हैं । आज भी इस भक्षक की प्यास वैसी ही है । यथा :

"बढ़ रही है विश्व-भक्षक प्यास

पी चुका इतना की अटकी साँस ।"[223]

इतना विषदपूर्ण परिणाम भोगने के बाद भी कवि को विश्वास है कि समाज में फैली कालिमा दूर होगी और नयी सुबह आयेगी । यथा :

"विश्वास है -

एक दिन काली घटाओं से घिरा आकाश

खुलकर ही रहेगा ।"[224]

इसमें 'काली-घटाएँ' वर्तमान युग की विभीषिकाओं का प्रतीक है ।

कवि महेन्द्र भटनागर ने 'तूफ़ान' के प्रतीक से क्रांति को व्यंजित किया है । यथा :

"आ रहा तूफ़ान है

जीत का वरदान है

शक्ति का ही गान है ।"[225]

साम्राज्यवादियों द्वारा किये गये नर-संहार का चित्रण करता है यह प्रतीक :

लो रुक गया रक्तिम सैलाब का पानी ।[226]

तो साथ ही कवि 'मेघ' और 'बिजली' के प्रतीक प्रयुक्त करता है :

"जितने काले घन अम्बर पर छाएँगे

उतनी गहरी उज्ज्वलता से बिजली चमकेगी ।"[227]

'बिजली' की यह चमक 'क्रांति' का प्रतीक है; जिससे पीड़ित जनता को साम्राज्यवाद से मुक्ति मिलेगी । इसी मुक्त जीवन को कवि ने वाणी दी है :

नई रोशनी है,

नई रोशनी है ।[228]

साँप का प्रतीक पूँजीपति-वर्ग का है । नरेन्द्र शर्मा ने उसके माध्यम से पीड़ित जगत का चित्र उकेरा है । यथा :

"ज्यों घेर सकल संसार, कुंडलीमार

पड़ा हो अहिविशाल,

आक्रांत धरा की छाती पर

गुम-सुम बैठा मध्याह्न-काल ।"[229]

तो महेन्द्र भटनागर कहते है :

घेरे तन को

अनगिनत नागफाँस नुकीले शूल,

अविराम थपेड़े झंझा के ।[230]

मैं 'नागफाँस', 'नुकीले शूल' तथा 'थपेड़े झंझा के' प्रतीक जीवन की विषम परिस्थितियों का निर्देश करते हैं ।

इस तरह कवि महेन्द्र भटनागर ने पौराणिक व आधुनिक प्रतीकों का अपनी कविता में समाहार किया है । जिसमें 'विश्वशांति' को 'प्रभात' एवं 'विश्वयुद्ध के वातावरण' को 'तामसी निशा'[231] के प्रतीक दिये गये है । कुछ प्रतीकों का कवि ने बार-बार प्रयोग किया है, जैसे - 'नई इमारत' (नवयुग-व्यवस्था), 'अँधेरा' (निराशा और दुःखदायी स्थितियाँ), 'आग' (क्रांति), 'सबेरा' (नवयुग) आदि ।

अतीत तथा उसके महापुरुषों को आज के कवि ने नज़र-अंदाज़ नहीं किया है; अपितु वैज्ञानिक विश्लेषण के बाद उन्हें नये रूपों में उद्‌घाटित किया है । कविता दिनों-दिन लोक से संपृक्त होती जा रही है । पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से कवि आज के जटिल-से-जटिल भावों को भी जन-सामान्य के लिए बोधगम्य बना देता है । पौराणिक आख्यानों एवं पात्रों को भी कवियों ने प्रतीक के रूप में स्थान दिया है ।

पौराणिक पात्रों एवं घटनाओं के साथ ही कवियों ने ऐतिहासिक घटनाओं एवं पात्रों को भी प्रमुखता दी है । धर्मवीर भारती की 'बाणभट्ट' शीर्षक की इन पंक्तियों को देखिए, जिनमें वैभव-सम्पन्न व्यक्ति के प्रतीक के रूप में 'हर्षवर्धन' को, 'प्रलोभन' के रूप में 'वर्फदार सोना' को तथा आज के कवि के प्रतीक के लिए - जोकि प्रलोभनों के पीछे अपनी आत्मा तक बेच देता है - 'बाणभट्ट' को प्रस्तुत किया गया है -

सत्य है राजा हर्षवर्धन के हाथों से मिला हुआ

पान का सुगंधित एक लघु बीड़ा

(चाहे वह जूठा हो,

उस पर लगा हुआ वर्कदार सोना था !

हाय बाणभट्ट ! हाय !

तुमको भी, तुमको भी, आखिर यही होना था ।)[232]

पौराणिक कथानकों के संदर्भ महेन्द्र भटनागर की कविता में भी यत्र-तत्र उपलब्ध हैं । यथा :

दबा, त्रस्त वातावरण

क्रूर

जैसे हुआ हो अभी

हाँ, अभी

राम,

सीता-हरण ![233]

अप्रस्तुत-योजना में भी कवि ने पुराख्यान-प्रसंगों का उपयोग किया है। जैसे :

पर

मादक प्रकरी-सी

तुम कौन ?

रंभा ?

उर्वशी ?

एक रस कथानक में अचानक ![234]

भारतभूषण ने 'टूटे सपनों का सपना'[235] कविता में मेनका, विश्वामित्र, उर्वशी, नारद, गणेश, बृहस्पति आदि पात्रों को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया है । महेन्द्र भटनागर ने 'द्रोपदी'[236] 'शिव', 'महाराणा प्रताप'[237] 'रावण'[238] आदि पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग किया है ।

इस प्रकार कवि महेन्द्र भटनागर ने भिन्न-भिन्न प्रतीकों के माध्यम से युगवाणी को अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

अलंकार-योजना :

'अलंकारोति इति अलंकारः' । काव्य की रुप-सज्जा हेतु अलंकारों का प्रयोग होता है । अलंकार काव्यशिल्प का महत्वपूर्ण अंग है । संस्कृत साहित्य में कहा गया है - "न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितानननम् ।"[239]

विश्व की सभी भाषाओं के काव्य-शास्त्रों में इस तत्व को महत्वपूर्ण तत्व के रुप में मान्य गया किया है । अलंकार के प्रति अपनी धारणा व्यक्त करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है : "भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रुप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है ।"[240] पंत ने भी अलंकार के प्रति अपनी व्यापक दृष्टि को प्रकट करते हुए लिखा : "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है । भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है,..... वे वाणी के ह्रास, अश्रु, स्वप्न, पुलक हावभाव है । जहाँ भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखट में फिट करने के लिए बुनी जाती है, वहाँ भावों की उदारता शब्दों की कृपण-जड़ता में बँधकर सेनापति के दाता और सूम की तरह 'इकसार' हो जाती है ।"[241]

हिन्दी काव्य-साहित्य के विभिन्न कालों में अलंकारों के प्रति कवियों का दृष्टिकोण बदलता रहा है । अलंकारों से अधिकतर मोह हिन्दी के रीति-कवियों में देखा गया है । एक उक्ति प्रचलित है :

"जदपि सुजाति सुलक्षणी सुवरण सरस सुवृत्त ।
भूषण बिन न विराजई, कविता वनिता मित्त ।"[242]

तो छायावादी कवियों ने अलंकार का सीमित्त प्रयोग किया । 'ग्राम्या' के कवि सुमित्रानंदन पंत 'वाणी' में कहते हैं :

"तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार !"[243]

प्रगतिवादी कवियों ने तो सिद्धांततः अलंकारों के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है, क्योंकि वे वस्तु पर विशेष बल देते हैं । कवि की धारणा है कि -

ज्योतित कर जन मन के जीवन का अंधकार,

तुम खोल सको मानव उर से निःशब्द द्वार ।[244]

अलंकार को 'बहुभार' तथा 'मोह के बंधन' के रूप में मानते हुए नरेन्द्र शर्मा ने लिखा है -

अपना न कभी कवि की लघु सीमाओं को तू,

दे छोड इन्हें ।

ये अलंकार बहुभार, मोह के बँधन है,

दे छोड़ इन्हें ![245]

प्रगतिवादी कवियों ने अपनी बात और विचार जन-मन तक पहुँचाने के लिए यथार्थ अभिव्यक्ति को महत्व दिया है । कवि महेन्द्र भटनागर के शब्दों में - "यदि कोई कविता जन साधारण के लिए - आज के कम शिक्षित श्रमिक कृषक के लिए है, तो उसका स्वरूप कवि के शैक्षिक व बौद्धिक स्तर से निश्चय ही भिन्न होगा ।"[246]

"कवि महेन्द्र भटनागर के काव्य-लोक में भी अलंकारों की यही स्थिति है । स्वाभाविक रूप से जहाँ वे उक्ति में प्रकट हो गए हैं, तो हो गए है । जबरन चमत्कार पैदा करने की चेष्टा कवि ने कही नहीं की है ।"[247] फिर भी विभिन्न अलंकारों का सामान्य प्रयोग उनकी कविता में सहज मिलता है ।

कवि महेन्द्र की उपमान-योजना उनकी यथार्थ दृष्टि पर आधारित रही है । उन्होंने अपने आसपास के जीवन से ही उपमानों का चयन किया है, अतः वे साधारणीकरण की शक्ति से युक्त हैं । यथा :

(1) रह-रह कर बह जाती असह्य लहर

मानों बिजली का तीव्र करेण्ट ठहर

माँस मौन तड़पा देता ।[248]

(2) कोई हिमालय के शिखर पर

बद्ध शीतल झील सुन्दर

फट पड़ी हो

खिल पड़ी हो

दूध-सी ![249]

उपमा :

गिरोह कच्चे-घट से फोड़ रहे

दुनिया के अगणित मुक्त तरुण ।[250]

x x x x

जीवन हमारा फूल हरसिंगार-सा[251]

रूपक :

"मरकुरी-सी ज्योति आगत युग-नयन की ।"[252]

उल्लेख :

मेरे हिन्द की संतान

तेरे नेत्र हो द्युतिमान

तेरे मुक्त बल से युक्त

विद्युत से चरण गतिमान

मेरे हिन्दी हिन्द की संतान (टूटती शृंखलाएँ, पृ.87)

विशेषोक्ति :

'रक्त रंजित लाल आँखें माँगती प्रतिशोध

खून का बदला मनुज बल चाहता भर क्रोध'

इस प्रकार अनेक अलंकारों के उदाहरण कवि महेन्द्र भटनागर की रचनाओं में मिलते हैं ।

छन्द :

आधुनिक काव्य- चेतना ने प्राचीन छन्द-विधान के प्रति असंतोष प्रकट किया है । छन्द के क्षेत्र में आज पशिचम अनुकरण हो रहा है । आज कवि मालती, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्र, द्रुतविलम्बित में नहीं लिखता बल्कि मुक्त-छन्द में अपनी रचना करता है । हिन्दी कविता में प्रसाद जी इस छन्द के प्रवर्तक रहे

और निराला परिमार्जक । छायावादी कवियों ने छन्द की स्वच्छन्दता को किन्तु ग्रहण किया किन्तु उसकी लयात्मकता को बरकरार रखा ।

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में छन्द की स्वच्छन्दता के दर्शन होते हैं । जहाँ विचारों के प्रस्तुतीकरण में बाधा बन पड़ी है; वहाँ तुकबंद छंदों को नकार दिया है । कुछ छंदबद्ध; तुकयुक्त काव्य-पंक्तियाँ -

करुण कथा कितनी
गरल व्यथा कितनी
लय में छन्दों में न कहा जाता
अब न रहा जाता (विहान)

न सोचो -
दीप बुझता जा रहा है,
और बीती याद का
तीखा, नुकीला शूल
चुभता जा रहा है ।[253]

मुक्तक :

बिल्ली रस्ता काट गई
हँडिया कुतिया चाट गई
औरत घर से घाट गई
सारी नींद उचाट गई
कविता हाय सपाट गई

मात्र हास्य-व्यंग्य का उद्देश्य लेकर नहीं; कवि ने इस असंगत कविता में अनेक गूढ़ अर्थों के संकेत दिये हैं ।

अंत में डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में - "कवि के पास अपने भावों के लिए शब्द हैं, छन्द हैं, अलंकार हैं । उनके विकास की दिशा यथार्थ

जीवन का चितेरा बनने की ओर है..... कवि की इस वाणी का स्वागत -

जो गिरती दिवारों पर नूतन जग का सृजन करे

वह युगवाणी है

वह जनवाणी है ।"[254]

वैचारिक आधार :

"काव्य कवि की एक सजीव कृति है । जिस प्रकार स्थावर-जंगम पदार्थों से परिपूर्ण जगत् ब्रह्म की चेतन कृति है और पंचभूतों से निर्मित सम्पूर्ण प्राणी समुदाय ब्रह्मा की चेतन कृति है, उसी प्रकार जगत और जीवन की अनुभूतियों से परिपूर्ण कवि की कृति-काव्य भी एक चेतन कृति है ।"[255]

"प्रत्येक काव्य में भावों के साथ-साथ कुछ नैतिक, धार्मिक, राजनीतिक या दार्शनिक विचार भी रहते हैं, जो पाठकों एवं श्रोतओं को सन्मार्ग की ओर उन्मुख करते हैं, उन्हें सदाचरण की शिक्षा देते है और लोक मंगल या लोक-हित की भावना का प्रचार एवं प्रसार करते हैं ।"[256]

"साधारणतया सभी कवि या लेखक अपनी-अपनी कृतियों के भावों के साथ-साथ विचारों का भी उपयोग करते हैं और उन विचारों के माध्यम से अपने दृष्टिकोण को भी अभिव्यक्त करते हैं । विचार-हीन काव्य निकृष्ट, निरुपयोगी एवं अहितकर माना जाता है और जिस देश के कवि अधिक सभ्य एवं सुसंस्कृत होते हैं उस देश के काव्यों में उन्नत एवं उच्च कोटि के विचार अवश्यमेव मिलते हैं । यद्यपि इन विचारों का संबंध ज्ञान-विज्ञान से होता है, तथापि काव्य का संबंध जहाँ हमारे भाव-जगत् से है, वहाँ ज्ञान-विज्ञान से भी वह अपनी घनिष्ठता स्थापित कर लेता है, क्योंकि काव्य तो जीवन और जगत का दर्पण है और जीवन तथा जगत् का संबंध सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान से होता है । इसी कारण संसार का कोई ऐसा विषय नहीं है जो काव्य का वर्ण्य-विषय न बनता हो अथवा जिसका वर्णन काव्य में न मिलता हो ।"[257]

आधुनिक काल में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में और अधिक व्यापक और विस्तृत हो गया जिसके फलस्वरुप "काव्य के क्षेत्र में भी मार्क्सवाद से प्रभावित नवीन स्वर सुनाई देने लगे । डॉ. रामविलास

शर्मा की इस युग की एक छोटी सी रचना जिसमें उन्होंने अपने आपको पूरी तरह मार्क्सवादी घोषित करके साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश किया है । अतः इनकी रचना आगामी नवयुग की ओर एक महत्वपूर्ण संकेत करती है जब ऐसे कवियों ने इस धारा में प्रवेश करना आरंभ किया जो मार्क्सवाद के प्रति पूर्ण आस्थावान थे ।''[258]

''अन्य कवि मार्क्सवाद से परिचित होते हुए भी मार्क्सवादी नहीं थे ।''[259] जिसमें महेन्द्र भटनागर भी एक हैं । उन्होंने स्वयं यह स्पष्ट किया है कि - ''मैं अपने को किसी वाद या मतवाद के अन्तर्गत रखना पसंद नहीं करूँगा । स्वधर्मिता पर किसी छाप को अंकित करना मेरी दृष्टि में युक्तियुक्त नहीं । कलात्मक रचना संपूर्ण मानवता के निमित्त है । उसकी अभिव्यक्ति सर्वदेशीय - सर्वकालीन होती है, होनी चाहिए । श्रेष्ठता की कसौटी जनहित है, जो रचना मानव-मात्र का हित संपादित नहीं करती वह कदापि वरेण्य नहीं मानी जा सकती । वस्तुतः आधुनिकता बोध यही है कि मनुष्य समस्त संकिर्णताओं से मुक्त हो । कविता की सार्थकता इसीमें है कि वह हमारे मानवता बोध को जाग्रत रखे, हमारे सौन्दर्य-बोध को विकसित करे, हमें अधिकाधिक उदार और सहनशील बनाये, हमारे दृष्टि-क्षितिज को व्यापक करे तथा हमारे हृदय और मस्तिष्क का परिष्कार करे ।''[260]

प्रगतिशील साहित्य के आदर्श की प्रतिष्ठापना करते हुए शिवदान सिंह चौहान ने लिखा था : ''हमारा साहित्यिक नारा कला कला के लिए नहीं वरन् कला संसार को बदलने के लिए है । इस नारे को बुलंद करना प्रत्येक प्रगतिशील साहित्यिक का फ़र्ज है ।''[261]

''कवि अपने विचारों और विश्वासों की आधार-शिला पर ही काव्य-रचना करता है - शिल्प के द्वारा उसकी कृति निखर उठती है । जिस तरह कोरी नक्काशी से आदमी के मन को तृप्ति नहीं मिल सकती, उसी प्रकार विचारों और विश्वासों के बिना शिल्प के काव्य में व्यक्त कर देने मात्र से मनुष्य प्रभावित नहीं हो सकता । इस तरह की अभिव्यक्ति का सहज माध्यम गद्य ही हो सकता है । कविता तो कला की अनिवार्य उपेक्षा रखती है । लेकिन कला का उपयोग तो कोई भी कर सकता है - हिंसा को उत्तेजना देने

वाली कविताएँ, अश्लील और कामोत्तेजक कविताएँ, पूँजीवाद-साम्राज्यवाद आदि को बल पहुँचानेवाली कविताएँ आदि सभी कला की दृष्टि से सुन्दर हो सकती हैं । यदि कवि कला को ही एकमात्र कसौटी मान ले तो वह लक्ष्यभ्रष्ट और प्रतिगामी हो सकता है । उसका वैचारिक दुनिया से भी वास्ता होना चाहिए और उसे अपने समय की अथवा कोई नवीन स्वस्थ प्रगतिशील विचार-धारा की अभिव्यक्ति भी करनी चाहिए, तभी उसकी कला सार्थक है । यदि कवि के विश्वास तथा उसकी बौद्धिक मान्यताएँ स्पष्ट नहीं हैं तो वह मानव जीवन को क्या दे सकता है ?"[262]

कला के संबंध में मैंने एक स्थल पर लिखा है :

जो सुदूर स्वप्न-राज्य की विहारिका,
व्योम पार देश की रही निहारिका
कर्म-मार्ग-हीन, स्वर्ण विश्व-साधिका,
द्वन्द्व से विमुख, सदा नवीन बाधिका,
हेय, व्यर्थ युग उपेक्षिता अमर कला !
धूल से विलग विचार वास्तविक नहीं,
झूठ शब्दजाल-मात्र है वही -
जो मनुष्य भाव राग से जुड़ा न हो,
दर्द-हास तार से सहज बुना न हो,
कब समाज में टिका ? कहाँ अरे चला ?[263]

कॉडवेल के शब्दों में "कला एक सामाजिक प्रक्रिया है । हम उसी वस्तु को कलाकृति के रूप में स्वीकार करते हैं जिसका कोई सचेत सामाजिक धर्म हो, जो सामाजिक मान्यता प्राप्त प्रतीकों के आवरण में वेष्टित होकर अवतरित हुई हो । किसी स्वप्नदृष्टा की वैयक्तिक स्वप्न-सृष्टि को कलाकृति की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती । कवि अपने लिए नहीं दूसरों के लिए गाता है और उसीके लिए उसे भाषा के सामाजिक माध्यम की आवश्यकता पड़ती है । कला का संसार सामाजिक भावना का संसार है, जो शब्दों और

चित्रों का संसार है जिसका निर्माण एक के नहीं, सबके भावात्मक सम्पर्क और जीवनानुभव के फलस्वरूप हुआ है ।"[264]

डॉ. महेन्द्र भटनागर सजग साहित्यकार हैं । कला उनके लिए समाजहित के लिए है । उनकी कविता में समाज के हित, धर्म के सच्चा रूप और सामयिक यथार्थ का सही आकलन है ।

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता दो युगों में विभाजित है - जिसमें पहला है स्वतंत्रता-पूर्व । जिसमें समाज को स्वाधीनता के लिए संघर्ष करना पड़ा । दूसरा है, स्वातंत्र्योत्तर-काल जिसमें ग़रीबी झेलता निम्न-समाज की जद्‌दोज़हज प्रमुख है । कवि महेन्द्र ने इन दोनों युगों की स्थिति को वाणी दी है । यथा :

यह दो युगों का संधिस्थल है, संघर्ष छिडेगा वर्गों का,
सामाजिक दर्शन, बदलेगा, क्षय होगा स्थापित स्वर्गों का ।

'संक्रमण' कविता में कवि के आक्रमक तेवर दृष्टव्य हैं :

यह नहीं होगा -
बंदूक की नोंक
सचाई को दबाये रखे,
आदमी को
आततायी के पैरों पर
झुकाए रखे
यह नहीं होगा ।

शोषणहीन समाज की संरचना को लक्ष्य कर कवि महेन्द्र भटनागर 'प्रतिबद्ध' कविता में कहते हैं :

हर व्यक्ति का जीवन
समुन्नत कर
धरा को

मुक्त शोषण से करेंगे,

वर्ग के

या वर्ण के

अन्तर मिटाकर

विश्व-जन समुदाय को

हम

मुक्त दोहन से करेंगे ।[265]

नरेन्द्र शर्मा दलित मानवता के लिए जागरण का संदेश लेकर आते हैं। वे कहते हैं :

उठो सूर्य से चीर तिमिर को, उठो, उठो नतशिर बन्दी ।

जागो पहचानो अपने को

मानव हो समझो निज गौरव

अन्तस्तल की आँखें खोलो

देखो निज अतुलित बल वैभव ।[266]

महेन्द्र भटनागर में भी युग-परिवर्तन का अमित हौसला और उद्‌बोधन के नव-जीवनदायी स्वर *हैं :*

उठो, पीडित, तिरस्कृत

आज युग-युग के सभी मानव !

जगाता है तुम्हें

नूतन जगत का अब नया यौवन ।[267]

प्रगतिशील कवि भाग्य में नहीं; बल्कि अपनी मेहनत पर विश्वास करता है ।

भाग्यवाद के विरुद्ध कवि श्रम की महिमा का गान करते हैं :

वरदान अमरता का प्रतिपल मत माँगों रे जड़ पाहन से

गा-गा अगणित वंदन के स्वर !

जीवन में तुमको होना है श्रमशील अथक उन्मुक्त निडर !”

यह कि :

यह मानवता का धर्म नहीं, यह मानवता का मर्म नहीं,

संघर्षों से घबराकर जो सभय पलायन धारण करता

कह, मिथ्याजग, जीवन नश्वर !

इसलिए :

जीवन जब है एक समस्या, कर्मों का ही नाम तपस्या,

प्राणों के अंतिम पल तक, जग में जमकर संघर्ष करो

बहता जाए जीवन-निर्झर ![268]

कवि समाज की नवरचना के लिए विद्रोही बन गया है :

“मैं विद्रोही कवि, मैं नव युग,

को निर्मित करनेवाला हूँ ।”[269]

कवि महेन्द्र भटनागर शोषितों और पीड़ितों की कल्याण-कामना के लिए क्रांति के पथ पर अपने जीवन उत्सर्ग करने के लिए प्रस्तुत हैं । यथा :

क्रांति पथ पर बढ़ रहा हूँ

द्रोह की ज्वाला जगाने ।

आज जीवन के सभी मैं

तोड़ दूँगा लोह बंधन,

शोषितों को आज अर्पित

प्राण की प्रत्येक धड़कन

स्वत्व के संघर्ष में, मैं

पीड़ितों की जीत के हित

अब चला हूँ गीत गाने ।"[270]

तो :

"रक्त से डूबी धरा पर

शांति, समता स्नेह लाने ।"[271]

साथ ही कवि शोषित मानवता को भी क्रांति के लिए आह्वान करता है :

युग के सैनिक हो, क्रांति करो,

नव युग की बढ़कर सृष्टि करो,

मानवता के संताप-क्लेष

पीड़ा अभाव सब शीघ्र हरो

बलिदानों की बलिवेदी पर

डरना तुमको स्वीकार न हो,

बंधन से तुमको प्यार न हो ।[272]

इसमें कवि त्रस्त समाज को नई राह व शांति-स्नेह का संदेश लेकर प्रस्तुत हुआ है ।

कवि महेन्द्र भटनागर का लक्ष्य मानव-चेतना को समस्त अमानवीय कृत्यों के विरुद्ध संघर्षशील कर देना रहा है । यही कारण है कि उनकी काव्य में मानवतावादी रुझान और साम्यवादी व्यवस्था के प्रति आस्था के दर्शन होते हैं । यथा :

"आओ -

दूरियाँ

देशान्तरों की

व्यक्तियों की

अत्यधिक सामीप्य में
बदले ।
बहुत मजबूत
अन्तर-सेतू
बाँधें ।"

कवि महेन्द्र अपने लक्ष्य के प्रति समर्पित रहे हैं । अपनी लेखनी को सम्बोधित कर वे कहते हैं :

"लेखनी मेरी !
समय-पट पर चलो ऐसी कि जिसमें
त्रस्त जर्जर विश्व का
फिर से नया निर्माण हो !
क्षत, अस्थि-पंजर, पस्त-हिम्मत
मनुज की सूखी शिराओं में
रुधिर उत्साह का संचार हो !
ओ लेखनी मेरी !
चलो,
सोये हुए हैं जो
उन्हें उगते दिवाकर की ख़बर दो ।"[273]

जीवन की विषम स्थिति में भी कवि महेन्द्र भटनागर हताश नहीं होते। उन्हें विश्वास है :

सदा विद्रोह होता है, ज़माना जब बदलता है,
नया संसार आता है, पुराना जीर्ण जलता है,
न हिम्मत हारता इन्सान, चाहे मौत मँडराए,
हज़ारों ज़िन्दगी के गीत उसने शान से गाए ![274]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में देश-भक्ति स्वर भी सशक्त है ।

अपने इस अभागे देश के प्रति, जिसके जन युगों से क्रूर आतताइयों के अमानवीय अत्याचारों को शिकार रहे हैं, कवि का संदेश है :

मेरे स्नेह की वर्षा !

नहा लो

त्रस्त प्राणों के उबलते ज्वार ![275]

और जब देश आज़ाद होकर नवीन आशा-उत्साह के साथ नई दिशा की ओर आगे बढ़ने लगता है तो कवि उसका स्वागत करता है । यथा :

प्रत्येक दिशा में

आशातीत

प्रगति के लम्बे डग भरता

वामन-पग धरता

मेरा देश

निरन्तर बढ़ता है ।[276]

प्रगति की ओर अग्रसर अपने देश के लिए वह कामना करता है :

"वतन सुसंगठित रहे,

न एक जन दमित रहे,

न भूख़-प्यार शेष हो

बना नवीन वेश हो,

समय बहाल, सुर्ख़ियाँ निहार लो,

निहार लो ।"[277]

कवि महेन्द्र मानव की प्रगति का कामी है । वह कहता है :

सब जर्जर-जर्जर ध्वस्त करो ।

चिर जीर्ण पुरातन ध्वस्त करो ।[278]

कवि समाज के सामने एक अहम प्रश्न लेकर प्रस्तुत है :

"पुरानी धारणाओं से, पुरानी कल्पनाओं से
कभी क्या जीत पाओगे ?
कभी अपने बनाए लक्ष्य को
साकार कर क्या देख पाओगे ?
बदलते विश्व के सम्मुख
कि अनुसंधान जब विज्ञान के बढ़ते चले जाते ।"[279]

कवि समाज में आयी नई-चेतना से आश्वस्ति अनुभव करता है । कवि अभिनन्दन के स्वर में कहता है :

"सदियों का सोया जागा है
युग-मानव नव बन आया है,
जल जाएगा विश्व अशिव सब
यह अनबुझ ज्वाला लाया है ।"[280]

नई चेतना का असर कवि देख रहा है :

नया प्रकाश है
नया प्रकाश !
दीप्यमान ओर-छोर
अन्धकार मिट रहा अछोर घोर
वास्तविक स्वरूप नग्न सामने ।[281]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता उनके विचारों को वहन करती है । यथा -

जिनमें जीवन का वेग नहीं
दुनिया जिनकी है दूर कहीं,
जो मनुज हृदय को शिथिल करे

जो बदल न पाये रूढ़ मही,

उर उत्साह मिटानेवाले

रोदन गीत नहीं गाने है ! (युग कवि से)

कवि मनुष्य के सुन्दर भविष्य की कामना करता है । वह कल्पना का नहीं बल्कि यथार्थ का गान करना चाहता है :

धूल से विलग विचार वास्तविक नहीं,

झूठ शब्द-जाल चित्र मात्र है वही -

जो मनुष्य भाव-राग से जुड़ा न हो,

दर्द-हास तार से सहज बुना न हो,

कब समाज में टिका ? कहाँ अरे चला ? (कला)

इसी प्रकार नंगों-भूखों के दर्द का मात्र बौद्धिक अनुभव करनेवालों से महेन्द्र भटनागर कहते हैं -

यदि मृत्युंजय बनकर रहना है,

यदि निर्भय अंतर की बातें कहना है,

तो इस क्षण

अपने से ऊपर उठना होगा

फिर चाहे

हँसती दुनिया की तसवीर

बनाने में जुट जाना

भूखों नंगों को अपनी

बाहों में भर लाना !

'नई चेतना' में कवि वैयक्तिक प्रेम की भावना से मुक्त हो चुका है :

आज सपनों की नहीं मैं बात करता हूँ ।

(नई चेतना : छलना)

'बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे' और 'ललकार' में जंगबाज़ों के ख़िलाफ कवि ने जेहाद बोल दिया है :

नये इन्सान के मासूम सपनों पर

कभी भी बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे ।

(नयी चेतना, बिजलियाँ गिरने नहीं देगे)

कवि ने विरोधी शक्तियों को चुनौती देते हुए कहा है कि उसकी गति को कोई रोक नहीं सकता, क्योंकि यह अकेला नहीं है, दुनिया की सारी पीड़ित जनता जगकर आज उसके साथ है -

अकेला नहीं हूँ

ज़माना नया साथ है,

और मैं भी ('अकेला नहीं हूँ', जिजीविषा)

कवि महेन्द्र भटनागर में अदम्य उत्साह और आशा है । 'संतरण' की मनोभूमि 'दृष्टि' शीर्षक कविता में स्पष्ट हो गई है :

माना, हमने धरती से नाता जोड़ा है,

पर चाँद-सितारों से भी प्यार न तोड़ा है,

सपनों की बातें करते हैं हम, पर उनको

सत्य बनाने का भी संकल्प न थोड़ा है ।

यहाँ कवि की वाणी में ओज है । 'सम्मेलन-पत्रिका' (प्रयाग) में श्री नमदेश्वर उपाध्याय लिखते हैं, "इन कविताओं की मूल प्रेरणा कवि को अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों से प्राप्त हुई है ।"[282]

कवि महेन्द्र भटनागर में साम्यमूलक समाज का निर्माण करने की उत्कट आकांक्षा है । कवि की यह सामूहिकतापूर्ण उद्वेगमयी आत्माभिव्यक्ति इन पंक्तियों से स्पष्ट होती है :

हमारे पास केवल

विश्वमैत्री का

परस्पर प्यार का संदेश है

हमारा स्नेह

पीड़ित ध्वस्त दुनिया के लिए अवशेष है !

हमारे हाथ

गिरतों को उठाएँगे

हजारों मूक, बंदी, त्रस्त, नत

भयभीत घायल औरतों को

दानवों के क्रूर पंजों से बचाएँगें ।[283]

कवि महेन्द्र की विचारणा सशक्त और प्रेरक है । निराला के शब्दों में कहे तो "वीर कर्तव्य की ओर देखता है काल्पनिक भविष्य की विपत्ति की ओर नहीं ।"[284]

निष्कर्ष रुप में गजानन माधव मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो "माधुर्य और प्रसाद गुण महेन्द्र भटनागर की कविताओं की विशेषता है । किन्तु सबसे बड़ी बात यह है, जो उन्हें पिटे-पिटाये रोमेण्टिक-काव्य पथ से अलग करती है और 'तार-सप्तक' के कवियों से जा मिलती है वह यह है कि अत्याधुनिक भावधारा के साथ टेकनीकल और अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनका उत्तरकालीन काव्य Modernistic या अत्याधुनिकवादी हो जाता है । 'स्नेह की वर्षा', 'मेरे हिन्द की संतान', 'ध्वसं और सृष्टि' उनकी मार्मिक कविताएँ हैं जो इस श्रेणी में आती हैं । उनका प्रभाव हृदय पर स्थायी रूप से पड़ जाता है । श्री महेन्द्र भटनागर वर्तमान युग चेतना की उपज है ।"[285]

कवि महेन्द्र भटनागर की सरल सीधी ईमानदारी और सच्चाई पाठक को बरबस अपनी तरफ खींच लेती है । प्रयोग के लिए प्रयोग न करके अपने को धोखा न देकर और संसार से उदासीन होकर संसार को ठगने की कोशिश न करके इस कवि ने अपनी समूची पीढ़ी को ललकारा है कि जनता के साथ खड़े होकर नयी ज़िन्दगी के लिए अपनी आवाज बुलन्द करे ।"[286] कवि ने आम आदमी की वेदना और भावना को वाणी प्रदान की है । जिससे उनकी कविता जनवादी बन गई है ।

अध्याय-4

1. An outline of Psychology, W.Mc. Dougall, P.110
2. 'कुछ विचार', प्रेमचंद, पृ.12
3. 'प्रेत और छाया', इलाचंद्र जोशी (भूमिका से)
4. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-5, पृ.404
5. वहीं, पृ.404
6. वहीं, पृ.403-404
7. तारों के गीत 'ज्योति-कुसुम', महेन्द्र भटनार, समग्र खण्ड-1, पृ.67
8. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, अंकुर
9. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-2
10. 'डॉ. महेन्द्र भटनागर का कवि व्यक्तित्व', सं.डॉ. रविरंजन, पृ.19
11. 'डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-२, आदमी और स्वप्न', पृ.228
12. वहीं
13. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, 'विश्वास', पृ.39
14. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, 'अनाहूत स्थितियों से', पृ.320
15. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, विहान 'जीवनदृष्टि', पृ.87
16. वहीं
17. वहीं
18. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.39
19. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, 'आस्था का उपहार', पृ.
20. वहीं, तारों के गीत 'जलते रहो', पृ.59
21. वहीं, 'जलते रहना', पृ.68
22. वहीं, 'नश्वर तारक', पृ.66
23. वहीं
24. वहीं, 'अबुझ', पृ.70
25. वहीं, विहान, 'स्वावलंब'
26. वहीं, 'जीवनदृष्टि', पृ.86
27. वहीं, नवपथराही, पृ.87
28. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र-1, विहान, 'काम्य', पृ.100
29. 'महेन्द्र भटनागर की काव्य साधना', श्री ममता मिश्रा, पृ.33

30. महेन्द्र भटनागर, समग्र-1, अन्तराल 'दिपक', पृ.141
31. 'युगचेतना' (लखनऊ), डॉ. प्रतापनारायण टण्डन
32. महेन्द्र भटनागर समग्र-1, 'अन्तराल' रे मन, पृ.127
33. वहीं, 'साधना का मर्म', पृ.126
34. वहीं, 'गन्तव्य की औऱ', पृ.120
35. वहीं, 'स्नेह-सुधा-जल', पृ.121
36. शाम, कवि सुमित्रानंदन 'पंत'
37. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, (भूमिका से), पृ.10
38. वहीं, पृ.11-12
39. वहीं, 'तारो के गीत'
40. वहीं
41. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-3 संकल्प, 'पुनर्वार', पृ.15
42. वहीं, 'अन्तराल', 'उन्मेष', पृ.107
43. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र - टूटती श्रृंखलाएँ, 'अजेय', पृ.10
44. वहीं, 'संबल', पृ.27
45. वहीं, 'विश्वास है', पृ.53
46. महेन्द्र भटनागर खण्ड-२, 'नई चेतना', 'मुझे भरोसा है', पृ.56
47. वहीं, जिजीविषा : 'सहारा', पृ.10
48. वहीं, 'स्वर-साधना', पृ.16
49. वहीं, सन्तरण : 'अनुबोध', पृ.17
50. वहीं, संवर्त : 'विश्वास', पृ.34
51. वहीं, 'जीवन प्राप्त हो', पृ.37
52. वहीं, टूटती श्रृंखलाएँ, 'विश्वास है', पृ.53
53. वहीं, टूटती श्रृंखलाएँ, 'सदियों के बाद', पृ.1
54. वहीं, 'नया दृश्य', पृ.28
55. वहीं 'अभियान', अन्तर-ज्वाला, पृ.128
56. वहीं, 'नया सबेरा', पृ.144
57. वहीं, अभियान : 'मशाल', पृ.120
58. वहीं, बदलता युग 'गिर नहीं सकती', पृ.171
59. वहीं, संवर्त : 'विश्वास', पृ.110

60. वहीं, संवर्त
61. वहीं, 'जीने के लिए'
62. वहीं, टूटती शृंखलाएँ, 'इतिहास', पृ.16
63. वहीं, नया दृश्य, पृ.38
64. वहीं, 'विश्वास है', पृ.53
65. अभियान : 'नया सबेरा', पृ.75
66. जिजीविषा, 'नई सुबह', पृ.49
67. वहीं
68. वहीं, 'विश्वास है', पृ.53
69. संतरण : 'रंग बदलेगा गगन', पृ.105
70. जूझते हुए : 'जनवादी', पृ.41
71. वहीं, 'संक्रमण', पृ.43
72. वहीं, 'मुक्त-कण्ठ', पृ.66-67
73. 'विश्वशब्दसागर' : श्री नवलजी, नालंदा, पृ.1016
74. वहीं, पृ.1249
75. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र-5, पृ.526
76. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र-5, पृ.407
77. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र-1, 'तारों के गीत', पृ.59
78. महेन्द्र भटनागर समग्र-2, जिजीविषा : 'हिम्मत न हारो', पृ.269
79. वहीं, जिजीविषा 'आज', पृ.66
80. वहीं, संतरण 'ओ. भवितव्य के अश्वो !', पृ.1
81. वहीं, 'अंकुर', पृ.87
82. संवर्त 'प्रतिबद्ध', पृ.70
83. जूझते हुए, 'विश्वस्त', पृ.37
84. बदलता युग : 'अमन की रोशनी', पृ.230
85. नई चेतना : 'छलना', पृ.64
86. जिजीविषा : 'अप्रतिहत', पृ.2
87. महेन्द्र भटनागर समग्र-1, पृ.41
88. वहीं, 'संघर्ष', पृ.123
89. वहीं, 'उत्सर्ग', पृ.93

90. वहीं, विहान : ‘स्वावलंब’, पृ.98-99
91. वहीं, विहान : ‘जीवन दृष्टि’, पृ.86
92. वहीं, पृ.86
93. वहीं, पृ.86
94. वहीं, पृ.86
95. वहीं, विहान : ‘सुख-दुख’, पृ.99
96. वहीं, अन्तराल : ‘गन्तव्य की ओर’, पृ.120
97. वहीं, अन्तराल : ‘साधना’, पृ.121
98. वहीं, ‘चुनौती’, पृ.129
99. वहीं, ‘विनाश’, पृ.130
100. वहीं, ‘विकास’, पृ.129
101. वहीं, ‘जागरण’, पृ.131
102. वहीं, ‘वरदान’, पृ.132-133
103. वहीं, ‘प्रभात की चाह’, पृ.135
104. वहीं, ‘साथ न दोगी’, पृ.143
105. वहीं, ‘जीवनधारा’, पृ.159
106. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, अभियान : ‘कहाँ अवकाश’, पृ.171
107. वहीं, अभियान, ‘संघर्ष’, पृ.180
18. वहीं, ‘मेरी आँहे’, पृ.181
109. वहीं, ‘चेतना’, पृ.182
110. वहीं, ‘तरूण’, पृ.182
111. वहीं, ‘नारी’, पृ.184
112. वहीं, ‘देश-विवेक’, पृ.184
113. वहीं, ‘बलिया’, पृ.185
114. वहीं, पृ.186
115. वहीं, ‘प्रभंजन’, पृ.186
116. वहीं, परिवर्तन हो, पृ.187
117. वहीं, ‘प्रभंजन’, पृ.187
118. वहीं, ‘परिवर्तन हो’, पृ.187
119. वहीं, ‘तुलसीदास’, पृ.190

120. वहीं, 'प्रेमचंद', पृ.193
121. वहीं, 'गांधी', पृ.193
122. वहीं, पृ.195
123. वहीं, पृ.196
124. वहीं, 'खेतिहर', पृ.199
125. वहीं, पृ.201
126. वहीं, 'खेतों में', पृ.203
127. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, बदलता युग 'गिर नहीं सकती', पृ.219
128. वहीं, 'मिटते चलो', पृ.220
129. वहीं, 'बंगाल का अकाल', पृ.229
130. वहीं, 'नौ सैनिक', 'विद्रोह', पृ.230
131. वहीं, 'विकल है देश', पृ.232
132. वहीं
133. वहीं, 'साम्प्रदायिक दंगे', पृ.232
134. वहीं, विफल है देश, पृ.232
135. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृ.105
136. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-2, पृ.2
137. वहीं, 'युग-विहग'
138. वहीं, 'परिचय'
139. वहीं, पृ.2
140. वहीं, पृ.3
141. वर्मा महादेवी, साहित्य समग्र खण्ड-1, सं. निर्मला जैन, पृ.64
142. तीसरा सप्तक, सं. अज्ञेय, 'मुक्ति', पृ.238
143. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-2, पृ.3
144. 'तीसरा सप्तक', सं. अज्ञेय
145. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', रामचन्द्र शुक्ल, पृ.29
146. 'सूर निर्णय', द्वारकादास परीख, प्रभु दयाल मीतल, पृ.275
147. 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', पृ.481
148. 'मार्क्सवाद और साहित्य', महेन्द्रचन्द्र राय, पृ.151-152
149. 'काव्यशास्त्र', डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ.32

150. वहीं, पृ.30

151. वहीं, पृ.31

152. महेन्द्र भटनागर, समग्र खंड-5, पृ.402

153. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-5, पृ.46

154. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1 तारों के गीत, 'तारे और नभ', पृ.63

155. वहीं, पृ.66

156. वहीं, पृ.90

157. वहीं, पृ.41

158. वहीं, पृ.41

159. वहीं, 'अभय', पृ.78

160. वन विहान, 'जागो', पृ.2

161. महेन्द्र भटनागर की काव्य साधना, श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.

162. महेन्द्र भटनागर, समग्र - विहान, जलो जलो, पृ.1

163. वहीं, विहान 'नवपथराही', पृ.7

164. वहीं, विहान, 'युग गायक', पृ.8

165. वही, 'बलिपथी', पृ.5

166. महेन्द्र भटनागर, समग्र-1, पृ.97

167. महेन्द्र भटनागर का रचना संसार, डॉ. विनयमोहन शर्मा, पृ.24-25

168. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर, अनुभूति और अभिव्यक्ति, डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.70

169. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र - संकल्प, 'सहभाव', पृ.1

170. सन्तरण, 'आस्था का उपहार', पृ.7

171. आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. 469

172. टूटती शृंखलाएँ, 'कला', पृ.4

173. आधुनिक हिन्दी काव्य, भगीरथ मिश्र, पृ.491

174. विहान, 'हरिजन', पृ.60

175. संकल्प, 'ममता का गान', पृ.44

176. हिल्लोल, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', आधुनिक हिन्दी काव्य, पृ.498

177. अन्तराल, 'रात', पृ.88

178. आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ. भगीरथ मिश्र, शिवमंगल सिंह 'सुमन', पृ.500

179. अन्तराल, संघर्ष, पृ.133
180. अन्तराल, 'युगकवि', पृ.132
181. सन्तरण, 'जीवन : एक अनुभूति', पृ.23
182. वहीं अभियान, 'खेतिहर', पृ.179
183. 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ.118
184. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, विहान 'जागो', पृ.85
185. 'आधुनिक हिन्दी काव्य', डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ.514
186. 'स्नेह सुधा जल', डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.122
187. 'कवि महेन्द्र भटनागर : सृजन और मूल्यांकन', सं. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.135
188. वहीं, पृ.135
189. 'काव्यप्रकाश', डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ.32
190. वहीं
191. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-5, पृ.402
192. वहीं, पृ.409
193. वहीं, पृ.410
194. वहीं, पृ.406
195. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, 'युग कवि', पृ.91
196. छायावादोत्तर हिन्दी कविता, पृ.130
197. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, 'नयी कला', पृ.101
198. वहीं, समग्र खण्ड-2, टूटती शृंखलाएँ, 'कला', पृ.77
199. महेन्द्र भटनागर की काव्य साधना, पृ.70
200. 'तीसरा सप्तक', केदारनाथ सिंह, वक्तव्य, पृ.114
201. डॉ. हरिचरण शर्मा के 'सर्वेश्वर का काव्य' के ग्रंथ से 'सी.डी. लेविस की 'द चोईरिक इमेज' के पृ.21 से उद्धृत अंश
202. 'दिनकर : एक पुनर्मूल्यांकन', विजेन्द्र नारायण सिंह, पृ.10
203. 'नया हिन्दी काव्य और विवेचना', शम्भुनाथ चतुर्वेदी, पृ.334
204. जुझते हुए, 'निष्कर्ष', पृ.13
205. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड, संवर्त - वैषम्य, पृ.67
206. नई चेतना, 'चेतना', पृ.9

207. परिमल, 'बादलराग', 'निराला', पृ.167
208. आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली, पृ.303 से उद्धृत
209. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, विहान 'जागो', पृ.85
210. वहीं, पृ.80
211. छायावादोत्तर हिन्दी कविता से उद्धृत, 'धूप के धान', पृ.279
212. प्रतीयते प्रत्येति वा इति प्रति+ह+अलीकाय पश्चेति ईकत प्रत्येन साधु-हलायुध कोश
213. 'हिन्दी विश्व-कोश' (भाग-14), पृ.556
214. 'हिन्दी साहित्यकोश', भाग-1, पृ.471
215. 'हिन्दी काव्य में प्रतिकवाद का विकास', वीरेन्द्र सिंह, पृ.1
216. 'काव्य प्रकाश', भगीरथ मिश्र, पृ.255
217. 'चिन्तामणी', भाग-2, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.126
218. 'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतिक विधान', डॉ. नित्यानंद शर्मा, पृ.323
219. संवर्त, 'जीवन', पृ.59
220. हरी घास पर क्षण-भर, 'कलगी बाजरे की', 'अज्ञेय', पृ.57
221. मधुरिमा, 'दिप जलादो', पृ.49
222. टूटती शृंखलाएँ, 'संक्रान्ति काल', पृ.12
223. वहीं, 'पाषाण उर', पृ.14
224. वहीं, 'विश्वास है', पृ.53
225. अभियान, 'प्रभंजन', पृ.41
226. नई चेतना, 'ललकार', पृ.3
227. जिजीविषा, 'झुकना होगा', पृ.46
228. नई चेतना, 'निरापद', पृ.74
229. पलाशवन, 'जेठ का मध्याहन', नरेन्द्र शर्मा, पृ.70
230. संतरण, 'विडम्बना', पृ.20
231. बदलता युग, 'अमन की रोशनी', पृ.230
232. 'सात गीत वर्ष', धर्मवीर भारती, पृ.50
233. संतरण, 'टूटना मत', पृ.15
234. संतरण, 'अविश्वसनीय', पृ.38
235. 'अप्रस्तुत मन', भारत भूषण, अग्रवाल, पृ.102

236. टूटती शृंखलाएँ, 'नया विश्वास', पृ.74
237. बदलता युग, 'साम्प्रदायिक दंगे', पृ.167
238. संवर्त, 'संकल्प', पृ.62
239. 'काव्यालंकार' (कृति), आचार्य भामह
240. 'गोस्वामी तुलसीदास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.129
241. 'पल्लव' 'प्रवेश', सुमित्रानंदन पंत, पृ.19
242. आचार्य केशवदास
243. ग्राम्या 'वाणी', सुमित्रानंदन पंत. पृ.103
244. वहीं, पृ.103
245. हंसमाला, 'स्वर मेरे', नरेन्द्र शर्मा, पृ.13
246. महेन्द्र भटनागर खंड-5, पृ.402
247. 'प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर : अनुभूति और अभिव्यक्ति', पृ.126
248. वेदना, 'वेद नेह की : दीप हृदय का', पृ.39
249. वहीं, 'मन', पृ.89
250. अभियान, 'तरुण', पृ.38
251. संतरण, 'जीवन', पृ.10
252. जिजीविषा, 'नई चेतना', पृ.62
253. जिजीविषा, 'व्यथा', पृ.4
254. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, आमुख
255. 'साहित्यिक निबंध', द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ.15
256. वहीं, पृ.25
257. वहीं, पृ.25
258. 'हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना', पृ.271
259. वहीं, पृ.272
260. डॉ. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-5, पृ.407
261. 'नया काव्य नये मूल्य', ललित शुक्ल, पृ.113 से उद्धृत
262. 'कवि महेन्द्र भटनागर : सृजन और मूल्यांकन', पृ.145-146
263. टूटती शृंखलाएँ, 'कला', महेन्द्र भटनागर, समग्र-2, पृ.77
264. 'हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना', पृ.173
265. संवर्त 'प्रतिबद्ध', पृ.70

266. ‘प्रभातफेरी’, नरेन्द्र शर्मा, पृ.3

267. विहान, ‘हरिजन’, पृ.58

268. विहान, ‘जीवनदृष्टि’, पृ.25

269. ‘अभियान’, पृ.29

270. डॉ. महेन्द्र भटनागर ‘अभियान’, पृ.33-34

271. वहीं, पृ.33-34

272. वहीं, पृ.11

273. जिजीविषा, ‘लेखनी से’, पृ.35

274. जिजीविषा, ‘प्रक्षेपण’, पृ.44

275. टूटती श्रृंखलाएँ, ‘स्नेह की वर्षा’, पृ.82

276. संकल्प, ‘मेरा देश’, पृ.10

277. नई चेतना, ‘सुर्खिया निहार लो’, पृ.75

278. टूटती श्रृंखलाएँ, ‘ध्वस्त करो’, पृ.3

279. नई चेतना, ‘नई दिशा’, पृ.33

280. टूटती श्रृंखलाएँ, ‘परिवर्तन’, पृ.25

281. बदलता युग, ‘नया प्रकाश’, पृ.219

282. ‘महेन्द्र भटनागर की काव्य-साधना’, श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.45

283. महेन्द्र भटनागर, अंतराल, ‘आत्मनिवेदन’, पृ.68-69

284. चतुरी चमार - ‘न्याय’, निराला, पृ.27

285. कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार, ‘आलोचना’, सं.डॉ. विनयमोहन शर्मा, पृ. 42

286. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, आमुख से

पंचम अध्याय

साहित्य और समाज

5.1 कवि महेन्द्र भटनागर के सामाजिक सरोकार

5.2 मानवतावाद और महेन्द्र भटनागर का काव्य

5.3 मानव व्यक्तित्व की अवधारणा

5.4 नव-जागरण के स्वर

5.5 समष्टि-हित की आकांक्षा

– निष्कर्ष

पंचम अध्याय

साहित्य और समाज

साहित्य शब्द का अर्थ : बृहत हिन्दी कोश भाग-2 के अनुसार - "उपकरण, सामान, असबाब, सामग्री, वाक्यों में एक ही क्रिया से अन्वय करानेवाला पदों का पारस्परिक संबंध विशेष, विधा विशेष, कवियों का सुलेख, सार्वजनिक, हित-संबंधी स्थायी विचारों या भावों के गद्य-पद्यमय ग्रंथों का सुरक्षित समूह, काव्य-वाङ्मय, मिलन, प्रेम करना, एकत्रित होना होता है ।"[1]

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'साहित्य' शब्द का अर्थ है - सहित होने का भाव, 'सहितस्य भावः साहित्य ।' इसमें विद्वानों ने 'सहित' शब्द के दो अर्थ माने हैं - 1. 'सह' अर्थात् साथ होना, 2. 'हितेनसहितं' अर्थात् हित के साथ होना अथवा जिससे हित संपादन हो । 'सह' (साथ होना) से यह भाव निकलता कि जहाँ शब्द और अर्थ, विचार और भाव का परम्परानुकूल सहभाव हो, वह 'साहित्य' है । इसी भाव में साहित्य की सामाजिकता का भाव भी ध्वनित होता है ।[2]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'साहित्य' को विचार का बोधक कहते हैं न कि 'पदार्थ' का ।[3] तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "ज्ञान-राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है ।"[4]

'साहित्य' संकुचित अर्थ में 'केवल काव्य का पर्याय है' और व्यापक अर्थ में 'साहित्य' "ऐसी शाब्दिक रचना मात्र का वाचक है जिसमें कुछ हित या प्रयोजन हो और अपने रूढ अर्थ में काव्य या भावना-प्रधान साहित्य का पर्याय है ।" - गुलाबराय

'साहित्य' समाज की चेतना में साँस लेता है । वह समाज का वह परिधान है जो जनता के जीवन के सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, आकर्षण-विकर्षण के ताने बाने से बुना जाता है ।"[5]

"जिस प्रकार भाषा में वक्ता और श्रोता दो की स्थिति स्वयंसिद्ध है, उसी प्रकार साहित्य में दूसरा पक्ष अंतर्निहित है ।"[6]

"साहित्य मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार

रूप है । वह मानव को लेकर ही जीवित है इसलिए वह पूर्णत: मानव केन्द्रित है ।”[7]

निष्कर्षत: ‘साहित्य’ का अर्थ है हित सहित । साहित्य हितकारी रूप में प्रकट होता है । वह मानव मनोवृत्तियों की तृप्ति करता है ।

‘समाज’ शब्द का अर्थ :

समाज-समूह, सभा, समुदाय, एक स्थान निवासी तथा समान विचारधारावाले लोगों का समूह ।[8]

महादेवी वर्मा के शब्दों में ‘समाज केवल भीड़ का पर्याय नहीं होता । ‘समाना अजंति’ समान संचरणशील व्यक्ति-समूह ही समाज है ।”[9] “समाज प्राणियों के उस समूह को कहते हैं, जिसमें वे एकत्र होकर रहते हैं, खाते-पीते हैं, जीवन-यापन की सुख-सुविधाओं की उपलब्धि का प्रयास करते हैं तथा रागद्वेष में लीन होकर अपनी-अपनी वैयक्तिक एवं सामूहिक सत्ता को बनाये रखने के लिए संघर्ष करते रहते हैं ।”[10]

आज ‘समाज’ से अभिप्राय केवल व्यक्तियों के समूह से ही है अर्थात् जहाँ अधिकांश व्यक्ति एकत्र जीवन-यापन करते है, विविध प्रकार के जीवनोपयोगी कार्यों में संलग्न रहते हैं, विविध प्रकार की उन्नति के लिए सामूहिक एवं वैयक्तिक रूप से प्रयत्न करते रहते हैं तथा विविध प्रकार की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं आर्थिक प्रगति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं - उसीको ‘समाज’ कहते है ।

विश्व पहले विविध भागों में विभाजित था और प्रत्येक भाग पृथक एवं असम्बन्धित था । परन्तु विज्ञान ने आज न केवल समय की दूरी कम की है, अपितु स्थान की दूरी भी पूर्णतया कम कर दी है और विश्व के सभी भागों को परस्पर सम्बन्ध-सूत्र में बाँध दिया है । इसलिए आज किसी एक भू-भाग के समाज की चर्चा नहीं की जाती, अपितु विश्वभर के मानवों का एक समाज माना जाता है और ‘समाज’ कहने से सम्पूर्ण मानव-समाज का बोध होता है ।

इस प्रकार समाज से अभिप्राय मानवों के उस समूह से है, जो इस भू-मण्डल पर निवास करता है, जो जीवन-यापन की विविध सुख सुविधाओ

के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है, जो पारस्परिक राग-द्वेष से आबद्ध होकर भी अपनी वैयक्तिक एवं सामूहिक प्रगति के लिए प्रयास करता रहता है, जो विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान से समृद्ध होकर अपनी भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में संलग्न रहा आया है, जो अधिकाधिक शक्तियों का संचय करके अपने अस्तित्व की रक्षा में तल्लीन रहता है तथा जो विविध साधन-सामग्री जुटाकर प्रकृति से संघर्ष करता हुआ अपनी सत्ता को सर्वोपरि सिद्ध करने में दत्तचित रहा आया है ।

साहित्य और समाज :

"मनुष्य के जीवन का जितना अंश नीति, शिक्षा, आचार आदि सामाजिक संहिताओं के संपर्क में आता है, उतना ही समाज द्वारा शासित माना जाएगा ।"[11]

साहित्य के उद्देश्य के संबंध में महादेवी वर्मा का कहना है कि - "समाज के अनुशासन के बाहर स्वच्छंद मानव-स्वभाव में, उसकी मुक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए समाज के लिए अनुकूलता उत्पन्न करना है ।"[12] "सामाजिक जीवन की विविध स्थितियों एवं परिस्थितियों को चित्रित करना ही साहित्य का एकमात्र कार्य है ।"[13]

"साहित्य समाज में से ही कथावस्तु ग्रहण करता है, समाज से विविध चरित्रों को लेता है और उन्हीं के माध्यम से ज्ञान-विज्ञान की विचार आदि प्रस्तुत करता है । साहित्य की रचना करने के लिए जिस ईंट, चूना, गारा, सीमेन्ट, पत्थर आदि की आवश्यकता होती है । वे सभी पदार्थ समाज से मिलते हैं और प्रतिभाशाली साहित्यकार अपने-अपने साहित्य का निर्माण करने के लिए समाज से अपेक्षित सामग्री उचित मात्रा में ग्रहण किया करते हैं ।"[14]

साहित्य को मंगलमय एवं श्रेयस्कर बनाने में समाज का ही योगदान रहता है । साहित्य के निर्माण में समाज महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । वैसे समाज के निर्माण में साहित्य का भी महत्वपूर्ण योगदान है । क्योंकि साहित्य ही समाज के भ्रमित मानवों को जीवन के महत्व की शिक्षा देता है, जीवन यापन के ढंग सिखाता है, व्यावहारिक ज्ञान का उपदेश देता है, विविध प्रकार की मनोवृतियों से परिचित करवाता है । साहित्य समाज को आदर्श

सिखाता है, परम्परागत विचारों से अवगत कराता है, साहित्य ही समाज को अतीत जीवन की सफलता एवं विफलता से अवगत कराकर भविष्य का मार्ग दिखाता है । "साहित्य का एकमात्र लक्षण जीवन की व्याख्या करना है ।"[15] साहित्य समाज की प्रज्ञा है, वह समाज को अच्छे-बुरे की परख सिखाता है ।

साहित्य हमारा भूत, भविष्य और वर्तमान प्रकट करता है । साथ ही भीरु व्यक्ति में भी वीरता का संचार साहित्य करता है । जिसका उदाहरण वीरगाथाकाल का चारण-साहित्य है ।

आधुनिक काल में साहित्य ने अपनी करवट बदली और उसने राष्ट्र-प्रेम, स्वदेश-भक्ति एवं जन-जागरण के गीत गाने आरंभ किए तो भोग-विलास की मादक निद्रा छोड़कर भारतीय समाज स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़ा । उसने सुख-वैभव का परित्याग करके अंग्रेज़ी शासकों की यातनाओं के विरोध में 'रंग दे बसन्ती चोला' पहन के फाँसी के तख्ते पर झूलने में कोई संकोच नहीं किया । यह साहित्य का ही प्रभाव है जो मनुष्य को कुर्बानी देने की शक्ति देता है । मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि की कविताओं द्वारा भारतीय समाज में जागृति उत्पन्न हुई । साहित्य ने रासबिहारी बोस एवं सुभाषचंद्र बोस को सुदृढ़ साम्राज्य से टकराने की सामर्थ्य प्रदान की है । तिलक, गांधी, नहेरू जैसे देश के नेताओं को देश के सर्वांगीण विकास के लिए प्रेरित किया है ।

साहित्य और समाज का यह संबंध चिरकाल से चला आ रहा है । साहित्य और समाज परस्पर एकदूसरे के पूरक हैं ।

'विचार और वितर्क' में द्विवेदी जी ने लिखा है - "हमारे सारे प्रयत्न मनुष्य के लिए हैं । हमारे सब प्रयत्नों का एक ही लक्ष्य है कि मनुष्य वर्तमान दुर्गति के पंक से उद्धार पाये और भविष्य में सुख और शांति से रह सके । मनुष्य के लिए ही साहित्य दर्शन, इतिहास, राजनीति आदि बनते हैं ।"[16]

प्रगतिशील साहित्य की अवधारणा :

"प्रगतिशील साहित्य से मतलब उस साहित्य से है जो समाज को आगे बढ़ाता है, मनुष्य के विकास में सहायक होता है । जब यह प्रश्न किया

जाता है - "क्या प्रगतिशील होने से साहित्य श्रेष्ठ हो जाता है तो इसका मतलब शायद यह होता है कि साहित्यिक न होने पर भी कभी-कभी कोई कृति विषयवस्तु के कारण ही प्रगतिशील और श्रेष्ठ मान ली जाती है । उदा. के लिए बंगाल में अकाल पड़ा । बहुत लोगों ने उस पर कविताएँ लिखीं । किसी विशेष कविता में मार्मिकता नहीं है फिर भी वह तर्क-संगत समाज हितैषी बात कहती है तो क्या उसे श्रेष्ठ मान लिया जाये ? इस प्रश्न का सीधा उत्तर यह है कि प्रगतिशील साहित्य तभी प्रगतिशील है जब वह साहित्य भी है । यदि वह मर्मस्पर्शी नहीं है, पढ़नेवाले पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता, तो सिर्फ नारा लगाने से या प्रचार की बात कहने से वह श्रेष्ठ साहित्य क्या साधारण साहित्य भी नहीं हो सकता ।" साहित्य की प्रगतिशीलता का प्रश्न वास्तव में समाज पर साहित्य के शुभ-अशुभ का प्रश्न है ।"[17] आ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है - "साहित्य की रचना भले कामों के समान मनुष्य को सुखी बनाने के लिए ही की जाती है । वह शास्त्र, वह रसग्रंथ, वह कला, वह नृत्य, वह राजनीति, वह समाजसुधार और वह पूजा-पार्णव जंजाल मात्र है, जिससे मनुष्य का भला न हो ।"[18]

आधुनिक साहित्य और समाज :

परिवेश के अनुसार साहित्य के मानदण्ड बदलते रहे हैं । भक्तिकाल का साहित्य सामाजिक क्रांति के लिए महत्वपूर्ण रहा । उसके बाद रीतिकाल में साहित्य में केवल लक्ष्य-लक्षण ग्रंथों का निर्माण हुआ जो समाज में कोई परिवर्तन नहीं ला सका ।

आधुनिक काल में साहित्य युगीन परिवेश से सम्पृक्त है । वह चाहे भारतेन्दुकाल हो या प्रगतिवाद । छायावादी कवि अवश्य अधिक व्यक्तिनिष्ठ रहे । छायावादी साहित्य अधिक समय अपना अस्तित्व बनाये नहीं रख सका और सूक्ष्म के प्रति स्थूल के विद्रोह के रूप में प्रगतिवाद का उदय हुआ । इसमें युगीन संवेदना के स्वर हैं । भारतभूषण की यह कविता 'बाप बेटा बेचता है, भूख से बेहाल होकर' तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक विडम्बना को दर्शाती है । आधुनिक साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थ का साहित्य रहा है । जिसमें भारतेन्दु से लेकर मैथिलीशरण गुप्त, पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा,

मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', महेन्द्र भटनागर आदि सम्मिलित हैं। प्रगतिवाद युगानुरूप साहित्य सर्जन करने में प्रवृत रहा ।

महेन्द्र भटनागर के सामाजिक सरोकार :

कवि महेन्द्र भटनागर के साहित्य की शुरुआत कविता-लेखन से हुई। कविता लेखन का प्रारंभ 1941 से हुआ । कवि महेन्द्र अपने साहित्य सृजन के लक्ष्य के प्रति सजग कवि हैं । यथा :

"क्योंकि हम इतिहास के आरंभ से
इन्सानियत में
शांति में विश्वास रखते हैं,
गौतम और गांधी को हृदय के पास रखते हैं !
किसी को भी सताना
पाप सचमुच में समझते हैं,
नहीं हम व्यर्थ में पथ में
किसी से जा उलझते हैं ।"[19]

उक्त कविता से स्पष्ट है कि कवि महेन्द्र भटनागर के साहित्य का उद्देश्य मानव-समाज में शांति स्थापित करना और गांधी-गौतम की तरह 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त का अनुसरण करना है ।

बिखराव और अनास्था के इस कालखंड में लोगों को एकदूसरे के निकट लाना ही कविता का प्रयोजन बनता जा रहा है । स्वभावतः श्रेष्ठ और स्मरणीय कवि की पहचान का अब यही आधार बन गया है कि उसकी रचनाकारी में मनुष्यों को एकजुट करने का कौशल कितनी नव्यता और भव्यता के साथ है । भावों की एकसूत्रता, विचारों की एकतानता और सामूहिक सजगता के जिन अभिलक्षणों के कारण आज की कविता अपने लक्ष्य तक पहुँच रही है, उन सारे उपकरणों का सम्यक समाहार कवि डॉ. महेन्द्र भटनागर की कविताओं में उपलब्ध है । प्रेम और दंश, राग और विरोध, व्यंग्य और आस्था की जैसी विविधता इन कविताओं में है वह दुर्लभ है ।"[20]

"कृति के पीछे उसका कर्ता और कर्ता के पीछे उसका युग विद्यमान रहता है ।"[21]

"साहित्य और साहित्यकार के अंत:संबंध की तरह साहित्यकार और उसके सामाजिक परिवेश के अंत: संबंध की अनिवार्यता भी स्वयं सिद्ध ही है - और जिस प्रकार साहित्य तथा साहित्यकार का संबंध ऋजु-सरल न होकर प्राय: आड़ा-तिरछा, जटिल एवं अप्रत्यक्ष होता है, इसी प्रकार साहित्यकार और उसके सामाजिक परिवेश का संबंध भी प्राय: जटिल एवं अप्रत्यक्ष ही होता है ।"[22]

"साहित्यकार के सामाजिक व्यक्तित्व का निर्माण सामान्यत: उसकी सांस्कृतिक परंपराओं, जिनमें धार्मिक विश्वासों और नैतिक मूल्यों का प्रमुख योग रहता है, वृत्ति-व्यवसाय, जाति-वर्ण तथा आर्थिक स्थिति के आधार पर होता है । व्यक्तित्व का यह रूप सामाजिक मनोविज्ञान का विषय है । साहित्यकार का सामाजिक व्यक्तित्व स्वभावत: बहिर्मुख तथा लोकनिष्ठ होता है और अपने सामाजिक परिवेश से अत्यन्त सचेत भाव से जुड़ा रहकर उसके प्रति अपने दायित्व का पूरी ईमानदारी के साथ निर्वाह करता है ।"[23]

इस प्रकार साहित्यकार के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति अपने आसपास के माहौल, परिवेश, रीति-रिवाज़, विचारों और घटनाओं के परिप्रेक्ष्य में होती है ।

साहित्यकार के सामाजिक सरोकार के पीछे प्रत्येक लेखक या कवि की सामाजिक स्थिति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

"एलिजाबेथ के समय तक अधिकांश लेखक भद्र समाज के सदस्य होते थे।"[24] 19वीं शती में अधिकांश लेखक व्यवसायी मध्य वर्ग के परिवारों के थे । ये प्राय: सभी विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त कर चुके थे और उन्हें जीविका के अन्य साधन भी उपलब्ध थे । "वर्तमान शती के उत्तरार्ध में लेखक का मानदेय क्रमश: कम होता गया जिसका प्रभाव उसकी सामाजिक स्थिति पर भी पड़ा ।"[25]

लेखक के साहित्य को उसकी सामाजिक स्थिति के साथ आर्थिक स्थिति भी प्रभावित करती है । "इन लेखकों के व्यवसायों का सीधा संबंध चाहे उनके साहित्य से न रहा हो, फिर भी उसका अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य ही देखा जा सकता है । बंकिमचंद्र अथवा रवीन्द्रनाथ के साहित्य में अफ़सरी या

जमींदारी का रौब-दाब न हो या प्रसाद के काव्य में सुंघनी की गंध न आती हो, परंतु उनकी कला में विद्यमान आभिजात्य तथा गरिमा के तत्व इनके सामाजिक जीवन से एकदम असम्बन्ध नहीं हैं ।"[26]

प्रेमचंद का जीवन साहित्यकार के संघर्ष का जीवन्त प्रमाण है । जीवनभर संघर्ष से जुड़े इस साहित्यकार ने हर पीड़ित व्यक्ति की तड़प को महसूस किया और उसकी वेदना को वाणी प्रदान की है ।

डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में - "साहित्य मानव-समाज की भावनात्मक स्थिति और गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है । अतः उसके प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य के परिवेश का बहुत महत्व है ।"[27]

प्रगतिशील साहित्य का आविर्भाव 'युग की पुकार' के रूप में हुआ है । छायावादी कवि जहाँ प्रकृति-चित्रण में रमा रहा है; वहीं प्रगतिशील कवि सांस्कृतिक पुनरुत्थान और युग-चेतना की भावना से साहित्य में प्रवृत्त हुआ । "प्रगतिवाद अति काल्पनिक उड़ान भरनेवाली" कल्पना को "एक हरी-भरी ठोस जनपूर्ण धरती" पर उतार कर उसे जन-जीवन का चित्रण करने के लिए प्रेरित किया । जिस समय छायावाद व्यष्टि की साधना में तन्मय, जगत की वास्तविकता की ओर से आँखें बंद किए, आत्म-विभोर होकर आगे बढ़ा जा रहा था, उसी समय जगत की नग्न वास्तविकता - 'रोटी का राग' और 'क्रांति की आग' लिए प्रगतिवाद आगे आया और उसने झकझोर कर साहित्यकार को एक नवीन चेतना का आलोक दिखाया ।"[28]

महेन्द्र भटनागर प्रगतिवाद के द्वितीय उत्थान के केन्द्रीय कवि माने जाते हैं । प्रकृति से कविता की प्रेरणा पाकर कवि जनजातीय चेतना की ओर उन्मुख हुआ । "उनकी रगों में देश-प्रेम, आज़ादी, समाजार्थिक समानता और जातीय संस्कृति का रक्त सदा प्रवाहित होता रहा है ।..... बदलाव की बेचैनी, परिवर्तन की कामना से उद्वेलित कवि का मन जनता को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए सदा तत्पर रहा है । सामाजिक न्याय, समाजार्थिक समानता के बिना समाज की मुक्ति संभव नहीं । लोक-मुक्ति की कामना उनके कवि-कर्म की प्राथमिकता है ।"[29]

महेन्द्र का कवि नवयुग का अग्रदूत, नयी व्यवस्था का निर्माता और नवजीवन का गायक है । 'अभियान' काव्य-कृति की निम्नलिखित पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं :

परिवर्तन का आकांक्षी हूँ, मंथन कर सकता सागर का,
वह भीषण आँधी हूँ, जिससे कँपता वक्षस्थल अंबर का,
मैं नवयुग का अग्रदूत हूँ, नयी व्यवस्था का निर्माता,
सजग चितेरा, नव समाज को मैं चित्रित करनेवाला हूँ
मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग को निर्मित करनेवाला हूँ ।

आसमान की ओर देखते समय भी कवि अपनी ज़मींन को नहीं भूला। दलित-शोषित मानवता के प्रति कवि का यह सरोकार जो उसके कवि जीवन के प्रारंभिक चरण से अभिव्यक्त हुआ, आगे चलकर निरन्तर बना रहा । कवि समाज का 'सजग चितेरे' बनकर साहित्य में प्रवृत हुआ ।

डॉ. रणजीत महेन्द्र भटनागर को 'केन्द्रीय वर्ग के कवि' में रखते हैं । उनका मानना है कि - "अन्य वर्गों के कवियों की अपेक्षा इस वर्ग के कवियों में एक प्रखर सामाजिक चेतना और राजनीतिक जागरूकता मिलती है । सामाजिक यथार्थ इन कवियों की प्रधान-विषय-वस्तु है ।"[30]

काव्य की सार्थकता के संदर्भ में डॉ. कैलाशनाथ उपाध्याय का कथन है कि - "कवि और उसका काव्य समाज के लिए तभी उपयोगी होते हुए दीर्धकाल तक जीवित रह सकता है जबकि वह युग एवं समाज की यथार्थ स्थितियों से अपना तादात्म्य स्थापित करके चलेगा ।"[31]

कवि महेन्द्र अपने लक्ष्य के प्रति आस्थावान हैं । वे जीवन तथा समाज के वर्तमान एवं भविष्य के प्रति भी आस्थावान हैं । उनका कथन है, "निरन्तर राह पर चलते रहोगे तो तुम्हारा लक्ष्य तुमसे आ मिलेगा एक दिन, हिम्मत न हारो ।"[32] इस तरह कवि निराशा के क्षणों में मानव को - आशा बनाये रखने की प्रेरणा देता है ।

विश्वव्यापी पीड़ित मनुजता के दुःख को दूर करना कवि का लक्ष्य है। पीड़ित मनुजता ही उसकी मूल प्रेरक शक्ति है । कवि उसे जगाकर नये जीवन का संदेश सुनाता है :

“ओ मनुजता की

करुण, निस्पन्द, बुझती ज्योति,

मेरे स्नेह से भर प्रज्ज्वलित हो जा !”

सामाजिक सरोकार के प्रमुख आधार हो सकते हैं -

अ. उच्च-वर्ग

ब. उच्च मध्य-वर्ग

क. मध्य-वर्ग

ग. संघर्षरत मध्य-वर्ग

घ. निम्न-वर्ग

च. सर्वहारा-वर्ग

उच्चवर्ग से सामाजिक सरोकार :

कवि महेन्द्र सर्वहारा-वर्ग के प्रतिनिधि हैं । भारतीय समाज में ब्राह्मणों को उच्च-वर्ग में स्थान दिया गया है । मनु के अनुसार ब्राह्मण समाज का उच्चवर्ग है और उसके निर्देश से समाज व्यवहार चलना चाहिए । सर्वहारा-वर्ग के कवि महेन्द्र का नहीं, ब्राह्मणों को पतनशील पुरोहहित वर्ग को मिटा देना चाहते हैं । समाज की दुर्गति इसी वर्ग द्वारा हुई; हो रही है । यथा :

“ये पंडित पोथीवाले
लाल तिलक वाले
पगड़ीवाले लाला लोग
कि रोज़ लगाते मोहन-भोग
आज हमारे जानी दुश्मन !
इनने ही बरबाद किया है जीवन !”[33]

कवि मंदिरों को धनिकों के अय्याशी के अड्डे[34] कहता है । कवि उच्च-वर्ग की विलासिता को मिटाना चाहता है ।

कवि पराजय का अनुभव करता है । उसे चारों ओर प्रलोभन का

बोलबाला दृष्टिगत होता है । मुक्त-जीवन के चिह्न नहीं बल्कि सर्वत्र शोषण-ही-शोषण है ।

'स्वार्थ की दुर्भावना से मिट रहा संसार !

मिल रही है हार !'[35]

कवि उच्च-वर्ग द्वारा हो रहे शोषण को सहन नहीं कर पाता । वह "पीड़ित मानवता की जय-हित"[36] प्रलय की हुंकार[37] भर कर नव-जागरण लाना चाहता है । यथा :

"मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग को निर्मित करनेवाला हूँ !"[38]

इस तरह कवि उच्च वर्ग के विरूद्ध में क्रांति-पथ पर आगे बढ़ता गया है ।

उच्च मध्य-वर्ग :

उच्च मध्य-वर्ग भी दलित-पीड़ित वर्ग का शोषण करता है । पूँजीपति-वर्ग भी इसमें आता है । कवि महेन्द्र ने इस वर्ग को खून चूसनेवाला बताया है । 'मेरे देश में' कविता में कवि ने इस वर्ग का पर्दाफ़ाश किया है । उच्च मध्य-वर्ग के कारण देश शोषण की आग में जल रहा है । कवि कहता है :

"आज
चमगादड़ों का, उल्लुओं का,
मौत के सौदागरों का,
खून के प्यासे हज़ारों दानवों का
ज़िन्दगी के दुश्मनों का
भूत की छाया सरीखा
आज डेरा ।"[39]

इस वर्ग ने समाज को कमजोर बना दिया है । कितने ही किसानों के खेत बरबाद कर दिये हैं । आज करोड़ों लोग भूखे और विवश हैं । प्रेमचंद ने भी 'गोदान' उपन्यास में होरी और धनिया के माध्यम से उच्च मध्य-वर्ग की शोषण-नीति के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं । ऐसी स्थिति में व्यक्ति मुश्किल से जी पाता है, निदान, उसे किसी के द्वार पर 'दम तोड़ना'[40] पड़ता है ।

कवि उच्च-वर्ग की शोषणवृत्ति से भयभीत नहीं; बल्कि दृढ़ होकर उसके विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद करता है । यथा :

"दृढ़ आवाज़ बंदी है नहीं !

कल देख लेना

ज़िन्दगी कैसे बदलती है ।"[41]

'देशी रजवाड़े' में कवि जनता के दुश्मन तथाकथित राजा-महाराजाओं को 'विलासी' कहता है । यथा :

'राजा और नवाब विलासी

महलों में सुख के भर साधन ।'[42]

इस तरह कवि महेन्द्र भटनागर ने उच्च मध्य-वर्ग को शोषक के रूप में चित्रित किया है । यथा :

मुझे याद तेरा क्रूर पागल रूप हत्यारा,

बहायी थी जमीं पर बेरहम जब रक्त की धारा

जलाये गाँव थे पूरे, उजाड़ी बस्तियाँ अगणित

मुझे है याद ज़ुल्मों का दमन इतिहास वह सारा !

उच्च वर्ग की शोषण-प्रथा और जुल्म-नीति का कवि विरोध करता है। उसने सामान्य जन की उन्नति और उसकी मंगल-भावना के गीत गाये हैं ।

कवि महेन्द्र और मध्य-वर्ग :

कवि मध्य वर्ग के कदम-से-कदम मिलाकर चलता है । 'नौ सैनिक विद्रोह'[43] का कवि स्वयं युद्ध के मैदान में लड़ता 'जयहिन्द !' का नारा लगाता सैनिक छावणी में राष्ट्र मुक्ति का नारा लगाता है । यथा :

"हिंद फौज़ का स्वतंत्र वीर

गिरि, समुद्र, वन विशाल चीर,

मृत्यु-द्वार-सा मिला समीर,

आफ़ते कठिन, चरण रुके न

पंथ पर, सदा बढ़े प्रवीण !"[44]

'मिल-मज़दूर' कविता में कवि महेन्द्र भटनागर मज़दूर के यांत्रिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हैं, तो मध्यवर्ग (चित्र एक) में मेंघों से घिरे आकाश में अन्धकार से भरे मध्य-वर्ग की जीवन का मध्य-वर्ग की दयनीय स्थिति का बड़ा सटीक वर्णन 'मध्य-वर्ग' (1 और 2) शीर्षक कविताओं में हुआ है । वर्षा में जिनके मकान की छत टपकती है और उसी मकान में माँ शिशु को जन्म देती है । कवि कहते हैं -

"मगर यह ज़िन्दगी इन्सान की

मरती नहीं,

रह-रह उभरती है ।"

दूसरे दृश्य में, रात के दस बजे तक काम के बोझ-तले डूबे कन्या के पिता को जो अपनी लड़कियों की शादी के लिए चिंतित है । बेचेनी चित्रित है ।

मध्य-वर्ग का व्यक्ति ज़िंदगी की शाम आते-आते थक जाता है । उसे यह शाम (बुढ़ापा) अप्रिय लगती है । क्योंकि मध्य-वर्ग का व्यक्ति अपनी ज़िम्मेदारियों का बोझ ढोते-ढोते मृतप्राय हो जाते है । कवि मध्य वर्ग की वेदना को वाणी देता है -

"जो दुर्दशा का पात्र,

भागी, कटु हलाहल घूँट जीवन का

मरण-अभिसार का

निर्जन भयानक पंथ का राही

थका, प्यासा, बुभुक्षित !"

कवि ज़िन्दगी से थके मध्य-वर्ग जीवन में नया सवेरा लाना चाहता है; जिससे सब दिशाएँ प्रज्ज्वलित हो ।"[45]

मध्य-वर्ग का सपना था कि आजादी के बाद अपनी जमीं अपना जहाँ होगा; जिसमें सबको सुख-चैन मिलेगा । मगर यह ख्वाब उसका पूरा न हुआ । 'आजादी का त्यौहार' में कवि ने दयनीय आर्थिक स्थिति का निरूपण किया है । यथा :

लज्जा ढकने को

मेरी खरगोश सरीखी भोली पत्नी के पास

नहीं है वस्त्र

कि जिसका रोना सुनता हूँ सर्वत्र[46]

कवि महेन्द्र भटनागर इनकी रक्षा को ही आज़ादी का त्यौहार मानते हैं ।

कवि महेन्द्र की संवेदना मध्य वर्ग और दलित-पीड़ित वर्ग से जुड़ी हुई है । वह आज भी उनकी सिसकियों में अभावों को महसूस करते है । यथा :

अब भी तुम उनकी लम्बी सिसकी सुन सकते हो

जो वे सोते में

रह-रह कर भर लेते हैं ।[47]

कवि शोषकों को सावधान करता हुआ कहता है कि लोभी गिद्धो ! यदि तुमने इसके फल-फूलों पर अपनी दृष्टि गड़ाई तो आज़ादी की लड़ाई फिर करनी पड़ेगी ।''[48]

निम्न-वर्ग के प्रति महेन्द्र भटनागर के सामाजिक सरोकार :

आसमान की ओर देखते समय भी कवि ज़मीन को नहीं भूला । दलित-शोषित मानवता के प्रति कवि का यह सरोकार, जो उसके कविजीवन के प्रारंभिक चरण से अभिव्यक्त हुआ, आगे चलकर निरंतर बना रहा । सन 1941 से महेन्द्र भटनागर का काव्य 'दलित-चेतना' से उद्‌बुद्ध है ।

कवि अपने को सर्वहारा-वर्ग का प्रतिनिधि मानता है । उनके हृदय में देश के लिए जो प्रेम है, वह उनकी कविताओं में देखने को मिलता है । यथा :

'आज़ादी आन्दोलन में सिर देनेवाले सैनिक' ('बलिपंथी')

यहाँ वह एक एक सिपाही बन गया है जो शोषित-पीड़ित प्रजा का उद्धारक बनकर आता है । उनके लिए वह स्नेह-ममता की भीख मांगता है । यथा :

''मैं लिए हूँ प्राण की रिक्त झोली

माँगता हूँ स्नेह निर्मल ।''[49]

कवि महेन्द्र भटनागर की झोली निराला के 'भिक्षुक' से साम्य रखती है ।

कवि महेन्द्र को यथार्थ की गहरी अनुभूति आकुल बनाये रखती है । प्यार के सपने उसे टूटते दृष्टिगोचर हो रहे हैं । वह चाहता है कि जगती का कण-कण मित्र बन जाये तथा विवशता, घुटन व दुःख संगीत में बदल जाये ।[50]

कवि महेन्द्र के गीतों को विषय की दृष्टि से चार विभागों में वर्गीकृत किया जा सकता है

(क) राष्ट्रीय और समसामयिक घटनाओं पर आधारित कविताएँ ।

(ख) सामाजिक विषमता एवं संघर्ष की कविताएँ ।

(ग) प्रकृति-चित्रण संबंधी कविताएँ और

(घ) वैयक्तिक कविताएँ ।[51]

कवि महेन्द्र की धारणा है कि : "सामयिकता की अवहेलना करके कोई भी कवि समाज के लिए कल्याणकारी साहित्य का सृजन नहीं कर सकता ।"[52]

राष्ट्रीय और समसामयिक घटनाओं पर आधारित कविताओं में कवि महेन्द्र ने राष्ट्रीय तथा समसामयिक जीवन को आन्दोलित करनेवाली अनेक सशक्त घटनाओं का चित्रण किया है । अपनी 'कला' शीर्षक कविता में कवि कहता है :

"व्यक्त सिर्फ़ आज के सवाल चाहिए
तम नहीं प्रभात लाल-लाल चाहिए
व्यक्ति की करुण कराह है उतारनी
आग जो दबी उसे पुनः उभारनी ।"

(टूटती श्रृंखलाएँ : 'कला')

समसामयिक जीवन में जनता की जो कराह कवि ने अनुभव की है; उसे अपने काव्य में मूर्त कर दिया । 'बंगाल के अकाल' में समाज की दयनीय स्थिति का चित्रण है, 'नौ सैनिक विद्रोह' में विद्रोह स्वर है, 'जयहिन्द' में

कवि सैनिक बन गया है; ‘साम्प्रदायिक दंगे’ में हिन्दू-मुस्लिम समाज को अपने ईमान की याद दिलाता है । ‘देशी रजवाड़े’ में देशी नरेशों ने देश को कैसे बरबाद किया इसकी करुण कथा है, ‘मलान सावधान’ में रंग-भेद का विरोध है, ‘मालवा में अकाल’ सामाजिक पतन का चित्रण करती है । ‘माओं और चाऊ के नाम’ में ‘हिन्दी-चीनी भाई-भाई’ का छद्म चित्र है ।

सामाजिक विषमता की कविताओं में कवि सर्वहारा-वर्ग के रक्षा के लिए युद्ध करता नज़र आता है । वह कहता है :

‘आज जीवन के सभी मैं तोड़ दूँगा लोह-बंधन
शोषितों को आज अर्पित प्राण की प्रत्येक धड़कन !’

शोषितों का पक्ष लेकर कवि शोषकों पर हमला करने से घबराता नहीं। कवि का विश्वास है कि शोषित-वर्ग द्वारा क्रांति किये जाने पर ही, सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो सकेगा । शोषित-वर्ग को वह क्रांति के लिए प्रेरित करता है :

“हमला ज़रूरी है
कि देशों, जातियों वर्गों
सभी की परस्पर की
मिटाना आज दूरी है !”

(नई संस्कृति : नई चेतना)

कवि शोषित वर्ग की शक्ति पर विश्वास करता है । उसकी धारणा है कि अन्तिम विजय शोषित वर्ग की होगी । क्योंकि शोषित श्रमिक वर्ग धरती का मूलाधार है । वह कहता है :

‘इन श्रमिकों के बल पर ही,
टिकी हुई है धरती,
इन श्रमिकों के बल पर ही
दीखा करती है
सोने-चाँदी की ‘भरती”

(जिजीविषा : श्रमिक)

कवि महेन्द्र भटनागर भारतीय नारी को भी शोषित निम्न-वर्ग के रूप में देखते हैं । सामन्त युग से आज तक नारी की स्थिति दयनीय रही है। कवि अब उसी नारी को पुरुष के समान अधिकारों से सम्पन्न एक समतल आधार-भूमि पर प्रतिष्ठित देखना चाहता है । नारी को संबोधित करते हुए कवि कहता है :

तुम नहीं कोई पुरुष की

ज़र-ख़रीदी चीज़ हो ।

(बदलता युग : नई नारी)

कवि महेन्द्र पूर्ण रूप से नारी सशक्तीकरण के साथ है । नारी की स्थिति सुधरे - आज यह प्रगतिशील समाज चाहता है । कवि नारी से कहता है कि तुम प्राचीन व्यवस्था को बदलो, आज तुम्हारे साथ जगका नवयौवन है। यथा -

है साथी जग का नव-यौवन,

बदलो सब प्राचीन व्यवस्था,

वर्ग-भेद के बंधन सारे

तुम आज मिटाने को आयीं ।

(अभियान : 'नारी')

कवि इस कार्य को शीघ्र से शीघ्र करने को कहता है 'जल्दी करो जल्दी करो' क्योंकि उसे आगे बढ़ाकर 'विश्व को चुनौती देनी है ।'[54] क्योंकि विश्व में दुःख, दर्द गरीब प्रजा के लिए ही होते है; अमीरों के लिए यह कोई समस्या नहीं । यथा :

'अकाल है गरीब के लिए

दर्द, भूख, त्रास, दुःख हैं

गरीब के लिए !

मिट रहा अशक्त सिर्फ़ वर्ग यह !

सेठ के मकान में भरा अनाज है
ज़मीनदार के मकान में भरा अनाज है,
कौन जीव एक जो उदास है ?'[55]

यहाँ 'कौन जीव' से शोषक की ओर कवि का संकेत है ।

कवि नवयुवकों को शोषित-पीड़ित वर्ग की उन्नति हेतु संघर्ष करने का आह्वान करता है । वह कहता है कि

'उट्ठो युवको !
धरती तुमसे जीवन माँग रही है !
जीवन तुमको देना होगा ।'[56]

कवि डॉ. महेन्द्र भटनागर को "विश्व की दीन-दुःखी तथा शोषित-उपेक्षित जनता के प्रति असीम प्रेम, साम्राज्यवादी विस्तार तथा पूँजीवादी उत्पीड़न से घृणा, युद्ध और संहार से नफ़रत, श्रमजीवी किसान तथा मज़दूर जनता से प्रेम, स्वदेश की सांस्कृतिक गरिमा पर गर्व, भारत के प्राकृतिक वैभव के प्रति लगाव, व्यक्तिवादी तटस्थता से विरोध, मानव के सांस्कृतिक तथा नैतिक-पतन पर विक्षोभ, देश की ग़रीबी मिटाने की अदम्य अभिलाषा, समस्त मानवता के लिए सुख और समृद्धिदायक स्वर्ग सदृश नई दुनिया बसाने की चाह, पतनोन्मुख मानव के उत्कर्ष की लालसा, आत्मशक्ति में अडिग विश्वास, मानवीय संवेदना और विश्वमानव के उत्कर्ष की भावना है ।"[57] समाज के हर प्रताड़ित व्यक्ति को वह अपने स्नेह का सम्बल प्रदान करते है ।

उनकी कविता में वर्गीय चेतना के स्वर अधिक मुखर हुए हैं ।

सर्वहारा-वर्ग :

सर्वहारा-वर्ग के प्रति सहानुभूति, कवि महेन्द्र की वर्गवादी चेतना का पक्ष है । कवि उसके कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहा है । उसका विश्वास है - पूँजीवादी शोषण-व्यवस्था को नष्ट किये बिना सर्वहारा वर्ग का कल्याण संभव नहीं है । उसकी दृष्टि में 'पूँजीवाद तानाशाह - भू - नासूर फोड़े पीब' हैं । सर्वहारा-वर्ग की अदम्य शक्ति के बल पर कवि शोषक-वर्ग के संसार को चुनौती देता हुआ कहता है :

पीड़ित, त्रस्त शोषित सर्वहारा की
उमड़ती बाढ़-सी धारा,
लगाकर यह गगन भेदी सबल नारा -
नई दुनिया बनानी है ।!

(नई दिशा)

वर्गीय चेतना के स्वर, देश की स्वतंत्रता के बाद, और भी अधिक मुक्त-कंठ से गूँजे हैं । साम्राज्यवाद से मुक्त होकर जनता स्व-राज्य स्थापित करने आगे आई है । कवि महेन्द्र जनता के राज्य और अधिकार का नारा लगाता हुआ, सर्वहारा-वर्ग पर सदियों से हो रहे अन्याय, अत्याचारों का बदला लेना चाहता है :

करोड़ों मूक श्रमजीवी
उठो, प्रतिशोध लो

(मेरे हिन्द की संतान)

सर्वहारा-वर्ग को समता के स्तर देखने का इच्छुक कवि कहता है कि 'हर आदमी को आदमी का वेश दो !' (युग और कवि)

कवि का संकल्प है :

"हमारा स्नेह
पीड़ित ध्वस्त दुनिया के लिए अवशेष है !
हमारे हाथ
गिरतों को उठाएंगे,
हज़ारों मूक, बंदी, त्रस्त, नत
भयभीत घायल औरतों को
दानवों के क्रूर पंजों से बचाएंगे ।"

(बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे !)

इस तरह, महेन्द्र भटनागर का काव्य समाज की अनेक पर्तों को खोलता हुआ, जहाँ भी समाज की सड़न गलन है उसको चीरता और नया सर्जन करता हुआ आगे बढ़ता रहा है; जिससे समाज में कोई शोषित पीड़ित दलित न रहे । डॉ. विनयमोहन शर्मा के शब्दों में कहें तो - "कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में अद्यतन युग का स्वर है । नवीनता है पर उनमें नई कविता का वह 'वाद' नहीं है जो अमर्यादित विकारों का भौंड़ापन प्रदर्शन करने में आधुनिकता-बोध का सगर्व विज्ञापन करता है ।"

समाज के पीछड़े वर्गों की उन्नति व उत्कर्ष करना, उन्हें जागृत करना कवि महेन्द्र का कर्म और धर्म रहा है । कृषक से लेकर मिल-मज़दूर और पंडों से लेकर भिखारिन तक को कविता में स्थान देकर उन्होंने समाज में क्रांति लानी चाही है ।

5.2 *मानवतावाद और महेन्द्र भटनागर का काव्य :*

5.2.1 *'मानवतावाद' शब्द का अर्थ :*

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'मानवता' का अर्थ आदमियत, इन्सानियत, मनुजता, मनुष्यता[58] बताया है, जबकि डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', 'मानवता' के "मनुष्य के सार से ऊपर उठा हुआ त्यागमय भाव"[59] तो हरिकृष्ण रावत ने 'मानववाद' को "मानव की गरिमा की पुनर्स्थापना, मानवीय प्रतिष्ठा एवं मानवीय हित के सर्वतोमुखी विकास तथा सामाजिक जीवन हेतु अनुकूल परिस्थिततियों के निर्माण की धारणा के आधार पर विकसित विचारधारा को मानववाद का नाम दिया है ।"[60]

दर्शनकोश के अनुसार 'मानवतावाद' का अर्थ है - "मनुष्य की प्रतिष्ठा तथा अधिकारों के लिए सम्मान, व्यक्ति के रूप में उसके मूल्य, लोगों के मंगल कल्याण, उसके चहुमुखी विकास मनुष्य के वास्ते सामाजिक जीवन की परिस्थितियों के निर्माण के लिए चिन्ता को अभिव्यक्ति करनेवाले विचारों की समग्रता ।"[61]

कोशग्रंथों के आधार पर कह सकते है कि मानवतावाद अर्थात् मनुष्य के सर्वतोमुखी विकास की भावना; जिसके अनुसार मनुष्य सब समान हैं उन्हें अपने जीवन-विकास के उचित अवसर मिलने चाहिए - यही मानवतावाद है ।

'मानवतावाद' का उद्भव पुनर्जागरण काल (15वीं-16वीं सदियों) में हुआ। मानवतावादियों ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य की घोषणा की, धार्मिक उन्माद का विरोध किया, आनंदानुभूति और सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं मनुष्य के अधिकारों की पैरवी की। पुनर्जागरण काल के प्रमुख मानवतावादियों पेत्रार्क, दांते, बोकाच्चो, लियोनार्दो दा विंची, शेक्सपियर, बेकन आदि ने ऐहिक दृष्टिकोणों को मूर्त रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बुर्जुआ मानवतावाद 18वीं शताब्दी के ज्ञान प्रसारकों की कृतियों में पल्लवित हुआ, जिन्होंने स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के नारे बुलंद किये और अपनी 'स्वाभाविक प्रकृति' स्वतंत्र रूप से विकसित कर लोगों के अधिकारों की पैरवी की।...... निजी स्वामित्व और शोषण का उन्मूलन कर, समाजवाद लोगों के बीच सच्चे मानवीय संबंधों की इस सिद्धांत के आधार पर रचना करता है कि मनुष्य मनुष्य का मित्र, साथी और भाई है। कम्युनिज़्म मा. का सर्वोच्च मूर्त रूप है। ऐसा समाज, जिसमें असमानता के सारे बचे-खुचे चिह्न मिटा दिये जाते हैं और जो व्यक्ति के चहुमुखी विकास के लिए सारी अवस्थाएँ निर्मित कर इस सिद्धांत की प्रतिष्ठापना करता है : "प्रत्येक से उसकी क्षमता के अनुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार।" मा. की संकल्पना पुनर्जागरण काल की संस्कृति तथा विचारधारा के चरित्र-निरूपण के लिए उपयोग में लायी जाती है।[62]

मानवतावादी विचारधारा से हिन्दी साहित्य अछूता नहीं है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक स्थल पर लिखा है - "मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षा से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।"[63]

उपर्युक्त कथन साहित्य के उद्देश्य की व्याख्या करता है, जिसके केन्द्र में मनुष्य है। यह मनुष्य कोई अलौकिक या दिव्य पुरुष नहीं महामानव भी नहीं, बल्कि समाज में रहनेवाला साधारण व्यक्ति है, किसी भी काल का, किसी भी देश का। स्वच्छन्दतावादी साहित्य-चिन्तन में विशेषकर आचार्य

द्विवेदी की समीक्षाओं में - यही दृष्टि आद्यंत एक अंतर्धारा की तरह विद्यमान है, जिसे विचारकों ने मानवतावादी दृष्टि कहा है ।

'विचार और वितर्क' में द्विवेदीजी ने लिखा है कि - "हमारे सारे प्रयत्न मनुष्य के लिए हैं । हमारे सब प्रयत्नों का एक ही लक्ष्य है कि मनुष्य वर्तमान दुर्गति के पंक से उद्धार पाये और भविष्य में सुख और शांति से रह सके । मनुष्य के लिए ही साहित्य, दर्शन, इतिहास, राजनीति आदि बनते हैं ।"[64] साथ ही, "साहित्य की रचना भी दस अन्य भले कामों के समान मनुष्य को सुखी बनाने के लिए ही की जाती है । वह शास्त्र, वह रस-ग्रंथ, वह कला, वह नृत्य, वह राजनीति, वह समाज-सुधार और वह पूजा-पार्णव जंजाल-मात्र है, जिससे मनुष्य का भला न हो ।"[65]

गुरुनानक पंचशती पर लिखे गये एक निबंध में एक स्थान पर द्विवेदी जी ने लिखा है कि - "समन्वय का अर्थ यह है कि हम मनुष्य की मूल एकता को स्वीकार करें और उस विशाल मानवतावादी दृष्टि को अपनाएँ, जो समग्र मनुष्य जाति को सामूहिक रूप से नाना प्रकार की कुशिक्षा, कुसंस्कार और अभावों के बंधन से मुक्त करके उसे जीवन की उच्चतर चरितार्थता की ओर ले जाने का प्रयास कर रही है । गुरुनानक ने इसी मूलतत्व को पकड़ा था ।"[66]

आ. द्विवेदीजी ने 'हिन्दी-साहित्य' में लिखा है - "प्रकृतिवादी लेखक मनुष्य को काम, क्रोध आदि मनोरोगों का गट्ठर मात्र समझता है और उसके अर्थहीन आचरणों, कामासक्त चेष्टाओं और अहंकार से उत्पन्न धार्मिक वृतियों का विशेष भाव से उल्लेख करता है । यथार्थवादी लेखक ठीक इन्हीं सिद्धांतों को नहीं मानता ।"[67] इनका कहना है - "वस्तुतः यथार्थवाद का उल्टा शब्द आदर्शवाद है और प्रकृतिवाद का उल्टा मानवतावाद, क्योंकि मानवतावादी लेखक मनुष्य को पशु के सामान्य धरातल से ऊपर का वास्तविक धर्म मानता है । वह विश्वास करता है कि यद्यपि मनुष्य में बहुत पशु-शुलभ वृतियाँ रह गई हैं, तथापि वह पशु नहीं है । वर्षों की साधना से उसने अपने भीतर त्याग, तप, सौन्दर्य, प्रेम और पर-दुख कातरता जैसे गुणों का विकास किया है । ये गुण ही मनुष्य की मनुष्यता की निशानी हैं ।"[68]

"19वीं शती के विकासवाद और मानवतावाद के संबंध में युरोप के

मनीषियों में कोई मतभेद नहीं था । उनकी मान्यता यही थी कि सृष्टि परंपरा में मनुष्य का विकास सबसे अद्‌भुत वस्तु है और इसलिए वह सबसे आदरास्पद और महत्वपूर्ण भी है । इसी मनुष्य को सब प्रकार से सुखी बनाना, उसे आर्थिक गुलामी से मुक्त करना, रोग-शोक के चंगुल से छुड़ाना सब शास्त्रों और विधाओं का प्रधान लक्ष्य है ।"[69]

"मनुष्य को किसी परलोक में अनन्त सुखों का अधिकारी बनाना दूसरी बात है और उसे इसी नश्वर जगत में इसी मर्त्य काया में सुखी बनाना दूसरी बात है ।...... मनुष्य अद्‌भुत शक्तियों का भंडार है । उसने अनेक त्याग और आत्मदान के बाद अपने भीतर अनेक सद्‌गुणों का विकास किया है, वह पशु के सामान्य धरातल से जो ऊपर उठ सका है, इसका कारण यह है, उसने अपने भीतर त्याग की, तपस्या की और आत्मसंयम की बुद्धि विकसित की है। इसी मर्त्यलोक को अद्‌भुत अपूर्व शांति स्थल बनाने की क्षमता इस मनुष्य में है । इसी दृष्टि को उन दिनों मानवतावाद कहा गया था ।"

निष्कर्षतः मानवतावाद का सीधा अर्थ करे तो "जीओ और जीने दो" है । दूसरे शब्दों में कहें तो सामान्य से सामान्य व्यक्ति के उत्कर्ष की भावना, उसके विकास, परस्पर स्नेह प्रेम और सहयोग की भावना मानवतावाद है ।

प्रगतिशील कविता मानतावादी है । वह शोषण का विरोध करता समाज में क्रांति की भावना लेकर प्रस्तुत हुई है । प्रगतिवादी कवि की प्रत्येक रचना में मानवतावाद निहित है ।

प्रगतिशील विचारों के वाहक कवि निराला ने लिखा है कि ऐसा समाज होगा, जिसमें विश्व के जीवन से हर व्यक्ति जुड़ा होगा । समानता के स्तर पर लोग एक दूसरे से साम्य रहेंगे । न कोई भंगी रहेगा और न कोई चमार, हिन्दू-मुसलमान ही । सब एक होंगे । मनुष्य के लिए ऐसा होना आवश्यक है ।[70]

'भिक्षुक' कविता में कवि निराला की मानवता मुखर हुई है । वह भिक्षुक की दयनीय स्थिति से द्रवित होकर उसे अभिमन्यु जैसा वीर बनाना चाहता है । कवि कहता है -

"ठहरो अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूँगा

अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम
तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा ।”[71]

तो हरिवंशराय 'बच्चन' निर्माण कविता में शोषित मानव जाति के लिए 'नीड का निर्माण' फिर फिर !

नेह का आह्वान फिर फिर !”[72] से मानवता का संदेश लेकर आते हैं ।

मानवता के उत्कर्ष में महेन्द्र भटनागर के विचार भी प्रगतिशील हुए हैं । कवि कहता है -

“खण्डित पराजित
ज़िन्दगी ओ
सिर उठाओ,
आ गया हूँ मैं
तुम्हारी जय-सदृश
सार्थक सहज विश्वास का
हिमवान ।”[73]

कवि की मान्यता है कि बाधाओं को चुनौती देना सच्ची मानवता है। यथा -

“बाधाएँ
चुनौती हैं !
इन्हें स्वीकारना
पर्याय :
मानव की महत्ता का ।
इन्हें स्वीकारना -
उद्घोष :
जीवन की चिरन्तन
उर्ध्व सत्ता का ।”[74]

कवि मानवता का संदेश लेकर प्रस्तुत हुआ है । 'नई चेतना' का कवि मानव-मैत्री का संदेश फैलाता हुआ मानवता का परचम फहराता है । कवि

कहता है -

हमारे पास केवल
विश्व-मैत्री का
परस्पर प्यार का संदेश है,
हमारा स्नेह
पीड़ित ध्वस्त दुनिया के लिए अवशेष है ।
तो कवि यह भी कहता है
नए इन्सान के मासूम सपनों पर
कभी भी बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे ।

(नई चेतना)

जीवन में व्याप्त अन्याय, स्वार्थ, दुःख का अनुभव कर कवि पूछता है :

"क्या यही है मनुज जीवन ?"

पीड़ा से न घबरा कर कवि का यह स्वर विरुद्ध परिस्थितियों में भी डटे रहने का ज़बरदस्त संबल बन जाता है :

"पीर ही देगी तुम्हारा साथ
थाम लो इसका
करुण-निधि-रेख-अंकित हाथ,
हिम-शीत प्यारा हाथ !"[75]

आज जबकि विश्व-राष्ट्रों के सामने तृतीय विश्वयुद्ध का खतरा मुँह खोले बैठा है, किसी भी युग-जीवी रचनाकार के लिए संभव नहीं है कि वह विश्व-शांति के लिए अपनी आवाज़ बंद करके बैठ जाये । कवि महेन्द्र के काव्य में एक ओर हम मानवीय सभ्यता पर आए संकट का संकेत पाते हैं तो दूसरी ओर विश्व-शांति के प्रति उत्कट आग्रह भी ।

कवि नवीन युग की स्पष्ट पद-चाप सुन रहा है । आशा और मानवीय आस्था से भरे स्वर में वह कहता है :

"बरस रही नए विचार की झड़ी
नहा रहा मनुष्य विश्व का,
विकास-पंथ द्वार पर
खड़ा मनुष्य विश्व का
कि खिल रहे समाज में नवीन फूल
सृष्टि ने बदल लिए दुकूल ।"[76]

जर्जरित-प्राचीनता का मोह छोड़े बिना नवीनता की अवतारणा नहीं है । कवि प्राचीनता के विरोध में नवीन संकल्पों की सराहना करता है -

"छोड़ता हूँ आज जर्जर क्षीण मृत प्राचीन संस्कृति प्यार
चल पड़ा खंडित धरित्री पर बसाने को नया संसार
स्तब्धता, सुनसान, पथ वीरान, गुंजित हो नई झंकार,
आज फिर से नव सिरे से चाहता हूँ विश्व का निर्माण !"[77]

कवि महेन्द्र विश्व मानवता को नवीन चेतना से आप्लावित कर देना चाहते हैं, मानवता के विकास हेतु अपने हृदय का संचित स्नेह न्योछावर करन देना चाहते हैं :

ओ, मनुजता की
करुण, निस्पंद, बुझती ज्योति
मेरे स्नेह से भर प्रज्ज्वलित हो जा !
निविड़तम-आवरण सब
विश्व-व्यापी जागरण में आ सहज खो जा ![78]

कवि महेन्द्र मानव समाज को अभावों से मुक्त कराने के पक्ष में है । 'नई चेतना' संग्रह की 'भोर का आह्वान' एवं 'भविष्य के निर्माताओ' कविताओं में इसी भाव को वाणी मिली है । परिवर्तन के प्रति अडिग आस्था लिए कवि विश्वास दिलाता है कि

सच है -
मिटेगी यह न युग की नव जवानी अब

किसी की वासना की पूर्ति में !

हरगिज़ अलापेंगे नहीं

गायक, कला-साधक

किसी क्षय-ग्रस्त जर्जर-वर्ग के हित ![79]

कवि महेन्द्र भटनागर की मान्यता है कि नई जिन्दगी का आस्वादन तब तक सम्भव नहीं; जब तक हमारे जीवन-संदर्भ न बदलें, जब-तक हमारी प्रकृति में परिवर्तन न हो । कवि कहता है :

आओ,

जीवन की गीता को

अभिनव संदर्भ प्रदान करें ।

बदला

जब परिवेश मनुज का

आओ

नई ॠचाओं का निर्माण करें ।[80]

नवीन विचारों के पक्षधर कवि महेन्द्र हर संभव आत्मदान करने के लिए तैयार हैं ।[81] यह नवीन सृष्टि हरक्षण पल्लवित होती रहे; कवि की यही कामना है :

"आओ जलाएँ

कलुष कारनी कामनाएँ !

नए पूर्ण मानव बनें हम

सकल-हीनता-मुक्त अनुपम,

आओ जगाएँ

भुवन-भाविनी भावनाएँ ।"[82]

कवि महेन्द्र का एक मात्र लक्ष्य रहा है । मानव-गरिमा की रक्षा । वह स्पष्ट घोषणा करता है -

"मानवी गरिमा सदा रक्षित,

प्रतिष्ठित हो, प्रण हमारा ।"[83]

तभी तो कवि यह कामना करता है :

"मनुष्य का भविष्य

अंधकार से

शीत-युद्ध-भय-प्रसार से

मुक्त हो,

मुक्त हो !"[84]

आज विश्व तृतीय विश्वयुद्ध की कगार पर खड़ा है । हर राष्ट्र इस ख़तरे की गंभीरता को पहचानता है । कवि कहता है :

मृत्यु के कगार पर

खड़ी मनुष्यता सभीत

बार-बार लड़खड़ा रही ![85]

किन्तु कवि महेन्द्र का विश्वास है कि लड़खड़ाती मनुष्यता के क़दम रुकेंगे नहीं । क्योंकि विश्व-मानवता जब विश्व-शांति के लिए कटिबद्ध है तो जंगबाज़ों के हौसले पस्त होने को ही ठहरे :

"कुछ लोग चाहे ज़ोर से कितना

बजाएँ युद्ध का डंका

पर, हम कभी भी शांति का झंडा

ज़रा झुकने नहीं देंगे !

हम कभी भी शांति की आवाज़ को

दबने नहीं देंगे !

क्योंकि हम इतिहास के आरम्भ से

इन्सानियत में,

शांति में विश्वास रखते हैं !"[86]

कवि महेन्द्र गांधीजी के विचारों से भी प्रभावित है । "नीति का वास्ता हमेशा सामाजिक व्यवहार से जुड़ता है ।"[87] कवि अनीति के सामने झुकता नहीं । वह दमित मानवता में नवीन प्राणों का संचार करता हुआ कहता है :

'गरजो,

पुरज़ोर गरजो

अनीति-विरुद्ध

प्रज्ञा-प्रबुद्ध ।'[88]

कवि महेन्द्र ने जहाँ अनीति का सामना करने के लिए आवाज़ उठायी वहीं समाज में व्याप्त बदी को हटाने का बीड़ा भी लिया है । नशाखोरी तथाकथित आधुनिक सभ्यता का अंग बन गयी है । शराब की लत से जाने कितने ही घर नरक बन जाते हैं; फिर भी यह मुँह-लगी छूटती नहीं । निम्न-वर्ग यदि इसे अपने जीवन की नारकीय पीड़ाओं से कुछ क्षणों को निजात पाने के लिए मुँह लगाता है तो उच्च-वर्ग अपने ऐश्वर्य की नुमाइश के लिए इसमें डूबता-नहाता है । सरकारी कानूनों, धर्माचार्यो, समाज सेवियों के प्रयत्नों के बावज़ूद समाज को इस सड़न से छुटकारा नहीं मिला है । फिर भी प्रयत्न जारी है । कवि महेन्द्र भटनागर की क़लम भी इस बदी को रोकने के लिए चली है । कवि कहता है :

"मनुष्य हो अगर तो शराब मत पिया करो !

मनुष्य हो अगर तो फिर नशा नहीं किया करो ।"[89]

कवि शराबी व्यक्ति की तस्वीर इन शब्दों से अंकित करता है :

हमेशा देखकर जिसको किया करते मनुज नफ़रत

कि दुनिया में नहीं मिलती कभी जिसको ज़रा इज़्ज़त,

पड़ा मिलता कभी मैली-कुचैली नालियों के पास

कि जिसका ज़िन्दगी का, ठोकरे खाता रहा इतिहास,

ऐसा आदमी केवल शराबी है, शराबी है !"[90]

मनुष्य का वास्तविक धर्म है प्रेम, करुणा और परस्पर सहयोग की भावना । धर्म के नाम पर समाज में वैमनस्य फैला हुआ है । कवि महेन्द्र वैमनस्य नहीं; एकता व प्रेम में विश्वास करते हैं :

एक है सबका ख़ुदा, जिसने बनाए जीव सारे !
ख़ून की नदियाँ बहाकर
देश की रक्षा न होगी,
धर्म का ले नाम यों पथ
भ्रष्ट मानवता न होगी
....
एक होकर ही रहेंगे, हिन्द तेरे जन-सितारे ![91]

निष्कर्षतः महेन्द्र भटनागर की कविता में मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठापना हुई है । कवि ने त्याग, बलिदान, और पर दुख कातरता पर बल दिया है । अंधविश्वास व कुरीतियों को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते हैं ।

डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम के शब्दों में - "इसमें संदेह नहीं कि संत्रास की मरुभूमि में जो मानवतावाद और आस्था का हल्का झोका उभरता है वह अपनी परिमित व्याप्ति में भी कवि की एक महनीय उपलब्धि है ।"[92]

मानव-व्यक्तित्व की अवधारणा :

'मानव' शब्द 'मनुष्य' का अर्थ प्रस्तुत करता है । जो समाज में रहता है, समाज के नियमों से जुड़ा रहकर अपने क्रिया-कलाप करता है; जिससे उसकी बौद्धिकता और मानसिकता की परख होती है ।

'व्यक्तित्व' के लिए दर्शनकोश के अनुसार - "समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य ।"[93] व्यक्तित्व की यह परिभाषा मार्क्सवादी अवधारणा पर आधारित है कि "वह एक जैव सामाजिक प्राणी है, जिसका सार सामाजिक संबंधों का योग है । प्रत्येक मनुष्य उस हद तक व्यक्ति है, जिस हद तक सामाजिक पहलू इस मनुष्य का लक्षण या गुण बन जाता है । सामाजिक प्राणी के नाते ही मनुष्य

का स्वयं अस्तित्व लोगों की परस्पर अन्योन्यक्रिया की, सम्बद्ध मनुष्य पर सामाजिक अवस्थाओं और दूसरे लोगों के प्रभाव की ही नहीं, अपितु सामाजिक अवस्थाओं तथा दूसरे लोगों पर उस मनुष्य के प्रभाव की भी आवश्यक रूप से पूर्वकल्पना करता है । व्यक्तित्व के रूप में लोगों का विकास मनुष्यों के नैसर्गिक झुकावों का आवश्यक पूर्वाधार होता है और उन पर निर्भर करता है, परन्तु वह मुख्यतया समाज में सर्वांगपूर्ण बनता है, जिसमें प्रत्येक मनुष्य क्रियाकलाप का विषय और विषयी दोनों हैं । इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तित्व है । परन्तु व्यक्तित्व का विकास भिन्न-भिन्न रूप से हो सकता है ।"[94]

दर्शनकोश मनोविज्ञान के आधार पर 'व्यक्तित्व' की परिभाषा करता है "मनोविज्ञान में मानसिक क्रिया-कलाप के विषयी के रूप में समाज के सदृश्य ।"[95] "प्रत्येक मनुष्य के चरित्र, बुद्धि भावनाओं की अपनी विशेष अभिलाक्षणिकताएँ होती हैं । इन गुणों को उनके समग्र रूप में लिये जाने पर व्यक्ति की मानसिकता का गठन होता है । व्यक्ति की मानसिक बनावट उसकी बदलती मानसिक अवस्थाओं में अपेक्षाकृत स्थिर बनी रहती है, जो जीवन तथा तंत्रीकातंत्र की उसकी अवस्थाओं की अपेक्षाकृत स्थिरता से जुडी होती है । व्यक्ति की मानसिक बनावट में परिवर्तन उसके कार्यकलाप के दौरान, उसके स्वत्व में परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप होता है ।"[96]

डॉ. महेन्द्र भटनागर को यथार्थ की अनुभूति आकुल बनाये रखती है। डॉ. बैजनाथ राय के शब्दों में - "वह आदमी को हर कदम मजबूर पाता है । प्यार के सपने टूटते-से दृष्टिगोचर हो रहे हैं । अतः वह ऐसा गीत गाना चाहता है जिससे इस जगती का कण-कण परस्पर मीत बन जाये तथा विवशता, घुटन व दुःख संगीत में बदल जायें ।"[97] और इस दर्द, घुटन से जूझते मनुष्य के हर पहलू को कवि महेन्द्र ने बखूबी उभारा है ।

कुछ गीतों में कवि का तरुण व्यक्तित्व उभरा है । किसी रूपसी से प्रभावित कवि के हृदय में ऐसी छटपटाहट है कि उसे रात में नींद नहीं आती । रात के पीछले प्रहर में भी वह अंगडाइयाँ लेते हुए गुनगुनाता है - गहरी बड़ी मिली जो पीर है / निर्धन हृदय के लिए हीर है । अंजन सुखद नेह का नीर है / अल्हड़ अजानी उमर जगमगाती किसी की ।[98]

मानव व्यक्तित्व के संदर्भ में डॉ. लक्ष्मण गौतम के विचार हैं कि - "व्यक्तिबद्ध अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और बौद्धिक गद्यात्मकता - जो 'नयी कविता' की स्वीकृति उपलब्धियाँ बन चुकी हैं - की अनुपस्थिति के कारण ही महेन्द्र भटनागर की 'कविश्री' में अधिक आकर्षण है । किन्तु इसके बावजूद ये कविताएँ 'नयी' हैं और नयी कविताओं के उदाहरणों के रूप में इन्हें निःसंकोच उदाहरित किया जा सकता है । इसका कारण क्या है कि कवि सामाजिक दायित्व के प्रति सजग हो, भविष्य के प्रति आस्था की अन्तर्दीप्ति जगाता हो और फिर भी नया हो ?"[99] तो इसका उत्तर कवि की इन कविताओं के द्वारा दिया जा सकता है :

(1) 'स्वप्नदर्शी' शब्द
परिभाषा मनुज की ।
....
स्वप्न-एषण और आकर्षण
सनातन है सनातन है !

(2) भाग्य से अथवा जगत से
हर प्रताड़ित व्यक्ति को
आजन्म संचित स्नेह मेरा
है समर्पित :

स्पष्टतः यहाँ कवि ने व्यक्तित्व के अन्तर्मुखी पक्ष को उजागर करने में अधिक जोर दिया है । "मानव भविष्य के प्रति उसका अदम्य विश्वास, उसकी स्वप्नदर्शी आकांक्षा, सक्रिय जीवरि स्वयं में इतनी अकृत्रिम और आंतरिक है कि प्रामाणिक अनुभूति का नारा उछालने वालों के लिए एक ज़बरदस्त चुनौती के रूप में सामने आती है । इसमें शक नहीं कि समसामयिक परिवेश की आंतरिक घुटन, ऊब, अजनबियत और संत्रास आज का वस्तु-सत्य है किन्तु जहाँ कवि की दृष्टि वस्तु सत्य को चीरकर आंतरिक वास्तविकता को व्यक्त करने में असमर्थ है वहाँ यथार्थ की प्रामाणिक अनुभूति भी नहीं, विकलांग अनुभूति मानना चाहिए और इन विकलांग अनुभूति के उपजीवी कवियों की भीड़ में महेन्द्र भटनागर का स्वर पृथक सुनाई पड़ता है ।"[100]

कवि महेन्द्र भविष्य के प्रति आश्वस्त हैं, उनकी सृजनात्मकता मानव की अभिशप्त नियति को तेजोद्दप्त स्वर में चुनौती देती है : ओ अदृष्ट की लिपियो : / कठिन प्रारब्ध हाहाकार के / अविजेय दुर्गो : / हम श्रमधार से / हर हीन होनी की / लिखावट को मिटाएँगे :

कवि का विश्वास है कि स्वप्नदर्शिता व्यक्ति की प्रगति का द्योतक है अगति का नहीं । 'आदमी और स्वप्न' कविता में कवि स्वप्नदृष्टा बना है । जहाँ भी मानवीय यंत्रणा का स्वर आस्था को खंडित करता-सा प्रतीत होता है कवि की जीवन्त नव आस्था, अन्तस् की निष्ठा उसे अन्तरंग सार्थकता प्रदान करती है ताकि गहरे तम में सोया जीवन नयी आस्था से जागृत हो उठे । उसका विश्वास है कि

हर मिट्टी में गर्मी है

हर मिट्टी में पूत प्रसव-धर्मी है ।

'कौन हो तुम', 'याचना' तथा 'स्वीकार लो' कविताएँ भाव-समृद्धि में रंग-रोमांस तथा देहगन्धी स्नेह का सुखद संस्पर्श लिए हैं । इन सभी कविताओं में कवि की आत्माभिव्यक्ति कुण्ठारहित, ग्रंथिमुक्त है, जो कवि की आत्माभिव्यंजना को एक निश्छल आत्मनिवेदन में बदल देती है । अगर कहीं अचेतन की भाव-जड़ता या शारीरिक मानसिक थकावट का स्वर है तो वह आत्मगति को अवरुद्ध नहीं करता, आत्मसंघर्ष को तीव्र करता है । कवि की 'प्रार्थना', 'व्यथा', 'टूटना मत' कविताएँ कवि के आत्म-संघर्ष का अनवरत साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं । यहाँ हर चुनौती के सामने कवि का व्यक्ति डटकर खड़ा है ।

'कवि के मानव-भविष्य के प्रति इस निर्विकल्प आस्था की इतनी निश्छल और अनावृत्त अभिव्यक्ति कहीं-कहीं यह शंका अवश्य जगाती है कि कहीं कवि परिवेश के ठोस, मूर्त आधार की उपेक्षा तो नहीं कर रहा ? क्योंकि उसका स्वप्नदृष्टा व्यक्तित्व इतना मुखर है कि वह यूटोपियन की भूमिका पर अनायास ही उतर आता है । कवि भी शायद समसामयिक परिवेश की संदर्भहीनता तथा व्यक्ति के आत्म-निर्वासन से परिचित है किन्तु संदर्भहीनता को वह मूलतः स्वीकार करने में स्वयं को असमर्थ पाता है ।[101] समाज के

गरीब का चित्र कवि महेन्द्र ने प्रस्तुत किया है :

"गरीब था
अछूत था
    डर गया
भूख से
    मार से
    मर गया !
शोक से
लोक से
    तर गया !"[102]

कवि को यथार्थ की गहरी अनुभूति आकुल बनाये रखती है। वह आदमी को हर कदम पर मजबूर पाता है । प्यार के सपने उसे टूटते से दृष्टिगोचर हो रहे हैं । अतः वह ऐसा गीत गाना चाहता है जिससे इस जगती का कण-कण परस्पर मित्र बन जाये तथा विवशता, घुटन व दुःख संगीत में बदल जाये । कवि जानता है कि मात्र क्रांति ही दलित-वर्ग के जीवन को स्वर्गिक नहीं बना सकती । इसलिए वह कहता है - 'जीवन में तुमकों होना है श्रमशील अथक उन्मुक्त निडर ।' श्रम प्रगति के लिए आवश्यक है । प्रगति के लिए व्यक्ति का निर्भय होना भी आवश्यक है । भीरु व्यक्ति स्वतंत्र और मुक्त रूप से विकास नहीं कर सकता ।

'विहान की कविताएँ व्यक्ति को संघर्ष के लिए तैयार करती हैं । कवि साहसी व्यक्तियों को ही मित्र बनाना चाहता है, कायरों को नहीं । जो जीवन की विपत्तियों को झेल लिया करते हैं, हजारों विघ्न बाधाओं के बावजूद जिनके जीवन-प्रगति नहीं रुकती, उद्देश्य-प्राप्ति के मार्ग में जो कभी परिश्रांति महसूस नहीं करते, जिनके मन में सदा तरुणाई खेलती रहती है ऐसे ही व्यक्ति कवि के साथी हैं । 'वीर-भोग्या वसुन्धरा' का आदर्श कर्मवीर पुरुषों का ही होता है ।"[103]

कवि का विश्वास है कि श्रम और कर्म ही व्यक्ति को प्रगति पथ पर ले जाते हैं । विकट परिस्थितियों में रहकर भी व्यक्ति को धैर्य नहीं खोना चाहिए - गिर गिर चलने देना मुझको / क्षणभर भी आधार न देना ।[104] स्थितियों से जूझते, संघर्षरत रहते हुए वह अकेला ही आगे बढ़ता है । थकान, पराजय, कठिनाइयों के बीच से निकलकर वह सफलता की मंजिल प्राप्त करना चाहता है । उसमें अदम्य साहस है, उत्साह और लगन है । वह समाज में आमूल परिवर्तन लाना चाहता है - 'करते ध्वस्त पुरातन जर्जर जग में लाकर दुर्दम विप्लव' । तभी तो नये समाज और नये मूल्यों की स्थापना संभव है ।

'अभियान' संग्रह में 'नारी' शीर्षक कविता में आधुनिक भारतीय नारी जागरण की सबल प्रतिध्वनि है । कवि की 'नारी' नयी समाज व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है :

समता का आज़ादी का नव इतिहास बनाने को आयीं,
शोषण की रखी चिता पर तुम तो आग लगाने को आयीं,
है साथी जग का नव-यौवन, बदलो सब प्राचीन व्यवस्था,
वर्ण भेद के बंधन सारे तुम आज मिटाने को आयीं ।

नारी की भूमिका आधुनिक युग में कवि ने क्रांति की मिसाल के रूप में रखी है । साथ ही नारी का शोषण करने वालों को लताड़ना भी कवि भूला नहीं है :

"लानत है इन्सान
किया तुमने नारी पर अत्याचार-प्रहार
लानत है युग-युग की चिर संचित संस्कृति
जिसकी पशुता ने
नारी की असमत पर हाथ उठाया ।"[105]

ऐसे में कवि महेन्द्र भटनागर का उदास मन और थका बदन घुटन महसूस करता है -

बहुत उदास मन

थका-थका बदन

बहुत उदास मन

उमस भरा गगन

थमा हुआ पवन

घुटन-घुटन घुटन ! (असह, पृ.93)

ज़िन्दगी में दर्द का बोलबाला है । कवि हर दर्द सहने के लिए विवश है -

"ज़िन्दगी जब दर्द है तो

हर दर्द सहने के लिए

मज़बूर है हम ।"

(मजबूर, पृ.94)

उक्त त्रुटियों को दूर करने के लिए कवि ने युग की जवानी का आह्वान किया है :

"हो नहीं सकती पराजित युग-जवानी

संगठित जन-चेतना को

नव-सृजन की कामना को

शांति के आशा भवन को

सर्वहारा वर्ग की युग-युग पुरानी साधना को

आदमी के सुख-सपन को

शांति के आशा भवन को

और उषा की ललाई से भरे जीवन-गगन को

मेटनेवाली सुनी है क्या कहानी ?

विश्व के कर्तव्य पर जो ज़िन्दगी को वारते है

कब शिथिल होती, प्रखर उनकी रवानी ।"[106]

कवि मानव को कर्तव्य-पथ पर पूर्ण साधना से जुड़ा देखना चाहता है । उसका मानना है कि व्यक्ति का जीवन तभी सार्थक है जब वह श्रमशील बने । वह उसे ताज्य मानता है जो मानव की मानवता का दहन करते हैं ।[107]

आज का मानव अगम-से-अगम क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करने में सफल हुआ है, परन्तु मानव-मानव के बीच रिश्तों को खण्ड-खण्ड होते देखकर कवि की आत्मा कराहती सी जान पड़ती है । 'आदमी' कविता में कवि कहता है :

आदमी-आदमी से आज
कोसो दूर है,
आत्मीयता से हीन
बजता खोखला
हर कदम सिर्फ़ ग़रूर है ।

कवि व्यक्ति-व्यक्ति के बीच में रही दूरियाँ दूर करना चाहता है । हर व्यक्ति को एक दूसरे के करीब लाना चाहता है । कवि कहता है :

"आओ
दूरियाँ देशान्तरों की
व्यक्तियों की अत्यधिक सामिप्य में बदलें ।
बहुत मज़बूत
अन्तर-सेतु बाँधें ।"[108]

कवि महेन्द्र विश्व-मानवता को नवीन चेतना से आबद्ध कर देना चाहते हैं, सींच देना चाहते हैं उस पर अपने अन्तर का सारा स्नेह ढाल देना चाहते हैं :

"ओ, मनुजता की / निस्पंद, बुझती ज्योति / मेरे स्नेह से भर प्रज्ज्वलित हो जा ! / निविड़तम आवरण सब / विश्व-व्यापी जागरण में आ सहज खो जा !"[109]

व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं । एक वह, जो विषम स्थिति में भी तन-मन से जूझते रहते हैं । उन पर उस स्थिति का असर नहीं होती । दूसरे वह होते हैं जो क्षणिक दुख या सुख में रोने या नाचने लगते हैं । कवि महेन्द्र के दार्शनिक विचार उनके काव्य में अभिव्यक्त हुए हैं । कवि ने उस व्यक्ति को श्रेष्ठ माना है जो सभी अवस्थाओं में स्थिर रहता है ।

कतिपय गीतों में व्यक्तित्व की दृढ़ता और संघर्ष-क्षमता का उल्लास दृष्टिगोचर होता है । कवि कुश-कंटकमय जीवन पथ पर किसी सहारे की तलाश नहीं करता, क्योंकि उसकी टेक है :

मैं उठता गिरता जाऊंगा

सुलभ ज्योति संसार न देना !

बहने देना मेरे आँसू

किन्तु, स्नेह उपहार न देना

आत्मा परमात्मा का अंश है; वह नश्वर नहीं है यह ज्ञान कवि को है। कई युग से यह आत्मा अपना रूप और आकार अलग-अलग योनि में जन्म लेकर बदलती आयी है । वह कभी नाश नहीं होती । कवि कहता है :

'कर न पाई शक्ति कोई

अन्त जीवन-नाश इनका

ये रहे जलते सदा ही

मौन टिम टिम !

मुक्त टिम टिम !'

'नश्वर तारक' कविता में कवि दार्शनिक की भूमिका में प्रस्तुत हुआ है। जीवन की क्षणभंगुरता के बावजूद व्यक्ति में मोह-माया रहती है । कवि जीवन की नश्वरता को तारों के साथ तुलना करते हुए कहता है :

'जीवन की क्षणभंगुरता को

इनने भी जाना पहचाना

बारी-बारी से मिटना पर,

अगले क्षण ही जीवन पाना ।

आत्मा अमर रही, पर रूप न शास्वत

यह मंत्र महान छिपा ।'

मनुष्य जन्म मरण के फेरे में बँधा है । अपनी इच्छा से न तो वह जी पाता है, न मर पाता । अदृश के आगे वह मजबूर है । कवि कहता है :

'हथकड़ियों में बंदी मानव -

सम विचलित हो पाएंगे कब ?

अधिकार नहीं इनका पग भर भी

बढ़ना है हाय असंभव !

चंचलता रह जाती केवल

दृढ़ तूफानी अरमान छिपा ।'[110]

कवि महेन्द्र मानव-व्यक्तित्व में इन्सानियत की आवश्यकता मानते हैं । व्यक्ति किसी भी धर्म, जाति का हो; इन्सानियत के गुण उसमें होने चाहिए । कवि कहता है :

'क्योंकि हम इतिहास के आरंभ से

इन्सानियत में,

शांति में विश्वास रखते है

गौतम और गांधी को हृदय के पास

रखते है ।'

व्यक्ति में जीवन-विकास के लिए आस्था होनी चाहिए। डॉ. कांतिकुमार जैन के शब्दों में "महेन्द्र भटनागर के समस्त काव्य-सृजन में आस्था का एक अकम्प स्वर निरन्तर विद्यमान है । वे वर्तमान की निराशा, कातरता और कुण्ठा से परिचित होते हुए भी मानवता की विजय के प्रति संदिग्ध नहीं होते ।"[111]

महेन्द्र भटनागर की आस्था कभी प्रार्थना का रूप धारण करती है उसमें हताशा नहीं बल्कि कर्म-तत्परता दीखती है -

अँधेरा दो.....

.....पर

विजय की आस मत छीनो

क्योंकि कवि को विश्वास है

कंटकों के बीच मन-पाटल खिलेगा एक दिन

हिम्मत न हारो ।

कवि हर व्यक्ति को जूझने के लिए प्रेरित है । टूटना उसकी फ़ितरत नहीं है

रे हृदय ! / उत्तर दो / जगत के क्रूर वंचन का / स्नेहल भाव से विश्वास से ।

जीवन में दु:खों एवं संकटों को झेलते हुए मनुष्य प्यार की तमन्ना लिए जी रहा है । कवि मानव को सिखाता है कि जीवन-संग्राम में संघर्ष और प्रयत्न जरूरी है और संघर्ष के लिए निडरता अनिवार्य है । जो कहता है कि जगत मिथ्या और जीवन नश्वर है वह संघर्ष से भागनेवाला है । कवि को पूरा भरोसा है कि जीवन कठिन सत्य है और कर्म ही तपस्या है । ऐसी कठिन तपस्या से ही व्यक्ति सच्चा मानव बन सकता है :

जीवन जब है एक समस्या

कर्मों का ही नाम तपस्या

प्राणों के अंतिम पल तक

जग में जमकर संघर्ष करो ।[112]

आज समाज में अनेक बुराइयाँ प्रविष्ट कर गयी है । उन्हें मिटाने के लिए क्रांति की आवश्यकता है । कवि मानव को सच्ची राह दिखाता है कि हम सब जीवन-पथ के राही हैं और हमें उन्मेष और उत्साह से आगे बढ़ते रहना चाहिए । हमारे प्रयत्नों से ही नवयुग का निर्माण संभव है :

करते ध्वस्त पुरातन जर्जर

जग में लाकर दुर्दम विप्लव

शीश हथेली पर रखकर हम

बढनेवाले निडर सिपाही ![113]

कवि महेन्द्र के अनुसार व्यक्ति का एक गुण है स्थितप्रज्ञ । विचलित होना दुर्बल का स्वभाव है । स्थितप्रज्ञ व्यक्ति अप्रभावित रहता है :

अनुभव न हो कभी जीवन में हृदय शिथिल होने का,
अवसर आये न कभी असमय संयम-बल खोने का ।[114]

कवि महेन्द्र आधुनिक युग के मानव को नये विचारों से नई दुनिया बनाने का आह्वान करता है । वह ऐसे मानव की कल्पना करता है जिसमें कोई निराश न हो, कोई किसी भी प्रकार की कुण्ठा से ग्रस्त न हो, हर पल हर्ष और आनन्द का अनुभव वह करे । 'नई दुनिया' कविता में कवि कहता है :

तुम आज विचारों के बल से
जन, रच दो दुनिया एक नयी !
यह उजड़ा वेश धरा का तो,
यह ग्रहण लगा शशि-राका तो,
आँखों को लगता बुरा-बुरा
पीली मानो प्राचीन सुरा,
तुम आज सृजन की घडियों में
जन, रच दो दुनिया एक नई ![115]

कवि महेन्द्र ने यह अनुभव किया है कि संसार में सच्ची सहानुभूति के साथ आर्द्र होनेवाले सहचर सहज प्राप्त नहीं होते ।[116] कवि व्यक्ति की मौन साधना में विश्वास करता है । जब तक मनुष्य जीवन संघर्षों की अग्नि में तप नहीं जाता तब तक वह साधना का मर्म जानने में असमर्थ रहता है । यह बात नहीं कि वह जीवन की विषमतामयी आँधियों के झोंकों की परवाह नहीं करता :

उर में अभिलाषाएँ अगणित
रह जाती क़ैद वहीं बेबस,
मेरे जीवन का नंदन-बन है
पतझर-सा सूखा तहस-नहस ।[117]

तो

राह है यह ज़िन्दगी की,

एक पल रुकना न होगा ।[118]

कवि महेन्द्र ने तरुणाई की परिभाषा काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत की है :

वही व्यक्ति दृढ़, शक्ति-युग का तरुण है

बदलना धरा को कि जिसकी लगन है ।[119]

नई ज़िन्दगी के भोर में व्यक्ति को जागरुक रहना है -

इन्सान लेता नई आज करवट

सम्मुख नयन के उठा है नया पट,

गूँजी जगत में युगान्तर की आहट

ललकार यह तो समय की ।[120]

जीवन में सफलता सहज ही नहीं आती, उसके लिए संघर्ष करना पड़ता है । कवि महेन्द्र की धारणा है कि विफलताएँ क्षणिक होती हैं तथा उनसे जीवन निखार ही पाता है । यथा -

हँसूंगा न जीवित रहूँगा

सफलता बिना

निखरता मनुज का न जीवन

विफलता बिना ।[121]

"व्यक्ति के संस्कार, आग्रह, भावुकता-पूर्ण क्षण और लालसाभरे स्वप्न उसे आदर्शवादी बलिदान की ओर प्रतिगामी करना चाहते हैं, किन्तु गम्भीर एकान्त बोध की जागरुकता और प्रवृत्तिवादी प्रगतिशीलता की अन्तरधाराएँ उसे जीवन के कटुतर यथार्थ से अभिन्नता निभाने के योग्य बना ही देती है । तभी व्यक्ति जीवन में वस्तुवादी सापेक्षता का व्यापक दृष्टिकोण चरितार्थ होने लगता है । इसी मनःसंधि पर व्यक्ति के प्रेम और समूह के श्रेय में समझौता हो सकता है ।"[122] कवि महेन्द्र समूह के श्रेय पर महत्व देते हुए कहते हैं :

हरेक आदमी के पास हो ! सुखी भविष्य की नवीन आस हो ।[123]

कवि आत्म-विश्वास जाग्रत कर युवकों को सतत आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है । कवि मंगलाकांक्षी है । इसलिए आरोहण अपेक्षित है । मनुष्य के जीवन की प्रत्येक सुबह सुन्दर हो; यह कवि की इच्छा है :

जीवन की हर सुबह सुहानी हो

भर लो हास बहारों का ।[124]

‘जीने के लिए’ में ‘धर्म’ शीर्षक कविता में कवि ने जीवन और जगत से प्यार को एक उदात्त भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित किया है । वह उसे आदमी के मूल धर्म के रूप में निरूपित करता है :

प्यार करना

ज़िन्दगी से : जगत से

आदमी का धर्म है ।

‘आहत युग’ का कवि व्यक्ति की शक्तियों को जाग्रत करता हुआ कहता है कि

मौत से लड़ना, नहीं थकना

अंत तक बढ़ना, नहीं रुकना

हिंसकों के टूटने कमज़ोर होने तक । (‘जागते रहना’)[125]

कवि मनुष्य को हिंसक नहीं; उदार देखना चाहता है । हमारा व्यक्तित्व ऐसा हो; जिससे किसी को डर न लगे, कोई भागे नहीं हमें देखकर यथा :

कोशिश करो कि

वे तुमसे न डरें

तुम्हें देख न भगें,

पंख फड़फड़ा कर उड़ान न भरें,

चाहे वह

चिड़िया हो, गिलहरी हो, नेवला हो ! (‘ज़रूरी’)[126]

निष्कर्षतः कवि महेन्द्र भटनागर ने एक ओर जहाँ आज के व्यक्ति की विवशता, निराशा, कुण्ठा और असफलता को अपनी कविता में वाणी प्रदान की है, वहाँ दूसरी और उसने साहस, शौर्य, पराक्रम और दृढ़ संकल्प से व्यक्ति के जीवन को परिपूर्ण करने का महनीय कार्य किया है । डॉ. आदित्य

प्रचण्डिया कवि के इस कार्य को 'अंधियाँरी जिन्दगियों को रोशनी प्रदान'[127] करना कहते हैं । डॉ. नत्थन सिंह के शब्दों में "कवि देश के प्रत्येक सदस्य का..... प्रत्येक मानव के मानस को सृष्टिसाधना की भावना से सरसित"[128] करना चाहता है ।

नव-जागरण के स्वर :

नव-जागरण का अर्थ है जाग्रत होना । भारत में नव-जागरण का आरंभ 1857 से होता है । 1857 का आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन है । "राष्ट्रीय जागरण से तात्पर्य राष्ट्रीयता की भावना के जागरण से है । जब किसी देश के विभिन्न कोटि के नागरिकों के बीच एक राष्ट्र के अस्तित्व की चेतना आ जाती है तथा जब वे राष्ट्र की राजनीतिक एकता तथा स्वतंत्रता के विषय में चैतन्य हो जाते हैं तब उन्हें हम राष्ट्रीय जागरण की स्थिति में पाते हैं । विश्व के विभिन्न देशों में ऐसी स्थिति कभी-कभी पाई जाती है । 18वीं तथा 19वीं सदी में राष्ट्रीय जागरण का उद्‌भव हम विभिन्न देशों में पाते हैं । भारत में भी 19वीं शताब्दी के मध्य तथा उत्तरार्ध को जागृति का युग कहा जाता है जिसके परिणाम स्वरुप राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात हुआ और भारत को विदेशी सत्ता से स्वतंत्रता मिली ।"[129]

1857 के पश्चात् राष्ट्रीय आन्दोलन का क्रमबद्ध तथा संगठित सूत्रपात हुआ । डॉ. रघुवंशी के विचार में "1858 के बाद का आन्दोलन एक प्रबुद्ध राजनीतिक आन्दोलन था ।"[130] डॉ. जकरिया का विचार है कि "भारत की पुनर्जागृति मुख्यतया आध्यात्मिक थी । इसने राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आन्दोलन का रूप धारण करने से बहुत पहले अनेक धार्मिक और सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया ।"[131]

भारतीय नवजागरण को प्रभावित करने में फ्रांस की राज्य क्रांति और उसका लोकतंत्रवाद है जो भारतीय समाज अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त कर सका । जिसके लिए "भारतीय प्रेस, समाचार-पत्रों तथा साहित्य ने जागरण के संबंध में एक महत्वपूर्ण तत्त्व का काम किया । प्रेस ने भारतीय राष्ट्रीय भावना को जगाने में एक महत्वपूर्ण पार्ट अदा किया । प्रेस ने शिक्षित भारतीयों में जागरूकता लाये और उनमें देश प्रेम और तथा राष्ट्रीयता की भावना को

जगाया ।"[132] साहित्य के इतिहास में यह समयावधि आधुनिक काल से मानी जाती है ।

निष्कर्षत: "यह प्रमाणित है कि धार्मिक आन्दोलनों द्वारा विकसित और पल्लवित संस्कारों से ओतप्रोत सामाजिक और राजनीतिक नेताओं ने साहित्य को प्रमुखतया प्रभावित किया । स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, पं. नहेरु, विश्व कवि रविन्द्रनाथ ठाकुर, महामना मदन मोहन मालवीय, डॉ. राधाकृष्णन आदि अनेक व्यक्तियों के कार्य इन्हीं आन्दोलनों से आप्लावित हैं ।"[133]

आधुनिक काल का प्रारंभ वास्तव में सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता-युद्ध से मानना चाहिए ।[134] नव-जागरण का आरंभ भी यहाँ से है । साहित्य के अन्तर्गत यह समय भारतेन्दु युग से जाना जाता है । उस समय देश दीन-हीन दशाओं से ग्रस्त होता जा रहा था ।[135] "यह दशा भारतेन्दु ने देखी थी, अत: उनका साहित्य तात्कालिक स्थितियों एवं समस्याओं को चित्रित करने में सक्षम हुआ । जागृति के स्वर मुखरित हुए ।"[136] इस तरह हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु-युग से साहित्य में नव जागरण के स्वर सुनने को मिले ।

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी काव्य में नयी चेतना के अग्रदूत थे । वे अपने दृष्टिकोण से जितने उदार थे उतने ही क्रान्त-दृष्टा भी थे ।

अंग्रेज़ों की लूट-खसोट से लुंठित भारत की दुर्दशा को देखकर भारतेन्दु की आत्मा करुण-क्रंदन कर उठी तथा उसकी कचोट उनकी भाव-विह्वल वाणी में इस प्रकार फूट पडी :

"रोवहु सब मिलिके आवहु भारत भाई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।"[137]

तत्कालीन साहित्य में राष्ट्रीयता का संधान करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने बड़े पते की बात कही है कि अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानियों को राजभक्ति सिखाई, उनके अन्दर फूट की आग सुलगाई, उन्हें एकदूसरे का ख़ून बहाना सिखाया, यहाँ की संस्कृति और भाषाओं को पैरों तले रौंदा और यहाँ से जितना धन लूटकर ले गए, उतना अपने बाकी विश्वव्यापी साम्राज्य से भी न ले जा सके । हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय चेतना सीधे अंग्रेज़ डाकुओं के कारनामों का विरोध करके बढ़ी ।"[138]

भारतेन्दु अपनी प्राचीन गौरवमयी सांस्कृतिक विरासत को याद करके व्यथित होते हैं । समस्त विश्व के लिए आचरणीय कृष्ण का गीता-उपदेश, वेद व्यास द्वारा ज्ञान के मूल स्रोत वेदों का सम्पादन, यहाँ का मनमोहक मनोरम साहित्य, यहाँ की सोना उगलनेवाली शस्य-श्यामला वसुन्धरा, मुनि-महात्माओं के आश्रम, आर्य लोगों की उदात्त मर्यादित जीवन-पद्धति, भारत-भाल का उज्ज्वल किरीट हिमालय पसस्विनी गंगा-यमुना, भगवान राम के उच्चादर्श आदि का स्मरण उन्हें भाव-विह्वल कर देता है और उनके मर्मान्तक उद्‌गार फूट पड़ते हैं :

जो भारत जग में रह्यौ सबसों उत्तम देश ।
ताही भारत मैं रह्यौ अब नहिं सुख को लेस ।।[139]

और इसी दुख की अवस्था को दूर करने के लिए कवि जनता रूपी देवों से कहता है

जागो जागो करुनायतन फेर जागिहौ नाथ कब ।।[140]

बाल मुकुन्द गुप्त ने अंग्रेज़ों की शोषणवृति से बेहाल लोगों का चित्र कुछ ऐसे शब्दों में चित्रित किया है :

"जिन बेचारों के तन पर कपड़ा छप्पर फूस नहीं,
खाने को दो सेर अन्न नहीं, बैलों को भूस नहीं,
नग्न शरीर पर बेचारों के कोड़े पड़ते हैं ।"[141]

तो 'प्रियप्रवास' में हरिऔध मानवता का धर्म बताते कहते हैं कि

"विपत्ति से रक्षण सर्व-भूत का ।
सहाय होना अ-सहाय जीव का ।
उबारना संकट से स्व-जाति का
मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है ।"[142]

'साकेत' महाकाव्य के कवि मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक समाज में फैले अनिष्टों को समाप्त करने के लिए राम के मुख से कहलवाते हैं :

"संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।"[143]

अंग्रेज़ शासनकाल से उत्पन्न आत्महीनता से मुक्त कर आत्मगौरव और आत्मविश्वास से दीप्ति करने के साथ ही गुप्तजी ने अनुभव किया कि युगीन समस्याओं के समाधान के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं; अपितु अंग्रेज़ों की 'फूट डालों और राज करो' की दुर्नीति से भी देशवासियों को सचेत करना होगा । इसलिए गुप्त जी ने जन-मानस को सावधान करते हुए चेताया -

"फूट डालकर किया इन्होंने शासन हम पर,

लुट इनसे हम आज स्वयं पिट रहे परस्पर ।"[144]

रामनरेश त्रिपाठी के साहित्य में नारी जागरण का स्वर मुखर हुआ है । कवि ने नारी को दया, माया, ममता और मधुरिमा का पारावार कहकर मानव मूल्यों का परमाधार सिद्ध किया है तो जन-सेवा और देश-सेवा और देश-रक्षा में शक्ति के अवतार रूप में सामने आने पर मुक्त कण्ठ से स्वागत किया है । त्रिपाठी जी की नारी हाथों में त्रिशूल थामें गाँव-गाँव में जन-जागरण का गीत गाती सुनाई देती है

लिए त्रिशूल हाथ में कर चली देश उद्धार ।

गाँव गाँव में लगी घूमने सेवा-व्रत उर-धार ।"[145]

इस तरह 1857 से आरंभ हुआ नव-जागरण का स्वर आधुनिक काल के साहित्यकारों की रचनाओं में ध्वनित होता है ।

क्रांति की लहर 1857 से प्रारंभ हुई जो 1947 की आज़ादी तक पनपती रही । अंग्रेज़ों के शोषण का शिकार तत्कालीन समाज होता रहा । लेकिन जागृत लोगों ने ब्रिटिश सत्ता का जमकर विरोध किया । जिनमें महेन्द्र भटनागर भी एक हैं ।

कवि महेन्द्र ने जब काव्य-रचना का आरंभ किया; उस वक्त 'भारत छोडो' आन्दोलन चल रहा था । जिसमें कवि महेन्द्र ने भी भाग लिया ।[146] "कोई भी भावुक व्यक्ति, जिसके हृदय में देश तथा मानवता के प्रति प्रेम है, अपने को इन घटनाओं से अछूता नहीं रख सकता । मैं प्रभावित था अतः मैंने इन विषयों पर लिखा ।"[147]

कवि महेन्द्र के काव्य में युगीन परिवेश का प्रभाव मिलता है । वे कहते हैं कि द्वितीय महायुद्ध और स्वाधीनता संग्राम से उन्हें नयी दिशा मिली - "उस समय द्वितीय महायुद्ध और भारतीय स्वाधीनता-संग्राम अपनी चरम सीमा पर थे, जिनका भावात्मक प्रभाव मेरे मन पर गहरा पड़ा । यह असम्भव था कि उसकी अभिव्यक्ति मेरे काव्य में न होती । अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं वरन् घटनाओं ने मेरे कवि व्यक्तित्व को ही एकदम नयी दिशा में मोड़ दिया। राष्ट्रीय उद्‌बोधन की ओर प्रवृत हुआ ।"[148]

भारत की स्वाधीनता के साथ-साथ साम्प्रदायिक दंगे शुरु हो गए थे । राशन की दुकानें लूट जाया करती थीं । लाठी-चार्ज होते-होते बचता था । इस माहौल में, व्यापारी, पूँजीपति और बड़े अफ़सर मस्त-अलमस्त घूमते थे । यह उनके धन कमाने का समय था । अभिप्राय यह है कि यह सारी घटनाएँ, एक-के-बाद-एक, मेरे मन में मौजूदा समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश का भाव भरती गयीं ।"[149] कवि महेन्द्र की कविता में नव-जागरण के स्वर इसी परिस्थिति से उत्पन्न हुए ।

नव-जागरण के स्वर :

"प्रगतिवादी विचारधारा जीवन की चतुर्मुखी मुक्ति के लिए सतत संघर्ष का बिगुल बजाती काव्य-कानन में प्रवाहित हुई थी । सभी प्रकार की दासताओं के विरुद्ध उसका स्वर रहा है । दासता व्यक्ति, सत्ता, अन्धविश्वास अथवा रुढ़ियों किसी की भी हो मानवता के लिए कलंक हैं और इस कलंक को धो-पोंछ डालने का उपक्रम हर युग-चेता कवि ने किया है । कवि महेन्द्र भटनागर की लेखनी से सामयिक कोई भी संदर्भ उपेक्षित नहीं रहा है । एक परतंत्र देश में जन्म लेने वाले कवि का स्वतंत्रता के प्रति आग्रह स्वाभाविक ही है । गुलामी की यातना को भोगने वाला ही आज़ादी के महत्व को समझ सकता है । कल्पनाओं की सुनहरी दुनिया में कवि चाहकर भी अपने को बहुत देर तक नहीं रमाए रख सका है, जीवन के कटु यथार्थ का कडुआ स्वाद उसे रुमानियत की मादक घड़ियों में भी बेचैन कर गया है । इसी बेचैनी ने उसके व्यष्टि को समष्टि से एक प्राण कर दिया जो चोतरफा अन्याय, अत्याचार और असत के विकराल शिकंजों में जकड़ी तड़प रही थी ।"[150]

कवि महेन्द्र भटनागर ने अंग्रेज़ शासनकाल में जीवन का कडुआ स्वाद चखा है । दासता भरा जीवन कवि को भला कैसे भा सकता था । अतः वह मुक्ति का आह्वान करता है :

"दासता की शृंखला तोड़ देंगे आज,

घोर प्रतिद्वन्द्वी हवाएँ मोड़ देगे आज,

निज निराशा, फूट जड़ता छोड़ देंगे आज ।"[151]

'भारत छोडो' आन्दोलन से प्रभावित मुक्ति के क्रांतिकारी स्वर कवि महेन्द्र के काव्य में मुखर हुए :

"जीवन मुक्त करो !

सदियों की बद्ध शृंखला,

निष्क्रिय खंडित भ्रमित कला,

तमसावृत सृष्टि अर्गला,

नूतन रवि, रश्मि प्रखर से सब छिन्न करो !

तन मन मुक्त करो !"[152]

लज्जा ढकने के लिए वस्त्रों के अभाव से त्रस्त तरसती पत्नी, रोटी के लिए तरसते बच्चों के बीच आज़ादी का त्यौहार मनाने वाला कवि सत्ताधारियों को सचेत करता है :

क्योंकि नये युग के सपनों की ये तसवीरें है ![153]

कवि की यह तस्वीर धुँधली न हो इसलिए वह कहता है :

जड़ता भंग करो !

जन-जन मुक्त करो !

समाज से जड़ता दूर करने के लिए कवि आह्वान करता है :

'कवि उठो !

रचना करो, तुम एक ऐसे विश्व की

जिसमें की सुख्र-दुख्र बट सकें ।’[154]

युगों से उपेक्षित लोगों के जीवन में परिवर्तन की आस लिए कवि काव्य-लेखन में प्रवृत हुआ है । कवि उनके जीवन के सभी अन्दाज़ बदल देना चाहता है । कवि घोषणा करता है :

“मानव

अनाचार-नरकाग्नि में

अब दहेंगे नहीं ।”[155]

‘अनुष्ठान’ कविता में कवि कहता है :

“गरीबी अब अमीरी के न क़दमों पर झुकेगी

हाथ फैलाते हुए ।”[156]

शोषितों, दलितों के प्रति कवि के हृदय में गहरी सहानुभूति है और इसी संवेदना को विश्वव्यापी बनाने के लिए कवि अपनी लेख्रनी से संबोधन करता है :

“लेख्रनी मेरी !

समय-पट पर चलो ऐसी कि जिससे

त्रस्त जर्जर विश्व का

फिर से नया निर्माण हो !

क्षत, अस्थि-पंजर, पस्त-हिम्मत

मनुज की सूख्री शिराओं में

रुधिर उत्साह का संचार हो !

ओ लेख्रनी मेरी !

चलो,

सोये हुए हैं जो

उन्हें उगते दिवाकर की ख़बर दो ।”[157]

'अभियान' का कवि ने शोषित जनता को जगाने का अभियान छेड़ा है । वह शोषित जनता को ललकारता हुआ कहता है :

"व्यूह रचो,
अभिनव व्यूह रचो !
भक्षक संस्कृति की छाती पर
फ़ौलादी आज क़दम रखकर
निर्भय हो भीषण अभियान करो ।"[158]

वह अभियान तत्कालीन भारतीय समाज में चुनौती का सामना करने के लिए प्रेरक सिद्ध होता है । यथा :

"युग-विरोधी शक्तियों को दे चुनौती
हर क़दम पर, हर क़दम पर
बढ़ रहा है दृढ़ जन-समुन्दर ।"[159]

कवि महेन्द्र साम्राज्यवाद विरोधी कवि हैं । कवि की भावना है 'देश-देश की स्वतंत्रता अमर रहे' और इसी भावना से वह साम्राज्यवाद का विरोध करता है :

"शैतान के साम्राज्य में तूफ़ान आया है,
जो ज़िन्दगी को मुक्ति का पैग़ाम लाया है !
इन्सान की तक़दीर को बदलो,
भयभीत हर तसवीर को बदलो
हमारे संगठित बल की यही ललकार है !"[160]

'जीने के लिए' कविता संग्रह में समसामयिक जीवन-बोध का चित्रण है । आम आदमी को विषय बनाकर लिखी गई ये कविताएँ अपनी प्रभावान्विति में विशिष्ट हैं । चारों ओर से शोषण का शिकार आम आदमी ही है । इस शोषण में शामिल हैं - नेता, अफ़सर, ठेकेदार ।[161]

प्रत्येक देश और समाज में शोषण के नग्न-नृत्य के आयोजन के लिए

रंगमंच का निर्माण कुछ गिने-चुने पूँजीपतियों तथा साम्राज्यवादी एवं सामंतशाही प्रवृत्तियों के पोषकों द्वारा किया जाता है । यह सारा खेल पूँजी-निवेश, श्रम, उत्पादन और मुनाफ़े के चक्रव्यूह में चलता है, जिसके केन्द्र में होता है - मजदूर । फिर चारों ओर से उस केन्द्रीय शक्ति यानी मज़दूर का शोषण प्रारंभ होता है । लेकिन अब समय आ गया है कि मेहनतकश इन्सान अपने हक के लिए आवाज़ उठायें -

"लड़ाई हमारी / अधूरी रहेगी नही / बीच में ही / रुकेगी नहीं /

मेहनतकश सबल साहसिक शूर हैं / नाम मज़दूर है /

उसकी लड़ाई अंतिम विजय तक थमेगी नहीं ।"[162]

कहना व्यर्थ है कि हमेशा मुल्ला-मौलवियों ने मजहबी क़त्लेआम को खुदा का आदेश करार देकर मठाधीशों ने धर्म-रक्षा और धर्म-युद्ध का कवच चढ़ाकर, आम आदमी को गुमराह किया है । यदि यही सत्य है, तब उस ईश्वर के अस्तित्व पर संदेह होना ग़ैर-वाजिब नहीं ।[163]

निश्चय ही, इससे तो ईश्वर के होने से न होना अच्छा, क्योंकि यदि ईश्वर ही ऐसे अधार्मिक कुकृत्यों को जन्म देता है, भीषण रक्तपात करवाता है, बेगुनाहों और मासूमों का खून पीकर संतुष्ट होता है, तो हमारे लिए ऐसे ईश्वर की सार्थकता नहीं, कोई मूल्य नहीं । हमें इन तमाम सड़ी-गली आस्थाओं को तिलांजलि देनी होगी । इन कुकृत्यों के लिए ज़िम्मेदार विभाजक रेखाओं को तोड़ना होगा -

"तोडो -

कृत्रिम सीमा-रेखाओं को,

तोड़ो धर्मों की

असम्बद्ध, अप्रासंगिक, दकियानूसी । आस्थाओं को,

तोड़ो -

जातियों-उपजातियों की विभाजक व्यवस्थाओं को ।"

स्वतंत्रता के बाद देश नव-निर्माण की ओर अग्रसर हुआ । फिर भी

कई विषमताएँ देखने मिलती हैं । इन विषमताओं के बावजूद नये युग का मानव अपने स्वप्न पूर्ण करने की ओर अग्रसर है -

"संघर्षों की ज्वाला में
हँस-हँस
नव-निर्माणों के गीत
उमंगों के तारों पर
जन-जन गाता है,
भारत अपने सपनों को
सत्य बनाता है ।"[164]

नव-युग में यदि कोई व्यक्ति अप्रासंगिक मान्यताओं पर विश्वास करता है तो कवि उसे पुरातन रास्ता बदलकर नयी राह पर चलने का आग्रह करता है :

"चिर प्राचीन विषम
मग के प्रेमी
विश्वासी
रुढ़ि-ग्रस्त
बदलो अपने पथ को बदलो ।"[165]

कवि समाज के समक्ष चुनौती भरा प्रश्न रखता है -

"पुरानी धारणाओं से, पुरानी कल्पनाओं से
कभी क्या जीत पाओगे ?
कभी अपने बनाए लक्ष्य को
साकार कर क्या देख पाओगे ?
बदलते विश्व के सम्मुख
कि अनुसंधान जब विज्ञान के बढ़ते चले जाते ।"[166]

कवि नवीन संकल्पों की घोषणा करता हुआ कहता है - 'आज फिर से नव सिरे से चाहता हूँ विश्व का निर्माण ।'[167] और एक दिन उसे अपनी कल्पना साकार होती नज़र आती है । 'परिवर्तन हो..... नवजीवन'[168] के आग्रह के साथ कवि का आश्वासन भरा स्वर सुनाई देता है -

"लो बदलता है ज़माना ।
ज्वाल जग में लग गई है
आग जीवन की नई है
जल रहा है जीर्ण जर्जर-टूट मिटता सब पुराना ।"[169]

और जब जीर्ण मिट रहा है तब नवीन विचारों के प्रसार-प्रचार के लिए नई ऋचाओं का निर्माण आवश्यक है -

"आओ,
जीवन की गीता को
अभिनव संदर्भ प्रदान करें ।
बदला जब
परिवेश मनुज का
आओ नई ऋचाओं का निर्माण करें ।"[170]

डॉ. ज्ञानप्रकाश महापात्र के शब्दों में 'आहत युग' के कवि ने केवल आहत युग की पीड़ा, विवशता, असहायता आदि का साक्षात्कार नहीं कराया है, बल्कि इस स्थिति से उबरने की व्याकुल कामना भी व्यक्त की है ।"[171]

कवि महेन्द्र नव-जीवन के कामी हैं । परिवर्तन में विश्वास करनेवाला यह कवि केवल 'स्व' के खोल में सिमटे रहनेवाले व्यक्ति न होकर, स्वेत्तर-फैलाव के प्रति आस्थावान है । डॉ. स्वर्णकिरण के शब्दों में महेन्द्र भटनागर परिवर्तनशील मानव-मूल्यों के प्रति जागरूक हैं और अपने को गतानुगतिक देखने के पक्षपाती नहीं हैं । महेन्द्र जी व्यक्तिवादी जीवनदर्शन के विरोधी नहीं हैं, सामाजिक अपितु सार्वजनिक उत्थान के आग्रही हैं । व्यक्ति-व्यक्ति के शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार को दूर कर वे सामूहिक मंगल का स्वप्न देखते हैं ।"[172]

समष्टि-हित की आकांक्षा :

समष्टिगत यथार्थ पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए डॉ. द्वारकाप्रसाद बलदेवप्रसाद साँचीहर कहते हैं कि - "समष्टिगत यथार्थ से मेरा अभिप्राय समाजगत यथार्थ-बोध से है ।"[173] इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि समष्टि-हित अर्थात् समाज के प्रत्येक व्यक्ति के भले की इच्छा । प्रगतिवादी कवियों ने समाज के प्रत्येक व्यक्ति के हित में सोचा है । प्रगतिवादी कविता यथार्थ का चित्रण करती है । डॉ. रमाकान्त शर्मा का यह विचार है कि - 'परवर्ती छायावादी कवि की वैयक्तिक चेतना सामाजिक यथार्थ और अपने जीवन के लौकिक यथार्थ से अधिक प्रभावित है ।'[174]

प्रगतिवादी कविता में समष्टि-हित प्रमुख है । यद्यपि हम स्वतंत्र हैं, हमारे यहाँ प्रजातंत्र है, संविधान की सर्वोच्च सत्ता है, किन्तु व्यवहारतः हम आज भी पुरानी विचारधारा से ग्रसित हैं । हम एक स्वाधीन देश के नागरिक हैं, हमें अपने अधिकारों का बोध है, नये युग-जीवन के कर्तव्यों, दायित्वों की जानकारी हमें है, फिर भी हम परम्परा के विषैले मणिधरों को दुग्ध-पान करा रहे हैं । समाज में चारों ओर चाटुकारिता, सिफारिश, अन्याय, अनीति, शोषण का बोलबाला है । जाति-पाति, धर्म-संप्रदाय, ऊँच-नीच की दीवारें ढहने के स्थान पर और मज़बूत बनती जा रही है । महेन्द्र भटनागर ने समष्टि हित के लिए इन सभी पर अपने भावों-विचारों को प्रस्तुत किया है ।

कवि समष्टिहित की शुरूआत स्वयं से शुरू करता है :

"कवि उठो ।
रचना करो, तुम एक ऐसे विश्व की
जिसमें सुख-दुख बँट सकें ।"[175]

यहाँ कवि का जैसे अपने आपसे आग्रह है कि युगों से उपेक्षित और अत्याचार के घातक प्रहार सहते लोगों के प्रति संवेदना मुखर होनी चाहिए । 'जिजीविषा' काव्य-संग्रह की अनुष्ठान रचना में :

ग़रीबी अब अमीरी के न कदमों पर झुकेगी
हाथ फैलाते हुए
अब और दीखेंगे न जूठे चार-टुकड़ों के लिए
मानव बुभुक्षित ![176]

यहाँ कवि महेन्द्र ने गरीबों के हित और सम्मान के लिए सशक्त पैरवी की है । उन्हें विश्वास है कि

'जब भूमि बदलेगी

मार्ग बदलेगा ।'[177]

डॉ. माधुरी शुक्ला का कथन है कि शोषितों, दलितों और प्रताड़ितों के प्रति कवि की गहरी सहानुभूति और विश्व-व्यापी संवेदना को वाणी देनेवाली रचनाएँ भी कवि महेन्द्र भटनागर के काव्य भंडार में एक बड़ी संख्या में है ।"[178]

कवि अपनी लेखनी को संबोधित कर उसे युग के प्रति सचेत रहने के लिए कहता है :

"लेखनी मेरी ।

समय पट पर चलो ऐसी कि जिससे

त्रस्त जर्जर विश्व का

फिर से नया निर्माण हो !"[179]

कवि महेन्द्र सामूहिक आन्दोलन से परिवर्तन का आह्वान करते हैं :

सामूहिक हुंकारों से विद्रोह करो ![180]

प्रगति के लिए मानव को भय से मुक्त करना पड़ेगा । कवि कहते हैं :

मनुष्य का भविष्य
अंधकार से,
शीत-युद्ध-भय-प्रसार से
मुक्त हो,
मुक्त हो ! (जिजीविषा : 'विनाश-लीला', पृ.64)

क्योंकि :

"मृत्यु के कगार पर
खड़ी मनुष्यता सभीत
बार-बार लड़खड़ा रही !" (जिजीविषा : 'विनाश-लीला', पृ.33)

कवि महेन्द्र में एक तड़प है । उन्होंने समाज के हित में गंभीरता से

सोचा है । वे कहते हैं :

"हृदय में मेरे आज भी
नई रंगीन दुनिया की नई तस्वीर है
दुनिया को बदलने की प्रसवनी पीर है !
क्या तुम उसे भी देख
मुझको साथ लेकर चल सकोगे ?"[181]

कवि महेन्द्र ने जहाँ समाज के हित में अपनी कलम से क्रांति लाने का प्रयास किया है वहीं समाज के पिछड़े लोगों के विचारों को भी आधुनिकता से सिक्त कर दिया है । समाज के पिछड़े लोगों के हित में उन्होंने अपनी कलम चलायी है । अछूत, मजदूर, किसान और नारी जो ताड़ना के शिकार होते रहे हैं उनको कवि ने क्रांति की मशाल लेकर आगे बढ़ाया है । इसलिए कवि महेन्द्र की कविता अधिकांशतः जनवादी कविता है । इसमें जन-जीवन की आकांक्षाओं, आशा-निराशाओं और जीवन संदर्भों को वाणी प्रदान की गयी है ।

कवि महेन्द्र मजदूर-किसान को महत्व को समझाते हुए लिखते हैं :

"घर-घर नया सबेरा लाने वाले हम
दुनिया को रंगीन बनानेवाले हम
कलियों को मधुगंद्य दिलानेवाले हम
कंठों में नव-गान बसानेवाले हम ।"[182]

कवि किसान-मजदूर को बदलते हुए युग में अपने स्वत्व की रक्षा के लिए एकजुट होकर उठ खड़े होने को प्रेरित करता हुआ कहता है :

"ओ मज़दूर-किसानो !
अपना पथ पहचानो ।
....
बदल चुका है जग में
आज ज़माना, मानो ।"[183]

अछूतों हरिजनों की वेदना को भी कवि महेन्द्र ने वाणी प्रदान की है :

"हम तो है अब भी

दबे, दुखी औ' दीन पतित

बाबू लोगों की गाली के

गुस्से के

एक मात्र इन्सान कहाँ,

कुत्तों से भी बदत्तर ।"[184]

डॉ. अम्बेडकर यह मानते थे कि जो वर्ग लम्बे समय तक गुलाम रहा, प्रताड़ना झेलता रहा, अपमानित होता रहा, शोषण झेलता रहा, अपनी ऐसी स्थिति के लिए वह स्वयं भी कही-न-कही ज़िम्मेदार है । तभी तो उन्होंने उस वर्ग को शिक्षा, संगठन और संघर्ष का नारा देकर इस दारुण स्थिति से मुक्त होने की प्रेरणा दी । यही चेतना दलित साहित्य का प्राणतत्व बनकर उभरी है ।"[185] आंबेडकर की इसी दलित चेतना से प्रभावित कवि महेन्द्र कहते हैं :

"उठो, पीड़ित, तिरस्कृत

आज युग युग के सभी मानव !

जगाता है तुम्हें

नूतन जगत का नया यौवन ।

अमर हो क्रांति

मानव-मुक्ति की क्रांति ।"[186]

कवि महेन्द्र भटनागर की मध्यवर्गीय तटस्थ मनीषा निम्न वर्गीय जनचेतना से तादात्म्य स्थापित करती प्रतीत होती है । दोनों ही युग परिवर्तन के संघर्ष में कन्धे-से-कन्धा मिलाकर शामिल हो सकें और बन सके नई दुनिया के सहयात्री :

"क्योंकि मैं अब तक

विलग, निर्लिप्त तुमसे

मध्यवर्ती

दूर और तटस्थ था ।"[187]

यह संयुक्ति वर्तमान युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है ।

कवि महेन्द्र भटनागर नारी के हित में भी अपनी लेखनी से शुभकामनाएँ प्रकट की हैं । सदियों से नारी पीड़ित अवस्था चली आ रही है । प्रगतिशील कवियों ने नारी की अस्मिता को पुनः स्थापित किया; जिनमें महेन्द्र भटनागर भी एक है । वे स्त्री को अपनी अस्मिता की स्मरण कराता हुआ कहता है :

"तुम नहीं कोई
पुरुष की ज़र-खरीदी चीज़ हो,
तुम नहीं
आत्मा-विहिना सेविका
मस्तिष्क हीना-सेविका,
गुड़िया हृदय-हीना
नहीं हो तुम
वही युग-युग पुरानी
पैर की जूती किसी की,
आदमी के
कुछ मनोरंजन-समय की वस्तु केवल ।"[188]

स्त्री शक्तिपुंज है - यह कवि महेन्द्र भटनागर अच्छी तरह जानते हैं वह तूफ़ान के रुख़ को बदल सकती है । इसी ताक़त की याद दिलाता हुआ कवि कहता है :

"तुम नहीं कमज़ोर
तुमको चाहिए ना सेज फूलों की
नहीं मझधार में तुम
अब खडी शोभा बढ़ाती दूर कूलों की !
अब दबोगी तुम नहीं
अन्याय के सम्मुख
नई ताकत बड़ा साहस

ज़माने का तुम्हारे साथ है ।"[189]

कवि महेन्द्र भटनागर समाज हित का खयाल करते हैं । वे समाज के कोढ़ दुर्व्यसनों और कुरिवाजों पर करारा व्यंग्य करते हैं । कवि धर्म में श्रद्धा रखता है पर पत्थर से अपने अच्छे भविष्य के लिए दुआ माँगने के खिलाफ़ है। कवि कहता है -

वरदान अमरता का प्रतिपल मत माँगों रे जड़ पाहन से

गा-गा अगणित वंदन के स्वर !

जीवन में तुमको होना है श्रमशील अथक उन्मुक्त निडर ![190]

कवि जैसे जन-जन में यह विश्वास जगा देना चाहता है :

श्रम करेंगे तो -

हमारे स्वप्न

सब साकार होंगे ।

सुदृढ़ आधार होंगे ।

कवि अबोधों में प्रबोध, भय-ग्रस्तों में अभय और मूकों में वाणी तथा निष्प्राणों में नवीन प्राणों का अमोघ मंत्र फूँक देना चाहता है :

"गरजो,

पुरज़ोर गरजो ।

अनीति विरूद्ध

प्रज्ञा प्रबुद्ध ।"[191]

कवि महेन्द्र ने उच्च से निम्न और अमीर से गरीब तक सबके हित की मंगल कामना की है । कवि की लोकमंगलकारी कामना निखिल सृष्टि के कण-कण के लिए ऐसी सुखदा, शुभदा भोर चाहती हैं :

"जीवन की हर सुबह सुहानी हो !

भरलो हास बहारों का

नदियों फूल कछारों का

फूलों गजरों हारों का

कण कण की हर्षान्त कहानी हो ।"[192]

विषम स्थिति में भी कवि अपना आत्मविश्वास बनाए रखता है । वह स्वयं को मिटाकर सामूहिक चेतना जगाना चाहता है । यथा :

"हूँ नए युग का मनुज मैं, बद्ध हो पाया न जीवन,
मार्ग में रुकना कहाँ जब पा रहा युग का निमंत्रण,
यदि बदल पाया ज़माना है तभी सार्थक जवानी !
है अमर ये गान मेरे, है अमर मेरी कहानी !"[193]

कवि किसी भी अन्याय तथा अमानवीय स्थिति से समझौता करना नहीं चाहता । वह केवल एक ही घोषणा करता है :

मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग को निर्मित करनेवाला हूँ ![194]

कवि अपने जीवन का मार्ग क्रांतिपथ बताता है :

क्रांति-पथ पर बढ़ रहा हूँ द्रोह की ज्वाला जगाने ।[195]

उसका ध्येय है :

प्रगति ही ध्येय जीवन का, बना संबल

कवि एक क्रांतिकारी की भूमिका निभाना चाहता है :

"हुँकार हूँ, हुँकार हूँ !
मैं क्रान्ति की हुँकार हूँ !
मैं न्याय की तलवार हूँ !"[196]

कवि को यह भी ज्ञात है :

"हँसूंगा व जीवित रहूँगा
सफलता बिना
निखरता मनुज का न जीवन
विफलता बिना ।"[197]

इसी क्रम में कवि उद्‍घोष करता है कि :

"जो जीवन की विपदाओं को

हँस हँस झेल लिया करते हैं -

केवल वे मेरे साथी हैं ।"[198]

जब कभी कोई तूफानों में फँस जाता है तो कवि उसे भी सांत्वना देता हैं; उसे अडिग रहकर तूफ़ान का सामना करने का हौसला देता है :

रे हत हृदय,

टूटना मत

विपत घोर-घन-चोट सहना ![199]

कवि महेन्द्र ने यही चाहा :

"सदियों बाद जगा है मानव

अधिकारों की आवाज़ लगी ।"[200]

और इसी क्रांतिकारी आवाज का कवि पक्षपाती है :

जो दुनिया की शोषित जनता का एकीकरण करे,

वह जनवाणी है

वह युगवाणी है ।[201]

इस तरह कवि महेन्द्र की कविता समष्टि हित के लिए मुखरित हुई है। महेन्द्र की साहित्य-साधना स्वातंत्र्य पूर्व समाज-व्यवस्था व वर्तमान सामाजिक विडम्बना के विरुद्ध है । डॉ. शिवकुमार मिश्र के शब्दों में - "ये कविताएँ एक ऐसे कवि के रचना-कर्म की फलश्रुति है, अपने अब तक के आयुष्य के छह दशकों तक अपने समय से सीधे आँखें मिलाते हुए जिसने उसके एक-एक तेवर को पहचाना और शब्दों में बाँधा है । इन कविताओं में समय के बहुरुपी तेवर ही नहीं, पूरे समय के पट पर, कभी साफ-सुथरी, परन्तु ज्यादातर पेचीदा और गड्डमड्ड लिखी हुई उस इबारत का भी खुलासा है जिसे बड़ी शिद्दत से कवि ने पढ़ा-समझा और उसके पूरे आशयों के साथ हम सबके लिए मुहैया किया है ।.......

एक लम्बे रचनाकाल का साक्ष्य देती इन कविताओं में सामाजिक यथार्थ की बहुआयामी और मनोभूमि और मनोभावनाओं की ताज़गी है तो उसका अवसाद, असंमजस और बेचैनी भी । ललकार, चेतावनी, उद्‌बोधन और आह्वान है तो वयस्क मन के पके अनुभव तथा उन अनुभवों की आँच से तपी-निखरी सोच भी है । कहीं स्वरों में उद्‌घोष है तो कहीं वे संयमित है। समय की विरूपता, क्रूरता और विद्रूपता का कथन है तो इस सबके खिलाफ उठे प्रतिरोध के सशक्त स्वर भी । समय के दबाव है तो उनका तिरस्कार करते हुए मुखर होनेवाली आस्था भी । परन्तु इन कविताओं में मूलवर्ती रुप में सारे दुख-दाह और ताप-त्रास के बीच जीवन के प्रति असीम राग की ही अभिव्यक्ति है । आदमी के भविष्य के प्रति अप्रतिहत आस्था की कविताएँ है ये और इस आस्था का स्रोत है कवि का इतिहास-बोध और उससे उपजा उसका ‘विजन’ । कवि के उद्‌बोधनों में, आदमी के जीवन को नरक बनाने वाली शक्तियों के प्रति उसकी निष्कम्प आस्था में उसके इस ‘विजन’ को देखा जा सकता है ।”[202]

अध्याय-5

1. ‘बृहत हिन्दी कोश’-2, वृजेन्द्र चतुर्वेदी, अनिल चतुर्वेदी, पृ.1255
2. ‘साहित्यिक निबंध’, रा. शर्मा, पृ.341
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ग्रंथावली-3, पृ.4
4. “साहित्यिक निबंध से उद्धत’, पृ.341
5. वहीं, पृ.353
6. ‘मेरे प्रिय निबंध’, महादेवी वर्मा, पृ.21
7. ‘साहित्यिक निबंध’, पृ.353
8. मेरे प्रिय निबंध, महादेवी वर्मा, पृ.24
9. साहित्यिक निबंध, द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ.423
10. मेरे प्रिय निबंध, महादेवी वर्मा, पृ.24
11. वहीं, पृ.25
12. साहित्यिक निबंध द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ.423
13. वहीं, पृ.423
14. वहीं, पृ.423
15. ‘मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य’ : रामविलाश शर्मा, पृ.30
16. विचार और वितर्क, आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.95
17. वहीं ।
18. वहीं ।
19. ‘बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे’ नई चेतना, पृ.1
20. आमुख महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1 से उदृत डॉ. बलिन्द्र शेखर तिवारी
21. दि थिअरी ऑफ ब्यूटी (1962) ई. एक कैरिट, पृ.162
22. ‘साहित्य का समाजशास्त्र’, नगेन्द्र, पृ.101 से उदृत
23. वहीं ।
24. वहीं, पृ.114
25. वहीं, पृ.115
26. वहीं, पृ.117
27. ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ से डॉ. नगेन्द्र, पृ.70
28. साहित्यिक निबंध प्रगतिवाद, रामचंद्र शर्मा
29. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, भूमिका से डॉ. श्रीनिवास शर्मा
30. ‘हिन्दी के प्रगतिशील कवि’, डॉ. रणजीत, पृ.97
31. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड, पृ.99
32. ‘हरिजन’, डॉ. कैलाशनाथ उपाध्याय, पृ.107
33. वहीं ।
34. वहीं, पृ.106
35. वहीं, ‘संध्या’, पृ.103
36. वहीं, ‘बेबसी’, पृ.178
37. वहीं, ‘प्रलय संगीत’, पृ.178

38. वहीं, 'कवि', पृ.179
39. 'मेरे देश में' समग्र-1, पृ.263
40. वहीं ।
41. वहीं 'जिन्दगी कैसे बदलती है', पृ.271
42. वहीं 'देशी रजवाडी', पृ.247
43. 'महेन्द्र भटनागर समग्र-2', मुझे हे याद, पृ.76
44. वहीं 'जयहिंद', पृ.231
45. वहीं, 'मिल-मजदूर', पृ.247
46. महेन्द्र भटनागर, समग्र-2, पृ.130 'आजादी का त्यौहार'
47. वहीं, पृ.131
48. वहीं, पृ.132
49. 'आशिष' समग्र खण्ड-1, पृ.94
50. 'कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार', वैजनाथ राय, पृ.29
51. 'कवि महेन्द्र भटनागर सृजन और मूल्यांकन, कवि महेन्द्र का काव्य एक सर्वेक्षण', डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.5
52. 'आधुनिक साहित्य और कला', पृ.47
53. अन्तराल 'जल्दी करो' समग्र खण्ड-1, पृ.158
54. अन्तराल 'चुनौती', समग्र खण्ड-1, पृ.129
55. बदलता युग, 'मालवा में अकाल', समग्र खण्ड-1, पृ.267
56. बदलता युग, 'धरती की पुकार', समग्र खण्ड-1, पृ.265
57. 'महेन्द्र भटनागर के काव्य में विश्वव्यापी संवेदना और देशभक्ति', डॉ. नत्थन सिंह, कवि महेन्द्र भटनागर सृजन और मूल्यांकन से डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.40
58. 'हिन्दी पर्यायवाची कोश, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृ.489
59. 'भाषा-शब्द-कोश', डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', पृ.1246
60. समाजशास्त्र, विश्वकोष - हरिकृष्ण रावत, पृ.165
61. 'दर्शनकोश', प्रगति प्रकाशन, पृ.479
62. वहीं, पृ.479-480
63. 'अशोक के फूल', आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.179
64. 'विचार और वितर्क', आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.95
65. वहीं, पृ.86
66. गुरुनानक देव - आलोचना, अक्टूबर-दिसम्बर, 1969, पृ.53
67. 'हिन्दी साहित्य', आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.429
68. वहीं, पृ.429
69. वहीं, पृ.429
70. 'उद्बोधन', आणिमा-निराला, पृ.36-37
71. 'भिक्षुक' - निराला प्रगतिशील कविता के मील पत्थर, सं. डॉ. रणजीत सिंह, पृ.23

72. ‘निर्माण’, बच्चन, वहीं, पृ.40
73. संवर्त, ‘नवोन्मेष’, पृ.72
74. संकल्प - ‘बाधाएँ चुनौति है’, पृ.17
75. संतरण - ‘अनुबोध’, पृ.17
76. टूटती श्रृंखलाएँ - ‘नयी रचना’, पृ.29
77. वहीं, ‘संक्रांतिकाल’, पृ.12
78. नई चेतना - ‘नया युग’, पृ.68
79. जिजीविषा, ‘अनुष्ठान’, पृ.42
80. संवर्त - ‘जीवन संदर्भ’, पृ.50
81. वहीं, ‘योगदान’, पृ.71
82. संकल्प - ‘आओ जलाएँ’, पृ.43
83. वहीं, ‘प्रण’, पृ.48
84. जिजीविषा, ‘मुक्त हो’, पृ.64
85. वहीं, ‘भविष्यत्’, पृ.33
86. नई चेतना, ‘बिजलियाँ गिरने नहीं देंगे’, पृ.1
87. गांधी व्यक्तित्व विचार और गांधीवाद, ज्ञानेन्द्र रावत, पृ.48
88. संतरण ‘आलोक’, पृ.93
89. बदलता युग, ‘शराबी’, पृ.213
90. जूझते हुए ‘आह्वान’, पृ.36
91. बदलता युग - ‘एकता से’, पृ.196
92. ‘कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार, सं. डॉ. विनयमोहन शर्मा’, पृ.14
93. ‘दर्शनकोश’, पृ.616
94. वहीं, पृ.616
95. वहीं, पृ.617
96. वहीं, पृ.618
97. ‘कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार - स्वरूप और अकृत्रिम अभिव्यक्ति’, डॉ. बैजनाथ राय, पृ.23
98. ‘बूंद नेह की - दीप ह्रदय का’, पृ.5
99. ‘महेन्द्र भटनागर रचना संचार’, विनय मोहन शर्मा, पृ.11
100. कवि महेन्द्र भटनागर का रचनासंसार : ‘तरल आत्मिय बिम्बों का कवि’, डॉ. लक्ष्मण गौतम
101. ‘कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार’, पृ.13
102. जूझते हुए ‘त्रासदी’, पृ.33
103. ‘कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार’, सं. डॉ. विनय मोहन शर्मा - ‘बूँद नेह की दीप ह्रदय का’, बैजनाथ राय, पृ.29
104. ‘बहने देना’, पृ.74
105. बदलता युग - ‘दमितनारी’, पृ.190
106. ‘अपराजित’, पृ.107

107. ‘विश्वजी’, पृ.118
108. संकल्प - ‘सहभाव’, पृ.1
109. नई चेतना, ‘नया युग’, पृ.68
110. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, ‘नश्वर तारक’, पृ.66
111. कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार से डॉ. विनय मोहन शर्मा, पृ.15
112. विहान, पृ.125
113. वहीं
114. वहीं
115. बदलता युग - ‘नई दुनिया’, पृ.89
116. अन्तराल, पृ.63
117. वहीं
118. वहीं
119. नई चेतना, पृ.128
120. वहीं
121. जिजीविषा
122. ‘डॉ. महेन्द्र भटनागर का रचना संसार से’, डॉ. विनय मोहन शर्मा : ‘सामुहिक श्रेय’ : वैयक्तिक प्रेय - राजेन्द्र प्रसाद सिंह, पृ.66
123. जिजीविषा, पृ.23
124. संतरण, पृ.84
125. ‘आहत युग’, पृ.120
126. वहीं, ‘जरूरी’
127. ‘डॉ. महेन्द्र भटनागर का कवि व्यक्तित्व’, सं. डॉ. रवि रंजन, पृ.187
128. ‘कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार’, सं. डॉ. विनय मोहन शर्मा, पृ.90
129. भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता संघर्ष 1857-1947, एम. एल. धवन भूमिका से
130. वहीं, पृ.57
131. वहीं
132. वहीं, पृ.68
133. ‘आधुनिक हिन्दी काव्य’, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ.11
134. वहीं, पृ.4
135. वहीं, पृ.3
136. वहीं, पृ.4
137. ‘भारतेन्दु ग्रंथावली’ भाग-1, ब्रजरत्नदास, पृ.469 (सं.2007)
138. ‘भारतेन्दु हरिश्चन्द्र’, डॉ. राम विलास शर्मा, पृ.24 (सं.1956(
139. भारतेन्दु प्रतिनिधि, रचनाएँ एक कृष्णदत्त पालीवाला, पृ.311 (सं.1987)
140. वहीं
141. बाल मुकुन्द गुप्त ग्रंथावली, सं.नत्थन सिंह, पृ.243
142. ‘प्रिय प्रवास’ ‘हरिऔध’ सर्ग-11, छन्द-84, पृ.132

143. 'साकेत' - मैथिलीशरण गुप्त, पृ.166
144. 'अजित' मैथिलीशरण गुप्त, पृ.54-55
145. रामनरेश त्रिपाठी ग्रंथावली (भाग-1) सं.आनन्द कुमार त्रिपाठी, पृ.143
146. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.286
147. वहीं, पृ.311
148. वहीं, पृ.310
149. वहीं, पृ.311
150. 'प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर : अनुभूति और अभिव्यक्ति', पृ.80
151. टूटती श्रृंखलाएँ, 'स्वातन्त्र झंझावात', पृ.2
152. वहीं, 'उद्बोधन', पृ.26
153. नई चेतना, 'आजादी का त्यौहार', पृ.4
154. नई चेतना, 'युग और कवि', पृ.46
155. जूझते हुए 'जनवादी', पृ.41
156. जिजीविषा, 'अनुष्ठान', पृ.42
157. जिजीविषा, 'लेखनी से', पृ.35
158. अभियान, 'अभियान', पृ.168
159. टूटती श्रृंखलाएँ, 'जन-समुन्दर', पृ.8
160. नई चेतना, 'ललकार', पृ.3
161. जीने के लिए, 'माहौल', पृ.31
162. वहीं, 'विजय-विश्वास', पृ.32
163. वहीं, 'नए ईसानों से', पृ.23
164. संतरण, 'नया भारत', पृ.99
165. टूटती श्रंखलाएँ, 'संक्रांतिकाल', पृ.12
166. नई चेतना, 'नई दिशा', पृ.33
167. टूटती श्रृंखलाएँ, 'संक्रांतिकाल', पृ.12
168. अभियान, 'परिवर्तन हो', पृ.143
169. बदलता युग, 'बदलता युग', पृ.218
170. संवर्त - 'जीवन संदर्भ', पृ.59
171. डॉ. महेन्द्र भटनागर का कवि व्यक्तित्व सं. डॉ. रवि रंजन 'आहत युग', आम आदमी की पक्षधर जनवादी काव्यकृति, डॉ. ज्ञानप्रकाश महापात्र, पृ.174
172. वहीं, महेन्द्र भटनागर के गीतों में आस्था, जिजीविषा और संघर्ष चेतना, डॉ. स्वर्णकिरण
173. छायावादोत्तर हिन्दी कविता 'प्रवृतिगत एवं शिल्पगत अध्ययन', डॉ. द्वारिकाप्रसाद बलदेव प्रसाद सांचीहार, पृ.71
174. छायावादोत्तर, हिन्दी कविता, डॉ. रमाकान्त शर्मा, पृ.111
175. नई चेतना, 'युग और कवि', पृ.46
176. जिजीविषा, 'अनुष्ठान', पृ.42
177. संवर्त, 'वैषम्य', पृ.68

178. ‘प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर अनुभूति और अभिव्यक्ति’, डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.77
179. जिजीविषा, पृ.लेखन से, पृ.35
180. टूटती श्रृंखलाएँ, ‘उद्‌बोधन’, पृ.26
181. नई चेतना, ‘नये इन्सान तटस्थ वर्ग’, पृ.30
182. जूझते हुए, श्रमजित, पृ.46
183. जिजीविषा, ‘ओ मजदूर किसानो’, पृ.74
184. विहान, ‘हरिजन’, पृ.58
185. दलित साहित्य की भूमिका : हरपाल सिंह ‘अरूष’, पृ.26
186. विहान, ‘हरिजन’, पृ.58
187. नई चेतना, ‘नये इन्सान’ ते तटस्थवर्ग’, पृ.30
188. बदलता युग, ‘नई नारी’, पृ.233
189. वहीं, पृ.233
190. विहान, ‘जीवन दृष्टि’, पृ.25
191. संवर्त, ‘श्रमजित’, पृ.60
192. सन्तरण, ‘सुहानी सुबह’, पृ.61
193. विहान, ‘अभय’, पृ.30
194. अन्तराल, ‘कवि’, पृ.131
195. वहीं, ‘संघर्ष’, पृ.133
196. टूटती श्रंखलाएँ, ‘हुंकार’, पृ.31
197. जिजीविषा, ‘सहाय’, पृ.10
198. जिजीविषा, ‘साथी’, पृ.13
199. संतरण, ‘टूटना मत’, पृ.15
200. टूंटती श्रृंखलाएँ, ‘सदियों बाद’, पृ.1
201. बदलता युग, ‘जनवाणी’, पृ.216
202. डॉ. महेन्द्र भटनागर समग्र कविता खण्ड-3, आमुख से

षष्ठ अध्याय

महेन्द्र भटनागर के काव्य में दलित-वर्ग

6.1 किसान

6.2 मजदूर

6.3 हरिजन

6.4 सर्वहारा

6.5 नारी

❐ निष्कर्ष

षष्ठ अध्याय

महेन्द्र भटनागर के काव्य में दलित-वर्ग

दलित का अर्थ :

"कौन है दलित ?" इसके उत्तर में हरपाल सिंह 'अरुष' ने लिखा है - "दलित कहा जानेवाला ही कभी 'शूद्र', 'अनार्य', 'अस्पृश्य', 'अछूत' और गांधीजी का 'हरिजन' कहा जाता रहा है । इसमें 'आदिवासी', 'घुमंतु', 'अपराधशील जातियाँ', 'महिलाएँ' और 'बँधुआ मज़दूर' भी सम्मिलित हैं । सदियों तक इनका अपमान, शोषण, दलन, प्रताड़न किया गया । पशुओं से भी बदतर इन्हें माना गया । इनको छूना भी पाप माना गया । भगवान और भाग्य का भय दिखाकर इन्हें यथास्थिति में बने रहने पर विवश किया गया । दूसरे वर्णों की सेवा करना ही इनका धर्म निर्धारित किया गया । सेवाधर्म से च्युत होने पर जहाँ विधान में राजकीय दण्ड किये गये, वहाँ धर्म ग्रंथों में भी नरक का भय दिखाया गया है । इनमें चेतना पैदा न हो, इसलिए इनके लिए शिक्षा प्रतिबंधित रही । वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा इन्हें समाज से पृथक कर दिया गया । आगे चलकर वर्ण व्यवस्था से ही जाति व्यवस्था बनी ।"[1] भारतीय समाज बहुस्तरीय है । वर्ण आधारित समाज में सैकडों जातियाँ-उपजातियाँ विद्यमान है । पूर्व में समाज चार वर्णों में विभक्त था, कालान्तर में यही वर्ण, जातियों में बदल गये ।

"हिन्दू-शास्त्रों में चार वर्णों का उल्लेख मिलता है - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र । इनके द्वारा समाज की स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है । लेकिन धीरे धीरे यह विभाजन जटिल होता गया और समाज का एक वर्ग-शूद्र-वर्ग अन्य वर्णों द्वारा उपेक्षित किया जाने लगा । इसे अस्पृश्य मानकर समाज से बहिष्कृत-सा कर दिया गया । भेदभाव की भावना का शिकार होकर यह वर्ग दलित और असहाय होता गया ।"[2] इस वर्ग की विषमताओं का उन्मूलन करने के लिए कबीर, नानक, रैदास आदि ने समय-समय पर महत्वपूर्ण कार्य किए, लेकिन अछूतों के उद्धार कार्य को व्यवस्थित एवं योजनाबद्ध अभियान के रूप में डॉ. आम्बेडकर की विचारधारा ही मूल स्रोत है । "डॉ. आम्बेडकर की विचारधारा का केन्द्र मनुष्य था, इसलिए उसकी

सीमाओं के दायरे में पूरी मानवता समा जाती है ।"[3]

डॉ. आम्बेडकर के अनुसार "समता (समानता), आजादी, भाईचारा लक्ष्य ही नहीं बल्कि मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है । इन्हें हासिल करने के लिए दलित समाज का शिक्षित होना, संघर्षरत रहना और संगठित होना लाज़मी है । वे 'अत दीपो भव' में विश्वास करते थे और मानते थे कि कोई बाहरी व्यक्ति, शक्ति, चमत्कार अथवा अवतार या पैगंबर उनको नहीं उबारेगा। उन्हें अपने भीतर से ही बुद्ध की तरह ज्ञान अर्जित कर, उससे ऊर्जा प्राप्त कर, नायकत्व हासिल करना होगा । उन्हें खुद अपनी अपने समाज की और समूची मानवता के विकास की मुहिम चलानी होगी । वे मानते थे "गुलाम को अहसास करवा दो कि वह गुलाम है, वह मुक्ति संघर्ष कर मुक्त हो जायेगा ।"[4]

भारतीय समाज को गुलामी का अहसास अंग्रेज़ों के राजकाल में हुआ; जिससे मुक्ति पाने के लिए समाज के सभी वर्ग छटपटाने लगे । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय समाज में जागृति आई । दलित शोषित समाज को विभिन्न परिस्थितियों के अनुभवों ने जागृत किया । साहित्यकारों ने अपने साहित्य में दलित-वर्ग की पीड़ा और दुख को वाणी प्रदान की । जिससे समाज में जागृति आयी । यह साहित्य दलित साहित्य के नाम से वर्तमान में प्रचलित है ।

"आर्थिक तथा राजनीतिक रंगमंच पर होने वाले परिवर्तनों ने भारत की सामाजिक स्थिति को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है । ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय समाज में अनेक वर्गों का आविर्भाव हुआ । जातिगत, वर्णगत, धर्मगत और अर्थगत वर्ग प्रमुख रहे हैं । लेकिन बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही विदेशी सत्ता से संघर्षरत भारतीय समाज अपने अन्य भेद-भाव भूलकर केवल तीन वर्गों में बँटा था । ये वर्ग थे - निम्नवर्ग, मध्यमवर्ग और उच्चवर्ग । ये हर जाति, हर धर्म और हर वर्ण में उस काल में अपनी अस्मिता बनाए हुए थे ।"[5]

"प्रगतिवादी कवि जिस विचारधारा से सर्वाधिक प्रभावित हुआ है, उसमें मार्क्सवादी-समाजवादी विचारधारा अपना विशिष्ट स्थान रखती है । तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से ये विचारधाराएँ शोषकों की खिलाफ़त करते

हुए, साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी आक्रामक शक्तियों की कटु आलोचना करते हुए, शोषित वर्ग के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति व्यक्त करती हैं, ठीक उसी प्रकार आलोच्य युग का कवि शोषितों का पक्ष लेता है तथा शोषकों के प्रति अपना तीव्र आक्रोश प्रकट करता है ।"[6]

प्रगतिवादी "कवियों की शोषित-पक्षधारता प्रायः दो रूपों में उभरकर सामने आती है, एक समाज के यथार्थवादी चित्रण के रूप में तो दूसरी शोषितों के प्रति सहानुभूति एवं उनको जागृति का संदेश देने के रूप में ।"[7]

छायावादी कवियों की कविता का विषय प्रकृति-चित्रण एवं काल्पनिक सुख के क्षण था । प्रगतिवादी कवियों ने समाज का, समाज के पिछडे दलित-शोषित-पीड़ित वर्ग का चित्रण किया । निराला की 'तोड़ती पथ्थर', भारत भूषण की 'बाप बेटा बेचता है' इसके उदाहरण हैं । प्रगतिवादी कवियों ने अपनी कविता में युगवाणी को ध्वनित किया है ।

"कवि महेन्द्र भटनागर की कविता अधिकांशतः जनवादी कविता है । उसमें भारतीय समाज में रहने वाले लगभग सभी वर्गों के लोगों की जीवन-पद्धतियों, जीवनाकांक्षाओं, आशा-निराशाओं और जीवन-संदर्भो को वाणी देती रचनाएँ स्वतः ही शामिल हो गई हैं । मज़दूर, किसान, मध्य-वर्ग, निम्न-वर्ग, नारी, हरिजन आदि उनकी कविता के प्रिय पात्र हैं । कवि से इनका जैसे निरन्तर निकट का नाता रहा है । यों तो उसकी लगभग समस्त रचनाओं में सामान्यजन की ही बात कही गई है । मगर कुछ रचनाएँ तो उन्होंने उपर्युक्त पात्रों को जैसे पृथक-पृथक उनके नामों को विशेष रूप से रेख्रांकित करते हुए समर्पित की हैं ।"[8] यहाँ हम क्रमशः ऐसी ही रचनाओं और पात्रों पर विमर्श करते हैं ।

दलित वर्ग :

6.1 *किसान :*

प्रगतिशील कवियों ने निम्न-वर्ग को अपने काव्य विषय के रूप में अपनाया । इस युग की कविता का जन्म शायद इसी वर्ग की हिमायत के लिए हुआ ।

"महाजन-वर्ग के उदय के साथ ही किसानों के ऊपर दोहरी चोट पड़नी शुरु हो गई । साहुकारों एवं कारिंदों ने मिलकर किसानों की स्थिति को पूरी तरह से तबाह कर डाला । इस प्रकार ब्रिटिश शासन के दौरान जो वर्ग सबसे अधिक पीड़ित था वह था - किसान ।"[9]

कृषक अपने जीवन-यापन एवं कृषि-कार्य हेतु ऋण लेने के लिए बाध्य हुए । "ऋण चुकाने की असमर्थता के परिणाम-स्वरुप किसान खेतिहर मजदूर बना, शहरों को चला और अन्ततः मशीनी दुनिया की विभिषिका में ग्रसित होकर घुल गया ।"[10] ऋण के ब्याज में अपनी समूची कमाई देकर भूखे मरने के लिए विवश कृषक साहित्यकार की दृष्टि से उपेक्षित नहीं रहा । किसानों की दुर्गति का चित्रण प्रगतिवादी कवियों ने सविस्तर से किया है ।

भारतीय कृषक-जीवन की विडम्बनापूर्ण स्थिति को प्रकट करते हुए रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा है -

"जेठ हो कि हो पूस, हमारे
कृषकों को आराम नहीं है,
छुटे बैल के संग, कभी,
जीवन में ऐसा काम नहीं है ।
मुख में जीभ, शक्ति भुज में -
जीवन में सुख का काम नहीं है,
वसन कहाँ ? सुखी रोटी भी -
मिलती दोनों शाम नहीं है ।"[11]

तो यह विषमता भी है :

"श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं ।
युवती के लज्जा-वसन बेच, जब ब्याज चुकाए जाते हैं ।
मालिक जब तेल-फूलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहाते हैं ।
पापी महलों का अहंकार, देता मुझको तब आमंत्रण ।"[12]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता भी इसी पथ पर विचरण करती बढी है । अभाव और अनाचार में दबे कृषक के जीवन का यथार्थ कवि कुछ ऐसे बयाँ करते हैं :

"बढ़ता जा रहा है ब्याज
दस से सौ रकम, हा !
हो गई है आज ।
पटवारी हमारे खेत पर हावी,
फसल सारी उसीने ली
कराकर कोठरी खाली,
खड़े है हम लुटाकर घर
भरे ये हाथ अपने झाड़कर ।"[13]

ऐसा नहीं था कि - किसान-वर्ग अपनी इस स्थिति से परिचित नहीं था । सब कुछ जानते हुए भी वह मजबूर था । "सन् 1917 की रूसी क्रांति के बाद किसान वर्ग में भी एक चेतना जागी तथा उन्होंने अपने हितों की रक्षा हेतु संगठित होकर आंदोलनों को भी जन्म दिया ।"[14] स्वतंत्रता के पश्चात भी किसानों की स्थिति में संतोषप्रद सुधार न हो सका । किसानों की समस्या आज भी एक क्रांतिकारी समाधान की माँग कर रही है । प्रगतिवादी कवियों ने इनकी समस्याओं को अपने काव्य के माध्यम से वाणी प्रदान की है और उन्हें अपने अधिकारों के लिए जागृत करने का प्रयास किया है ।

कवि महेन्द्र भटनागर किसानों को एकजुट होकर उठ खडे होने को प्रेरित करता हुआ कहता है :

'ओ मजदूर किसानो
अपना हाथ पहचानो ।.....
....
बदल चुका है जग में
आज ज़माना, मानो ।'[15]

'जीवन के गान' के कवि शिवमंगलसिंह 'सुमन' को पूर्ण विश्वास है कि एक दिन पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शक्तियों की पराजय होगी तथा दुनिया के कोने-कोने में सुख एवं समृद्धि का साम्राज्य होगा, मज़दूरों एवं किसानों का जय-जयकार होगा । इसलिए वह मजदूरों एवं किसानों को संघर्ष के मार्ग में आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा प्रदान करता है -

तुम गरजो आज प्रलय होगी
शोषक वर्गों की क्षय होगी.
दुनिया के कोने-कोने से
मजलूमों की जय जय होगी,
अत्याचारी की छाती पर तुम चढ़े चलो तुम चढ़े चलो !
मजदूर किसानों बढ़े चलो ।[16]

तो 'काटो धान'[17] का कवि किसानों में जीवन में नवीन आशा और उत्साह भरता है :

आज किसान संगठन-शक्ति में विश्वास करता है । संगठित होकर ही वह अपनी सारी समस्याएँ हल कर सकता है । यथा :

ज़माने को बदलने के लिए
पीड़न और अत्याचार का साम्राज्य
धरती पर सुलाने के लिए
संगठित हैं हम,
संगठित हैं हम ![18]

'संगठन-शक्ति' का कारण किसानों में आयी जागृति है । आज वह अपने श्रम व मूल्य को पहचानने लगा है । यथा :

सारी खुशहाली का कारण,
दिन-दिन बढ़ती
वैभव-लाली का कारण
केवल श्रमिकों का बल है ।
जिनके हाथों में
मज़बूत हथौड़ा, हँसिया, हल है ।[19]

इस तरह महेन्द्र भटनागर ने किसानों की वेदना को वाणी प्रदान की है तो लहराती फसलों से भरे किसानों के खेतों में 'काटो धान' के गीत गाये हैं । एवं किसानों में आयी नयी चेतना का स्वागत किया है ।

6.2 *मज़दूर :*

दर्शन-कोश के अनुसार - "आधुनिक समाज के मुख्य वर्गों में से एक, पूँजीवाद से समाजवाद और कम्युनिज़्म में संक्रमण की क्रांतिकारी प्रमुख चालक शक्ति । पूँजीवाद के अन्तर्गत मजदूर वर्ग उजरती कामगारों पूँजीपतियों द्वारा दोहन के हेतु बचता है, समाजवाद के अन्तर्गत वह पूरी जनता के समाजवादी उद्‌यमों के मेहनतकशों का वर्ग, समाज की अग्रणी शक्ति होता है ।"[20]

"साम्राज्यवादियों के शोषण का लक्ष्य श्रमिक-वर्ग था । किसान जमींदारों और साहूकारों के शोषण का शिकार बना जबकि श्रमिक-वर्ग पूँजीपतियों के शोषण का विशेष शिकार हुआ । दोनों की स्थिति लगभग एक ही जैसी थी । किसानों के समान श्रमिक पूँजीपतियों से ऋण लेता और ऋण अदा न कर पाने के कारण धीरे-धीरे गुलाम बनता जाता ।..... मजदूर वर्ग की संख्या दिनों-दिन बढ़ती ही गयी और उनकी दशा भी पूर्ववत् ही बनी रही । आज़ादी के पश्चात् इस वर्ग की दशा सुधारने के लिए अनेक प्रयास किए गये जिससे उनकी स्थिति में कुछ सुधार भी हुआ । लेकिन किसानों की ही भाँति इनकी दशा में भी कोई क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं हुआ ।"[21] प्रगतिवादी कवियों की संवेदना किसानों के साथ-ही-साथ मजदूरों के प्रति भी रही । जिससे मज़दूर प्रगतिवादी कवियों का प्रमुख प्रतिपाद्‌य बना ।

निराला की 'तोड़ती पत्थर' मजदूर की मूक वेदना को अभिव्यक्त करता है । यथा :

"रूई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई
प्रायः हुई दुपहर ।
वह तोड़ती पत्थर ।"[22]

प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर ‘मज़दूर’ में जागृति की भावना पैदा करते हैं तो उसकी दयनीय स्थिति देखकर अपनी संवेदना भी जताते हैं । आज भी मज़दूर की हालत क्या है ? कवि की इस तस्वीर से स्पष्ट है :

“उस काले-काले
इंनन-सा ही
जिनका जीवन
धड़-धड़ करता
दौड रहा है,
किस्मत अपनी फोड़ रहा है ।”[23]

विश्वभर में जो विकास हुआ है वह सब मज़दूर की शक्ति के फलस्वरूप ही दिल्ली महानगर को सामंतवादी एश्वर्य के प्रतिक के रूप में दिनकर ने लिखा -

“आहे उठी दीन कृषकों की,
मज़दूरों की तड़प पुकारें
अरी ! गरीबों के लहू पर -
खडी हुई तेरी दीवारें ।”[24]

तो महेन्द्र भटनागर ‘श्रमिक’ में कहते हैं -

इन श्रमिकों के बल पर ही
टिकी हुई है धरती,
इन श्रमिकों के बल पर ही
दीखा करती है
सोने-चांदी की ‘भरती’ !
इनकी ताक़त को
दुनिया का इतिहास बताता है ।

इनकी हिम्मत को

दुनिया का विकसित रूप बताता है ![25]

पूरी दुनिया में यह वर्ग फैला हुआ है :

श्रमिकों की दुनिया बहुत बड़ी

सागर की लहरों से लेकर

अम्बर तक फैली

इनका कोई अपना देश नहीं ।[26]

दुनिया के किसी भी कोने में 'मज़दूर' आख़िर 'मज़दूर' ही रहता है । हर जगह उसे मज़दूरी ही नसीब होती है :

काला, गोरा, पीला भेष नहीं

सारी दुनिया के श्रमिकों का जीवन

सारी दुनिया के श्रमिकों की धड़कन

कोई अलग नहीं ।[27]

इस तरह प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर ने अपनी कविता में 'मज़दूर-वर्ग' का चित्रण करके समाज को उनकी वास्तविक दशा से परिचित कराने का और मजदूरों के प्रति संवेदना प्रकट करने का कार्य किया है ।

6.3 *हरिजन :*

भारतीय साहित्य में आधुनिक काल नयी चेतना का काल है । इस समय हर पहलू पर नयी दृष्टि से देखने का प्रयास हुआ है । साहित्य में जहाँ कल्पना के माध्यम से किसी दैवी या तिलस्मी-कथा द्वारा मनोरंजन व उपदेश दिया जाता था वहीं आधुनिक काल में इसका उद्देश्य व स्वरूप बदल गया । आधुनिक काल में व्यक्तिवादी अनुभूतियों को साहित्य में स्थान मिला; इसका एक कारण मनोविज्ञान का विकास भी है । प्रकृति-चित्रण की जगह आधुनिक काल में व्यक्ति के मन में बदलते विविध भावों का चित्रण हुआ । यहीं से साहित्य में एक ऐसे वर्ग का चित्रण भी हुआ जो समाज का ठुकराया हुआ वर्ग है ।

प्रगतिवादी कवि नव-युग का निर्माण करना चाहता है । यह वर्ग के भेदभाव तोड़े बिना दुष्कर है । 'युगवाणी' में पंत ने कल्याणकारी समाज-व्यवस्था की स्थापना हेतु अपनी वाणी मुखरित की -

क्यों न एक हो मानव-मानव सभी परस्पर

मानवता निर्माण करे जग में लोकोत्तर ?

जीवन का प्रासाद उठे भू पर गौरवमय,

मानव का साम्राज्य बने, मानव, हित निश्चय ।[28]

कवि महेन्द्र भटनागर ने इसी कल्याणकारी भावना से अपनी कविता में दलित-वर्ग (हरिजन) का चित्रण किया है । इसका एक कारण कवि का गांधीजी से प्रभावित होना भी है । 1920 के भारतीय समाज में गांधीजी ने नवजागृति लाने का कार्य किया । स्वाधीनता संग्राम के साथ-साथ उन्होंने जातिवादी व्यवस्था को भी चुनौती दी । जिस मनुवादी व्यवस्था में शूद्र को अछूत माना जाता था । गांधीजी ने उसके प्रति सहानुभूति से देखने की दृष्टि समाज को दी । महात्मा गांधी ने 'अछूत' को 'हरिजन' नाम देकर उसको सम्मान दिया ।

समाज के दलित-पीड़ित वर्ग के व्यक्ति का चित्रण करते हुए जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' 'अधोर' शीर्षक कविता में कहते हैं :

"हूँ दलित-पतित, पीड़ित जग का,

ठुकराया मैं नर तुच्छ एक,

जिसके दिक् जग देखता नहीं,

जिसने देखा ही नहीं स्नेह,

प्राणों ने पाई नहीं प्रीति,

जिसकी दुलार से रहित देह ।"[29]

कवि महेन्द्र भटनागर ने गांधी विचार से प्रभावित होकर दलित-पीड़ित जनता के प्रति अपनी संवेदना प्रकट की है । जो 'हरिजन' शीर्षक कविता में कुछ इस तरह प्रकट हुई है :

"नगर के एक सिरे पर हरिजन-बस्ती । सीकों की अनेक झाडू और टोकरियाँ दरवाजों के आसपास पड़ी हैं । गरमी में समस्त वायु मंडल तप रहा है । कुछ हरिजन अपनी कुटियों से बाहर निकलकर पेड़ के नीचे बैठे हैं, जिनमें औरतें, बुढ्ढे, बालक व जवान सभी है । शहर में आज इनकी हड़ताल है । आज कुचले हुए सिरों ने अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठायी है ।"[30] यह आवाज गांधी-विचार के कारण आयी चेतना से है । मगर इससे पहले दलितों की क्या स्थिति थी ? यथा :

'बीत चुके है चार दिवस ।'[31]

पर, ये दलित काम पर नहीं गये क्योंकि उन्हें विश्वास है :

"आज हमारे बिना हुआ

रहना सभ्य मनुजता का

कठिन

असम्भव ।"[32]

इस तरह अन्य प्रगतिवादी कवियों की तरह महेन्द्र भटनागर ने दलित-पीड़ित 'हरिजन' को अपनी कविता में स्थान देकर समाज को उनमें आयी जागृति से परिचित कराया है ।

6.4 *सर्वहारा :*

"सर्वहारा वर्ग में बँधुआ, मजदूर, भूमिहीन कृषक, बूट पोलिश वाला, रिक्शावाला, ताँगेवाला, मोची, घरेलू नौकर, टीन-टप्पर तथा कूड़ा-कबाड़ा बेचकर जीवन यापन करने वाला मकान बनाने वाला मज़दूर, बोझा ढोनेवाला, वृक्ष लगाने वाला मज़दूर, विस्थापित व्यक्ति (कश्मीर से भागे हुए, बाँग्लादेशी व तमिल शरणार्थी आ जाते हैं ।

झोपड़ पट्टी में रहनेवाला वर्ग, जिसे कोई सुविधा प्राप्त नहीं है, इसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । (इस वर्ग के अन्तर्गत हमें महानगरीय स्लम्स में रहनेवालों को नज़र-अन्दाज करना पड़ सकता है, क्योंकि ऐसी झोंपडियों का स्तर सर्वहारा वर्ग को नहीं छूता ।) ग्रामीण क्षेत्र के घुमन्तु खानाबदोश जो एक स्थान से दूसरे स्थान भ्रमण करते रहते हैं - सर्वहारा वर्ग का ही एक अंग हैं ।"[33]

प्रगतिवादी "कवियों ने अपने काव्य के कथावस्तु, नायक एवं नायिका आदि के चयन में परिवर्तन कर जाति एवं वर्गगत संकीर्णता को समाप्त करने का प्रयास किया । वस्तुतः इन कवियों ने निम्न से निम्न वर्गों एवं जातियों से पात्रों एवं कथावस्तु का चयन किया ।"[34]

'सर्वहारा' एक ऐसा वर्ग है जो समाज की तमाम सुख-सुविधाओं से वंचित है । कवि निराला ने भी अपनी कविताओं में सर्वहारा के प्रति अपना झुकाव दिखलाया है । इन्होंने इस वर्ग से संबंधित कई रचनाएँ कीं । 'भिक्षुक' शीर्षक कविता, 17 नवम्बर 23 के मतवाला में प्रकाशित ।

"चाट रहे जूठी पताल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए ।"[35]

प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर ने भी 'भिखारिन'[36] कविता में सर्वहारा वर्ग की वेदना को उजागर किया है । 1943 का बंगाल का अकाल एक हृदय-विदारक घटना थी, जिसने "40 लाख प्राणियों की बलि ली । ऐसा न था कि बंगाल में चावल की कमी हो, चावल भरपूर था, उसका भाव अवश्य 100/- प्रति मन तक पहुँच गया था, जो सामान्य जनता की पहुँच के बाहर था ।"[37]

'भिखारिन' में बंगाल के अकाल की स्थिति का वर्णन है :

'भिखारिन' अपनी परिस्थिति से इतनी टूट चुकी है कि उसे अब जीना दूभर लगता है :

"घर का धन क्या, शिशुओं तक को बेचा
उर ममताहीन हुआ !"

"ऊब चुकी हूँ इस जीवन से सचमुच,
जग में रहना दूभर ।"[38]

तो कभी वेदनामय जीवन का अनुभव करती ज़िन्दगी :

"पर, टपकती छत तले
सद्यः प्रसव से एक माता आह भरती है

मगर यह ज़िन्दगी इन्सान की

मरती नहीं

रह-रह उभरती है ।"[39]

'टपकती' छत के नीचे रहते निम्न मध्यवर्ग के परिवार का मुखिया जो अपनी पुत्री के विवाह की चिन्ता के साथ अभावों का जीवन जीता है । यथा :

पास के घर में

थकी-सी अर्द्ध-निद्रित

तीस-वर्षीया कुमारी

करवटें लेती किसी की याद में ।

क्लर्क है उसका पिता

और वह उलझा हुआ है

फाइलों के ढेर में ।

(ज़िन्दगी के फेर में !)[40]

कवि महेन्द्र भटनागर के हृदय में 'सर्वहारा' की यह दुनिया बदलने की रंगीन तस्वीर है । कवि निम्न-मध्यवर्ग और निम्नवर्ग को ऊपर उठाना चाहता है । दोनों साथ मिलकर कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलेंगे तो इस दुनिया में हमसफ़र बन पाएंगे :

"हृदय में आज मेरे भी

नई रंगीन दुनिया की नई तस्वीर है

दुनिया को बदलने की प्रसवनी पीर है ![41]

इस तरह सर्वहारा-वर्ग के प्रतिनिधि कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में सर्वहारा दर्द का यथार्थ चित्रण शब्दचित्रात्मक शैली में हुआ है ।

6.5 *नारी :*

नारी का सम्मान समाज की प्रगति के मूल्यांकन की एक विश्वसनीय-

कसौटी है । कार्ल मार्क्स ने कहा था कि "समाज की प्रगति स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के द्वारा ठीक-ठीक मापी जा सकती है ।"[42] भारत में अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के पश्चात् नारी उत्थान का कार्य राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, सरोजिनी नायडु, महात्मा गांधी के द्वारा हुआ । नारी के संबंध में पन्त कहते हैं कि - "मार्क्सवादियों के अनुसार नारी का भी शोषण हुआ है । वह अभी तक पुरुष के विलास का साधन मात्र रही है ।..... सामन्त युग के स्त्री-पुरुष सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यंत संकुचित लगता है । उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री की शरीर-यष्टि से निर्धारित होता है । सामन्तयुगीन इस मनोवृत्ति ने हमारी बाल-विधवा, सती और वेश्या का शोषण किया है । सामन्त युग की नारी नर की छाया मात्र रही है ।"[43] वस्तुतः नारी चौके की व्यवस्थापिका और घर की बन्दिनी समझी जाती रही है । "उसको प्रायः दो रूपों में ही देखा जाता रहा है - पहला भोग्या के रूप में, दूसरा, गृह-सेविका के रूप में ।" वैज्ञानिक चेतना के प्रस्फुटन के पहले तक नारी को मात्र काम-लिप्सा या वासना की पूर्ति के साधन के रूप में ही चित्रित किया जाता था ।"[44]

प्रगतिशील कवियों की संवेदना नारी की ओर गई । उन्होंने युग-युग से शोषित और दमित नारी को उत्थान का संदेश दिया । नारी को नरक का द्वार न मानकर उसे प्रतिष्ठा प्रदान की । पंतजी ने 'पल्लव' में नारी को 'देवी', 'माँ', 'सहचरी', 'प्राण' आदि से संबोधित किया । नारी की पवित्रता का सबसे बड़ा मानदण्ड गंगा है । यथा :

"तुम्हारे छूने में था प्राण !
संग में पावन गंगा-स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याण ।
त्रिवेणी की लहरों का मान ।"

उन्होंने 'चिर बन्दिनि नारी' को मुक्त करना चाहा है :

"मुक्त करो नारी को मानव !
चिर बन्दिनि नारी को
युग-युग की बर्बरा कारा से

जननि, सखी, प्यारी को ।"[45]

क्योंकि उनकी मान्यता रही है कि "योनि नहीं है रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठित ।" डॉ. नामवर सिंह का विचार है कि प्रयोगशील कवियों की अपेक्षा प्रगतिशील कवियों का प्रेम इसलिए सफल, स्वस्थ है क्योंकि "प्रगतिशील कविता में जो स्वस्थ सामाजिक पारिवारिक प्रेम व्यक्त हुआ है, वह प्रयोगवाद के स्वेच्छा और कुण्ठाभरे काव्य में नहीं मिल सकता । प्रगतिशील कवि जहाँ स्वच्छ प्रेम का चित्रण करता है, वहाँ भी संयम और स्वस्थ मनोवृति का परिचय देता है ।"[46]

प्रगतिशील कवि नारी का पक्षधर रहा है । नारी का एक चित्र निराला ने प्रस्तुत किया है उसमें कवि भारत की विधवा नारी का चित्रण करते हुए उसके प्रति सहानुभूति एवं सम्मान की भावना प्रकट करता है -

"वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी
वह दीपशिखा-सी शांत, भाव में लीन
वह क्रूरकाल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी
वह तरु की टूटी लता-सी दीन -
दलित भारत की ही विधवा है ।"[47]

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने नारी की महत्ता बतलाते हुए कहा है - 'ओ जगत की स्वामिनी, मायाविनी तुम धन्य ।'

जहाँ तक समाज में नारी की स्थिति का प्रश्न है, वह सदियों से न्यायिक एवं लैंगिक शोषण की शिकार होती आयी है । उसके अधिकारों एवं व्यक्तित्व को हमेशा उपेक्षित किया गया है । "संविधान और कानून का सम्बल नाकाफ़ी हो गया है, क्योंकि जिस तरह की सम्पूर्ण समाज व्यापी क्रांति की आवश्यकता है उसका आज भी कहीं दूर-दूर तक पता नहीं है । यद्यपि उसे पास लाने का प्रयत्न जारी है ।"[48]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता का ध्येय शोषित नारी को युगचेतना के प्रति जागृत करना है । कवि नारी को अपनी गरिमा की याद दिलाते हुए कहता है 'तुम कोई वस्तु नहीं हो जो पुरुष ने खरीद ली है, या न तुम कोई गुड़िया हो, न तुम सेविका हो, न तो पैर की जूती और न ही

आदमी के मात्र मनोरंजन की वस्तु ।

"कर रहा हूँ मैं -

तुम्हारा प्रभु नहीं हूँ,

हाँ, सखा हूँ ।"[49]

कवि नारी को उसकी शक्ति की याद दिलाते हुए कहते हैं कि तुम कमज़ोर नहीं हो, अन्याय का विरोध करो ज़माना तुम्हारे साथ है । यथा :

"तुम नहीं कमज़ोर

तुमको चाहिए ना सेज फूलों की ।

नहीं मझधार में तुम

अब खड़ी शोभा बढ़ाती दूर कूलों की !

अब दबोगी तुम नहीं

अन्याय के सम्मुख

नई ताक़त, बड़ा साहस

ज़माने का तुम्हारे साथ है ।"[50]

नारी का शोषण करनेवाले इन्सान पर कवि महेन्द्र धिक्कार और लानत भेजते है ।

"लानत है इन्सान !

किया तुम्हीं ने नारी पर अत्याचार प्रहार ।"[51]

'नारी' शीर्षक कविता में आधुनिक भारतीय नारी-जागरण की सबल प्रतिध्वनि है । कवि की 'नारी' को नयी समाज व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है :

समता का आज़ादी का नव इतिहास बनाने को आयीं,

शोषण की रखी चिता पर तुम तो आग लगाने को आयीं,

है साथी जग का नव-यौवन, बदलो प्राचीन व्यवस्था,

वर्ण-भेद के बंधन सारे तुम आज मिटाने को आयीं ।[52]

'भिखारिन' कविता में नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण हुआ है । आधुनिक समाज व्यवस्था की सड़न ने नारी की हालत क्या बनादी है कवि ने बख़ूबी प्रस्तुत किया है । यथा :

"करुणा की प्रतिमा-सी युवती चुपचाप खड़ी थी मुख खोले,

जिस पर थी भय की रेखाएँ, सोच रही थी, क्या वह बोले !

फटी-पुरानी साड़ी उलटे पल्ले की पहने थी नारी ।"[53]

'तुम्हारी माँग का कुकुम ।'[54] में भविष्य की चिंता में डूबी नारी की व्यथा का चित्र प्रस्तुत हुआ है । नारी के तप और बलिदान का बदला कैसे दिया जाए; यह एक उलझन भरा प्रश्न है । 'माँ' के दूध का कर्ज़ नहीं उतरता, चाहे बेटा उसके क़दमों में सारी दुनिया लाकर रख दे । 'प्रतिदान' का कवि ऐसी ही स्थिति में दीखता है । वह नारी से प्रश्न करता है कि

"तुम्हारे मूक निश्चल प्यार का

प्रतिदान कैसे दूँ !"

"वह अंश जीवन का मिला है तुम्हें

सच्चे हृदय के स्नेह के अधिकार का !

प्रतिदान कैसे दूँ ।"[55]

इसके अलावा 'कौन तुम', 'गीत में तुमने सजाया', 'हे विधना', 'रूपासक्ति', 'मोहमाया', 'अगहन की रात', 'दूर तुम', 'प्रिया से', 'विरहिन' आदि रचनाओं में कवि ने नारी के संयोग और वियोग रस से परिपूर्ण प्रेम की माँसल-भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है । वहाँ भी नारी-उत्थान व गरिमा की भावना है ।

इस तरह, महेन्द्र भटनागर की कविता में समाज के उपेक्षित पात्रों की संवेदना के तार झंकृत हुए हैं जो अन्य प्रगतिवादी कवियों की रचनाओं में भी मिलते हैं । वस्तुतः कवि की भावना जनवादी है ।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि डॉ. महेन्द्र भटनागर

प्रारंभिक रचनाओं में जिस वैयक्तिक पीड़ा से व्यस्त-त्रस्त और अस्त-व्यस्त हैं; वहीं स्वातंत्र्य युग में अपने स्वर में युग की पीड़ा को भर लिया है । यह युग भयावहता से आक्रांत है, युद्ध की आशंका से पीड़ित है, सर्वहारा वर्ग के शोषण से व्यथित है । अन्याय और शोषण के व्यूह वे ध्वस्त करना चाहते हैं, जनता के आत्मबल को जगाना चाहते हैं । शोषण के विरुद्ध युद्ध के लिए शंखनाद करते हैं ।

संदर्भ ग्रंथ

1. दलित साहित्य की भूमिका, हरपाल सिंह 'अरुष', पृ.1
2. सिलेक्सन फ्रोम गांधी - निर्मल कुमार बोस पृ.269 हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता - डॉ. कालीचरण 'स्नेही' पृ. 121 से उद्धृत
3. दलित हस्तक्षेप - रमणिका गुप्ता, पृ.15
4. वही, पृ.23
5. छायोवादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड और स्वरूप, डॉ. कैलाशनाथ उपाध्याय, पृ.77
6. वही, पृ.137
7. वही, पृ.137
8. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर : अनुभूति और अभिव्यक्ति, पृ.112
9. छायोवादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड और स्वरूप, डॉ. कैलाशनाथ उपाध्याय, पृ.77
10. नया हिन्दी काव्य : शिवकुमार मिश्र, पृ.28
11. हुंकार 'हाहाकार', रामधारी सिंह दिनकर, पृ.20
12. हुंकार 'विपथगा', रामधारी सिंह दिनकर, पृ.45-46
13. अभियान 'खेतिहर', पृ.162
14. छायोवादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड और स्वरूप, डॉ. कैलाशनाथ उपाध्याय, पृ.78
15. जिजीविषा 'ओ मजदूर किसानो', पृ.74
16. जीवन के गान 'मजदूर किसानों बढ़े चलो', पृ.10
17. नई चेतना 'काटोधान', महेन्द्र भटनागर, पृ.10
18. अभियान 'खेतो में', महेन्द्र भटनागर, पृ.167
19. जिजीविषा 'श्रमिक', पृ.68
20. दर्शनकोश, पृ.466
21. छायोवादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड और स्वरूप, डॉ. कैलाशनाथ उपाध्याय, पृ.78
22. अनामिका, 'तोड़ती पथ्थर', निराला, पृ.82

23. बदलता युग 'मिल मजदूर', महेन्द्र भटनागर, पृ.209-10
24. हुंकार 'नयी दिल्ली के प्रति', रामधारी सिंह दिनकर, पृ.37
25. 'श्रमिक', महेन्द्र भटनागर समग्र-2 पृ.321-22
26. वही, पृ.22-23
27. वही, पृ.24
28. युगवाणी 'दो लड़के', सुमित्रानंदन पंत, पृ.16
29. वैकाली, हितैषी, पृ.17
30. महेन्द्र भटनागर समग्र-2 पृ.104
31. वही, 'प्रतिकूलता', पृ.96
32. 'सुकर : दुष्कर', महेन्द्र भटनागर समग्र-1, पृ.47
33. 'हरिजन', महेन्द्र भटनागर समग्र-1, पृ.104
34. वही, पृ.105
35. समकालीन हिन्दी कविता में आम आदमी, मृदुल जोशी, पृ.20-21
36. छायोवादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप, पृ.82
37. भिक्षुक 'मतवाला', 'अपरा' - निराला, पृ.67
38. 'परिमल' (स्वप्न स्मृति), निराला, पृ.144
39. महेन्द्र भटनागर समग्र-1 पृ.108
40. नया हिन्दी काव्य शिवकुमार मिश्र, पृ.21
41. विहान 'भिखारिन' - महेन्द्र भटनागर, पृ.43
42. जिजीविषा 'मध्य-वर्ग' (चित्र एक), पृ.31
43. वही (चित्र दो), पृ.31
44. नई चेतना 'नये इन्सान से तटस्थ वर्ग', पृ.30
45. आधुनिक हिन्दी कवियों का सामाजिक दर्शन, डॉ. प्रेमचंद विजयवर्गीय, पृ.90
46. आधुनिक कवि - पंत, पृ.23
47. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड - डॉ. कैलाशनाथ उपाध्याय, पृ.101
48. युगवाणी 'नारी', सुमित्रानंदन पंत, पृ.46
49. आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ - डॉ. नामवर सिंह, पृ.106
50. परिमल 'विधवा' सूर्यकान्त त्रिपाठी, 'निराला', पृ.98
51. प्रततिवादी कवि महेन्द्र भटनागर : अनुभूति और अभिव्यक्ति, पृ.119
52. चयनिका 'नई नारी' महेन्द्र भटनागर, पृ.147-48
53. विहान, 'भिखारिन' पृ.108
54. अंतराल, 'तुम्हारी माँग का कुंकुम' पृ.145
55. अंतराल, 'प्रतिदान', पृ.147

सप्तम अध्याय

शोषण-मुक्ति का आह्वान

7.1 पूँजीवाद और शोषण का विरोध

7.1.1 पूँजीवाद का अर्थ

7.1.2 पूँजीवाद का आम संकट

7.1.3 शोषण-मुक्ति का आह्वान

7.1.4 शोषण का विरोध

7.2 शोषित की पीड़ा का चित्रण

7.3 राजनीतिक प्रदूषण-भ्रष्टाचरण

निष्कर्ष

सप्तम अध्याय

शोषण-मुक्ति का आह्वान

7.1 *पूँजीवाद और शोषण का विरोध*

7.1.1 *पूँजीवाद का अर्थ :*

समाजविज्ञान कोश के अनुसार पूँजीवाद यानी “ऐसी आर्थिक व्यवस्था जिसमें आर्थिक पूँजी और उत्पादन के साधनों पर ग़ैर सरकारी स्वामित्व और नियंत्रण रहता है । इसका मुख्य ध्येय और मार्गदर्शक सिद्धांत यह है कि विनिमय के माध्यम से अधिकतम लाभ कैसे पाया जाए ।”[1] दर्शनकोश के अनुसार पूँजीवाद (Capitalism) - “समाजवाद तथा कम्युनिज़्म से पहले की सामाजिक आर्थिक विरचना ।”[2] यानि ऐसी आर्थिकनीति या अर्थव्यवस्था जो जिसका पूँजीपति संचलन करता था । इस व्यवस्था से समाज में यह संकट पैदा हुआ कि जो अमीर हैं वे अधिक अमीर होते गए और गरीब अधिक गरीब । इसमें राष्ट्र और देश भी शामिल है । पूँजीवाद का आम संकट विश्व पूँजीवादी प्रणाली के विघटन की प्रक्रिया । इसकी परिधि में बुर्जुआ समाज के सारे क्षेत्र आ जाते हैं : “अर्थ व्यवस्था, राजनीति तथा विचारधारा ।”[3]

7.1.2 *पूँजीवाद का आम संकट :*

पूँजीवाद का आम संकट तीन मुख्य अवस्थाओं से गुज़रा है, जिनमें से प्रत्येक में पूँजीवाद के आम संकट के अपने अभिलाक्षणिक गुण हैं । “पहली अवस्था की जो प्रथम विश्वयुद्ध तथा रूस में अक्तूबर, 1917 की क्रांति की अवधि में शुरू हुई अभिलाक्षणिकता थी । विश्व के पहले समाजवादी राज्य का गठन और उपनिवेशवाद के संकट का समारम्भ । पूँजीवाद का आम संकट की दूसरी अवस्था की, जो द्वितिय विश्वयुद्ध की अवधि में शुरू हुई, अभिलाक्षणिकता थी अधिकाधिक देशों का पूँजीवाद से नाता तोड़ना (लोक जनवाद और विश्व समाजवादी प्रणाली का गठन तथा उपनिवेशवादी प्रणाली का विघटन । पूँजीवादी का आम संकट की तीसरी मंजिल की अभिलाक्षणिकता है समस्त पूँजीवादी अंतर्विरोधों का और ज्यादा गहन होते जाना तथा उसके प्रभाव के क्षेत्र का संकुचित होना ।”[4]

संक्षेप में, पूँजीवाद अर्थव्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था तथा समाजव्यवस्था में बाधक है । इससे सामाजिक विचारधारा को नष्ट करने का संकट रहता है ।

कार्ल मार्क्स का पूँजीवादी शोषण सिद्धांत

पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन के सभी साधनों पर पूँजीपति का ही आधिपत्य होता है । श्रमिकों को इस अधिकार से वंचित कर दिया जाता है । जबकि वस्तु के उत्पादन का श्रेय केवल श्रमिकों को ही जाता है । श्रमिक अपना श्रम काम करने के घंटों में बेच देते हैं । इसको स्पष्ट करने के लिए मार्क्स लिखता है कि - "पूँजीवादी युग की प्रमुख विशेषता यह है कि श्रमिक स्वयं की दृष्टि में श्रमशक्ति एक वस्तु बन जाती है । यह श्रम शक्ति ही उसकी संपत्ति है । इसी कारण उसका श्रम मज़दूरी बन जाता है ।"[5]

"सन् 1936 से 1960 तक का युग आर्थिक दृष्टि से विपन्नता, विषमता और उससे उत्पन्न संघर्ष का काल रहा है । ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपनी व्यापारिक नीति के तहत स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक भारत के अपार प्राकृतिक संसाधनों तथा अन्य आर्थिक स्रोतों का खुलकर उपयोग किया । हमारी पूँजी धीरे धीरे विदेशी खज़ानों में भरती गयी और परिणाम यह हुआ कि हमारा देश आर्थिक रूप से बेहद विपन्न होता चला गया और ब्रिटिश देश सम्पन्नता के शिखर पर पहुँचता गया ।"[6]

अंग्रेज़ों के आगमन से पूर्व भारतीय उद्योग-धंधों की स्थिति काफ़ी बेहतर थी । लेकिन अंग्रेज़ों ने भारत में आने के साथ ही यहाँ के उद्योग धंधों पर कब्ज़ा जमाया तथा अपने यहाँ के तैयार माल की खपत हेतु यहाँ के उद्योग धंधों को नष्ट कर दिया । इस प्रकार पहले तो ब्रिटिश शासन ने भारत के औद्योगिक विकास का विरोध किया । लेकिन बाद में चलकर फ्रांस के पतन, ब्रिटिश कल-कारखानों के विध्वंस आदि के चलते उन्हें अपनी नीति बदलनी पड़ी । उन्हें इसका भी भान हुआ कि उपनिवेशवाद को सफल बनाने हेतु औद्योगिक विकास का होना आवश्यक है । फलत: औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिला । प्रथम विश्वयुद्ध ने पूँजीपतियों तथा उद्योगपतियों को लाभ कमाने का अच्छा अवसर दिया । जिसके चलते उद्योगपतियों तथा पूँजीपतियों

ने उद्योगों में पूँजी लगाकर उन पर अपना अधिकार जमा लिया । इस प्रकार बड़े-बड़े उद्योगों और मिलों पर भारतीय पूँजीपतियों का सिक्का जमता गया । पहले यह उद्योग-धंधे विदेशी पूँजीपतियों के हाथ में थे । लेकिन उद्योगों पर भारतीय उद्योगपतियों एवं पूँजीपतियों के अधिकार के साथ ही गाँवों में साहूकार एवं महाजन वर्ग का उदय हुआ । जिन्होंने सामान्य जनता को विपन्न से विपन्नतर बनाने में अहम भूमिका निभायी । भारतीय पूँजीपतियों के एकाधिपत्य के साथ दैनिक वस्तुओं के मूल्य इतने बढ़ गये कि जनता को अपना जीवन-निर्वाह करना मुश्किल हो गया । फलतः उन्हें बाध्य होकर कर्ज़ का सहारा लेना पड़ा । महाजन वर्ग सरकारी शोषण से मुक्त था, अतः वह धीरे-धीरे भूमि का स्वामी बनता गया । साथ ही जमींदारों से अधिक सम्पन्न और शक्तिशाली भी । यह नया शोषक-वर्ग गाँवों से दूर नगरों में रहकर कारिंदों के माध्यम से काम करता था । वह खेती को महज़ एक व्यापार मात्र समझता था । खेती के होने या न होने का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था । इस व्यापारिक नीति तथा किसानों के शोषण के फलस्वरुप फसलों का उत्पादन काफ़ी प्रभावित हुआ । इन प्रकार धीरे-धीरे उत्पादन की क्षमता घटने लगी और अकाल की परिस्थितियाँ निर्मित होने लगी ।

"पूँजीवादी व्यापारिक नीति ने ही अकाल की परिस्थितियों को जन्म दिया था ।"[7] इस स्थिति का जन्मदाता कोई दूसरा नहीं अपितु ब्रिटिश साम्राज्यवादी शोषण ही था, जिसने "40 लाख प्राणियों की बलि ली । ऐसा न था कि 1943 के बंगाल के अकाल में चावल की कमी हो, चावल भरपूर था, उसका भाव अवश्य 100/- प्रति मन तक पहुँच गया था, जो सामान्य जनता की पहुँच के बाहर था ।"[8] समाज में व्याप्त अराजक मानसिकता का असर आम जनता के मानस के साथ-साथ कलाकारों एवं रचनाकारों की सोच पर भी गहरा असर पड़ा ।

7.1.3 *शोषण-मुक्ति का आह्वान :*

भारतेन्दु युगीन कविता से आधुनिक हिन्दी कविता का प्रारंभ होता है इस काल से ही शोषण-मुक्ति का आह्वान हुआ । हिन्दी काव्य के अन्तर्गत भारतेन्दु ने पहली बार समसामयिक जीवन और समस्याओं पर प्रकाश डाला ।

आधुनिक समाज पर व्यंग्य करते हुए कवि ने अपने युग की चेतना को झकझोरते हुए निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखीं :

"सीखन नहिं कोऊ कला, उदर भरी जीवत केवल ।
पसु समान सब अन्न खात पीवत गंगा जल ।
धन विदेस चलि जात तऊ जिय होत न चंचल ।
जड़ समान है रहत अकल हत रचि न सकत कल ।
जीवत विदेस की वस्तु लै ता बिनु कछु नहिं करि सकत ।
जागो जागो अब साँवरे सब कोऊ रुख तुमरो तकत ।।"[9]

इसी युग के कवि प्रेमघन कहते हैं :

"उठो आर्य संतान सकल मिलि बस न विलंब लगावो ।
ब्रिटिश राज स्वातंत्र्य मय समय व्यर्थ न बैठो गँवाओ ।।"[10]

"भारतेन्दु-युग नवजागरण का काल था । उसमें भारत की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक स्थिति का पुनर्मूल्यांकन प्रारंभ हुआ । आर्यसमाज, ब्राह्म-समाज, धर्म-समाज तथा धर्म संबंधी सुधार के अन्य आन्दोलन इस युग में सामने आये । लोग शिक्षा और सरकारी नौकरियों की ओर अग्रसर हुए । कृषि से हटकर व्यवसायों की ओर मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग का ध्यान गया । अंग्रेज़ी आतंक ने जीवन को यथार्थ रूप में देखने को बाध्य किया । आदर्श और यथार्थ प्राचीन और नवीन की तुलना आरंभ हुई । लोकजीवन को काव्य में चित्रित किया जाने लगा । इसी समय राष्ट्रीयता की लहर आई । इस काल में अन्तर्राष्ट्रीय, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक स्तर पर आंतरिक एवं वैचारिक क्रांति के दर्शन होते है । पर इन सब-का सूत्रपात ही हो पाता है । कवियों ने अपने कर्तृत्व में एक सीमा तक ही देश, समाज और व्यक्ति की समस्याओं को चित्रित किया है । व्यापक रूप में देश समाज और व्यक्ति संबंधी जीवन मूल्यों की स्थापना द्विवेदी युग में ही संभव हुई । जिस प्रकार 1857 ई. के विद्रोह के कठोर धक्के ने भारतेन्दु युगीन चेतना को जन्म दिया था, उसी प्रकार प्रथम विश्वयुद्ध और सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन में इसे व्यापक अभिव्यक्ति मिली ।"[11]

द्विवेदी युग के कवि श्रीधर पाठक देश की भाषा, रहन-सहन, भाषा और संस्कृति के संबंध में कहते हैं :

"जिनको अपने देश, भेस, भाषा से प्रेम नहीं ।

जिनके जीवन की कोई निर्दिष्ट नीति नहीं ।।"[12]

तो मैथिलीशरण गुप्त 'उद्‌बोधन' में कहते हैं -

हत भाग्य हिन्दू जाति ! तेरा पूर्व दर्शन है कहाँ ?

वह शील, शुद्धाचार, वैभव देख, अब क्या है यहाँ ।

क्या जान पड़ती वह कथा अब स्वप्न की सी नहीं ।

हम हो वहीं, पर पूर्वदर्शन दृष्टि आते हैं कहीं ।।"[13]

छायावादी कवि चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमईकाका' अंग्रेज़ों और पूँजीवादी शोषणखोरों को निशाना बनाते हुए उन्हें 'खटमल' के नाम से संबोधित करते हैं :

'खटमल छाड़ौ मोरी खटिया ।

ना जानै कइसे तुम आयो आपन जाति बढ़ायो ।'[14]

शोषणमुक्ति के आह्वान की यह प्रवृत्ति 1940 छायावादोत्तर युग में अधिक तीव्र हो गई । इस युग के कवियों ने समाज में व्याप्त बुराइयों को जनता के सामने लाकर रख दिया । शोषणमुक्ति हेतु उस युग में हुए आन्दोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही ।

शोषणमुक्ति में राजनीति और आर्थिक मसलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। शोषणमुक्ति आन्दोलन में "जनता के समक्ष रूस की क्रांति का आदर्श था । इसीके प्रभाव में काँग्रेस में समाजवादी दृष्टिकोण अपनाया गया । अब तक किसानों और श्रमिकों की स्थिति दयनीय हो गई थी, पर कांग्रेस की अपने संकल्प के प्रतिकूल भूमिका देखकर किसानों ने अपने संगठन मजबूत किया, अनेक प्रकार से आन्दोलन किये और साम्राज्यवादी शक्ति को झकझोर देनेवाली संस्थाओं के रूप में श्रमिकों और किसानों के संगठन सामने आये । शोषण-मुक्ति में कई राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक नेताओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है । राजनैतिक नेताओं में जवाहरलाल नेहरू, लोकमान्य तिलक,

महात्मा गांधी, सुभाषचंद्र बोस आदि महत्वपूर्ण हैं । जिनके आह्वान से भारतीय जनता ने परतंत्रता को तोड़कर स्वतंत्रता हासिल की और स्वराज्य का सुखद स्वप्न पूर्ण किया ।"

प्रगतिशील विचारों के कवियों पर इन आन्दोलनों का और उससे उत्पन्न स्थिति का गहरा असर पड़ा । जो तत्कालिन साहित्य में स्पष्टतः दिखाई पड़ता है ।

शोषण का अधिक शिकार 'आम आदमी' हुआ है । आम आदमी ने हर कदम पीड़ा, अवहेलना और अवमानवता को झेला है । असमानता को प्रोत्साहित करती भ्रष्ट व्यवस्था दीवार की तरह उसके सुखमय जीवन के सम्मुख बाधा बनकर खड़ी है । वह खास वर्ग को अपने शत्रु के रूप में पहचान चुका है । वह इस व्यवस्था, इस वर्ग के चंगुल से निकल भागने को छटपटा रहा है । उसकी यह तड़प उसको आक्रोश से भर देती है । उसकी संघर्ष की दुर्धर्ष इच्छाशक्ति विरोध का उद्घोष करना चाहती है और अपने वर्ग को उद्बोधित भी । उसकी यह ललकार, यह चेतावनी और विरोध के उसके ये स्वर शोषणमुक्ति के लिए हैं ।

'इत्यलम्' कविता में कवि 'अज्ञेय' शोषण का विरोध करते हुए क्रांति का आह्वान करते हैं :

"तुम सत्ताधारी, मानवता के शव पर आसीन
जीवन के चिर-रिपु, विकास के प्रतिद्वन्द्वी प्राचीन,
तुम श्मशान के देव ! सुनो यह रणभेर की तान -
आज तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान ।"[15]

प्रगतिवादी कवियों में शोषिक-पक्षधरता दो रूपों में उभरकर सामने आती है, एक समाज के यथार्थवादी चित्रण के रूप में तो दूसरा, शोषितों के प्रति सहानुभूति एवं उनको जागृति का संदेश देने के रूप में । प्रगतिवादी कवि 'दिनकर' अपने देश के कृषकों की दयनीय स्थिति को देखकर कहते हैं -

"श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं ।

युवती के लज्जा-वसन बेच, जब ब्याज चुकाए जाते हैं ।

मालिक जब तेल फूलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहाते हैं

पापी महलों का अहंकार, देता मुझको तब आमंत्रण ।"[16]

राष्ट्रीय कवियों ने शोषित मानव-समाज के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है । 'दग्ध हो रहे हैं मेरे जन' कविता में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने भी शोषित मानव समाज के जीवन का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उससे एक ओर तो शोषित समाज का कटु सत्य उजागर होता है तो दूसरी तरफ कवि की शोषितों के प्रति सहानुभूति एवं लगाव की भावना भी प्रकट होती है -

"आज सुन रहा हूँ मैं भीषण

प्राण-हरण का घंटा घन-घन !

देख रहा हूँ विकट भूख की ।

ज्वाला में लिपटे मानव तन ।"[17]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने 'यह किसका कंकाल पड़ा है' में जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह मानव समाज की अत्यंत गिरी हालत को कटु सत्य के रूप में उद्‌घाटित करता है -

"भरी जवानी में ही इसके चेहरे पर पड़ गई झुर्रियाँ

पीब पिचपिचाती शरीर में भनन-भनन कर रही मक्खियाँ

क्या मानव, इस तरह निराश्रित

धरती पर बेहाल पड़ा है, यह किसका कंकाल पड़ा है ।"[18]

इस प्रकार हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों ने शोषित-पीड़ित मानव समाज-जीवन के यथार्थ का चित्रण कर अपनी सहानुभूति प्रकट की है, वहीं प्रगतिवादी कवियों ने एक क़दम आगे बढ़ने का प्रयास किया है । प्रगतिवादी कवियों ने शोषकों के खिलाफ़ खड़े रहकर संघर्ष की प्रेरणा दी है । वस्तुतः शोषित पक्षधरता प्रगतिवादी कवियों का मूल उद्देश्य रहा है तथा उनके प्रति सहानुभूति की भावना युगीन कवियों की कविताओं का प्रधान स्वर रहा है । इस युग का कवि केवल कृषक या श्रमिक वर्ग को ही शोषित नहीं मानता

अपितु क्लर्क, शिक्षक, कर्मचारी आदि मध्यम-वर्ग के लोगों को भी वह शोषितों की श्रेणी में गिनता है । वह उस समूचे जन-समूह को जो कि शोषित है, चाहे वह निम्न-वर्ग का हो अथवा मध्य वर्ग का उसे 'सर्वहारा' की श्रेणी में रखता है तथा उसकी यथार्थ, दयनीय एवं मर्मस्पर्शी स्थिति को उद्घाटित करता है । महेन्द्र भटनागर भी जिनमें एक हैं । जिन्होंने शोषित की मूकवेदना को अपनी कलम से रेखांकित करने का मर्मस्पर्शी कार्य किया है । सारी समस्याओं की एक ही जड़ है और वह है पूँजीवाद ।

7.1.4 *शोषण का विरोध :*

शिवमंगल सिंह 'सुमन' पूँजीवाद को सारी समस्याओं की जड़ बताते हुए कहते हैं :

"यह पूँजीवादी समाज के
ज़ुल्मों का जंजाल पड़ा है ।'[19]

प्रगतिवादी कवि जानता है कि समाज को शोषित करनेवाला साम्राज्यवादी-पूँजीवादी कर्ण एवं उच्चवर्गीय व्यक्ति हैं । अतः वह उनके विरुद्ध क्रांति की आवाज़ उठाता है। कवि त्रिलोचन शोषित वर्ग से क्रांति का आह्वान करते हैं -

"साम्राज्य औ' पूँजीवादी लिये हुए अपनी बरबादी
ज़ोर-आज़माई करते हैं, आज तोड़ने को उनका मन
उठकर दलित समाज चला है ।"[20]

कवि महेन्द्र भटनागर भी शोषण-मुक्ति-आह्वान में पीछे नहीं हैं । 'जिजीविषा' में कवि महेन्द्र मानों शोषित, पीड़ित, पददलित एवं पराजित मानव को आशा का संदेश देते हुए कहते हैं -

"यदि आँधियाँ आएँ तुम्हारे पास,
उनसे खेल लो,
जितनी बड़ी चट्टान वे फेंके तुम्हारी ओर
उनको झेल लो ।
हिम्मत न हारो ।"[21]

साम्राज्यवादी शासकों तथा उनकी दमन एवं उत्पीड़न की प्रवृति के प्रति कवि विद्रोह की भावना प्रकट करता हुआ, उनको चुनौती भरे स्वर में कहता है -

"सुरंगें उड़ रही साम्राज्यशाहों ने बिछायीं जो,
धसकती जा रही दीवार डालर ने उठायी जो ।
मिटेगा नस्ल का सिद्धांत भी प्रत्येक कोने से,
टिकेगा अब नहीं उद्‌जन-बमों की फस्ल बोने से ।"[22]

कवि महेन्द्र की कविता का एक मात्र लक्ष्य शोषित समाज को संघर्ष के लिए प्रेरित करना तथा उनको पूँजीवाद के चंगुल से छुड़ाना है । 'जिजीविषा' का कवि कहता है कि मेरी लेखनी, तुम मनुष्य की सूखी शिराओं में नये रक्त का संचार करने के लिये, जन-जन के कण्ठ में नया राग भरने के लिए तथा नये समाज के निर्माण के लिए समय-पट पर चलो तथा नवीन समाज के सृजन में सहायक बनो

"अभिनव-सृजन-आह्‌वान दो
हर आदमी के कण्ठ में
श्रम का सबल मधुगान दो ।"[23]

पूँजीवादी समाज व्यवस्था में स्त्री की स्थिति दयनीय थी । नारी-मुक्ति के लिए पंत ने मानव को आह्‌वान करते हुए लिखा -

"मुक्त करो नारी को मानव !
चिर बन्दिनी नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से,
जननि, सखी, प्यारी को ।"[24]

जहाँ तक समाज में नारी की स्थिति का प्रश्न है, वह सदियों से न्यायिक एवं लैंगिक शोषण की शिकार होती आयी है । उसके अधिकारों एवं व्यक्तित्व को हमेशा उपेक्षित किया गया है । आधुनिक युग के साहित्यकारों की

लेखनी नारी की दयनीय दशा के चित्रण तक ही सीमित नहीं रहती; अपितु वह उसे राष्ट्र-उद्धार के लिए जागरूक होने की प्रेरणा भी देती है । जहाँ नारी को कामिनी एवं प्रणय की खिलाड़िन बताया गया -

"किन्तु नारी सिर्फ़ नारी हो तुम्हें मैं जानता हूँ,
तुम प्रणय की हो खिलाड़िन मैं तुम्हे पहचानता हूँ ।"[25]

प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर नारी के परिवर्तित रूप को प्रकट करते हैं -

"तुम नहीं कोई
पुरुष की ज़र-ख़रीदी चीज़ हो,
तुम नहीं
आत्म-विहीना सेविका
मस्तिष्क-हीना सेविका,
गुड़िया हृदय-हीना,
नहीं हो तुम
वही युग-युग पुरानी
पैर की जूती किसी की ।"[26]

बदलती परिस्थितियों के बीच कवि उससे केवल प्रणय अथवा प्रेम की ही चाहत नहीं रखता, अपितु वह उससे उस शक्ति की आशा भी रखता है, जिससे वह युग की विषमताओं एवं पीड़ाओं के विरुद्ध संघर्ष कर सके ।

कवि महेन्द्र भटनागर पूर्ण विश्वास से कहते हैं कि एक दिन पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शक्तियों की पराजय होगी तथा दुनिया के कोने-कोने में सुख एवं समृद्धि का साम्राज्य होगा, मज़दूरों एवं किसानों का जय-जयकार होगा । इसलिए वह मज़दूरों एवं किसानों को संघर्ष के मार्ग में आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा प्रदान करते हैं -

आशा और विश्वास कवि महेन्द्र की काव्य-चेतना का प्रधान स्वर है। यह बात नहीं कि युग-जीवन की आर्थिक विभीषिका और यांत्रिक विसंगति ने कवि की आत्म-चेतना को आहत नहीं किया, उसके भी 'जीवन तरु के पल्लव' मुरझाकर टूटे हैं - (जीवन-तरु : अंतराल), 'मूक अभावों की धूल भरी अंधी आँधी' उसके भी जीवन में बही है (वेदना : अंतराल), 'थकावट' उसके भी 'प्रति-अंग, रग-रग को शिथिल' कर देती है। (संकल्प-विकल्प : जिजीविषा) और उसे भी इस तथ्य की अनुभूति है कि पूँजीवादी सभ्यता के अभिशाप से यह ज़िन्दगी 'हर घड़ी अभिशापिनी' और 'एक ढर्रे की' बन गई है (जिन्दगी : टूटती शृंखलाएँ), लेकिन मुख्य बात यह है कि कवि इन सब विसंगतियों और अभिशापमयी स्थितियों से हार नहीं मानता। उनसे जूझने के लिए प्रत्येक क्षण सन्नद्ध रहता है :

'मैं नहीं दुर्भाग्य के सम्मुख झुकूँगा

आज जीवन में हुआ असफल भले ही।'[27]

कवि की चेतना सामयिक परिस्थितियों के प्रति तटस्थ नहीं है। 'टूटती शृंखलाएँ' में वह दासता की जंजीरों के टूटने की खनक सुनता है। स्वतंत्रता-संग्राम के अवसर पर देश-प्रेम और आत्मोत्सर्ग की आलोड़नमयी भावधारा का चित्र यहाँ अंकित है। कतिपय प्रगीतों में कवि जनवादी क्रांति और विद्रोह का आह्वान करता है, सामन्तशाही और पूँजीवादी सभ्यता का विनाश करने के लिए संगठन की आवश्यकता का प्रतिपादन करता है। इस दृष्टि से 'पिछड़े राष्ट्रों से' नामक कविता उल्लेखनीय है :

"सजग हो

उठ पड़ो ओ राष्ट्र सोये

आज तो हुंकार कर,

ललकार कर !"[28]

डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा के शब्दों में "यह निरे उपदेष्टा की वाणी नहीं है। यह उस कवि का गान है जिसने जीवन की कटुता को सहा है किन्तु उसकी वाणी कटु नहीं, प्रत्युत् अमृतमयी है।"[29]

महेन्द्र भटनागर सिर्फ दोष-दर्शन या परछिद्रान्वेषण करने वाले प्रगतिवादी कवि नहीं हैं, उनकी दृष्टि हमेशा स्वस्थ और नव आदर्शमय अनागत की तरफ रही है :

कवि उठो !

रचना करो, तुम एक ऐसे विश्व की

जिसमें सुख-दुख बँट सकें ।

कवि महेन्द्र भटनागर समाज में सबको एक समान देखना चाहते हैं । डॉ. शम्भूनाथ चतुर्वेदी के अनुसार महेन्द्र भटनागर की काव्य कला ऐसी है जो हर वक्त समाज के लिए कुछ नयी राह बताती है । उनके शब्दों में "मैं कभी न चाहूँगा कि महेन्द्र भटनागर, इटली के उस मूर्तिकार की पूर्णता तक पहुँच जायें जो अपनी मूर्तिकला की पूर्णता तक पहुँचने के बाद सर पटककर रोने लगा था कि उसकी कला आज समाप्त हो गई । कलाकार का महत्व तभी तक होता है जब तक कि उसकी पूर्णता का आदर्श उससे दूर रहे, वह सचेष्ट रहे कलात्मक प्रौढ़ता के लिए ।"[30]

हर हृदय में

स्नेह की दो बूँद ढल जाएँ

कला की साधना है इसलिए ! (कला-साधना)

यहाँ महेन्द्र भटनागर का कविता करने का जो ध्येय है कि व्यक्ति जो कुण्ठा ग्रस्त हैं वे कुण्ठाओं से मुक्त हो जाएँ । चाहे विरोध की भयंकर आँधी चले, चाहे विपत्तियों का सागर लहरें ले, दिवाकर भले ही किसी का दामन थामकर छिप जाय, चाहे विश्व का आँगन दहकता हो, भवन चाहे लड़खड़ाकर गिर रहे हों और चाहे वन्य दरिया नये जोश में उमड़ रहा हो - इन तमाम विरोधी परिस्थितियों में भी जो व्यक्ति डगर पर सीना खोल, जूझता हुआ आगे बढ़ता है, कवि को सर्वाधिक प्रिय है :

"वही क्रांति आभास-दृष्टा सदा से,

वही विश्व इतिहास-सृष्टा सदा से ।

उसी की सबल मुक्त लम्बी भुजाएँ

नये खून से मोड़ देगी हवाएँ ।"[31]

कवि के सामने हिमालय-सी दीर्घ बाधाएँ खड़ी हैं और धधकते लाल शोले व्योम से बरस रहे हैं, फिर भी उसे विश्वास है -

"हिला देगी सुदृढ़ पर्वत-शिला-अन्याय की, हुँकार यह मेरी ।"[32] इसके साथ कवि का प्रण है कि -

"आज जीवन के सभी मैं
तोड़ दूँगा लोह बंधन,
शोषितों को आज अर्पित
प्राण की प्रत्येक धड़कन ।"[33]

कवि को विश्वास है कि शोषण तथा उत्पीड़न की सदियाँ बीतने, मानव-रक्त की प्रवाहित नदियों के सूखने तथा अन्याय-अनाचार की धारा के डूबने के उपरान्त नयी धरती उभरकर आएगी ।[34]

'संतरण' संग्रह की 'शुभकामनाएँ' साम्राज्यवादी शक्तियों से संघर्ष करती, विश्व की स्वाधीनताप्रिय जनता की विजय की शुभकामनाएँ करती है और 'एशिया' साम्राज्य के चंगुल से मुक्त हुए भारत तथा चीन का अभिनन्दन करती है । 'नई चेतना' संग्रह की 'नई दिशा' घृणित पूँजीवाद और मरणोन्मुख तानाशाही के विनाशोन्मुख भविष्य का एलान करती है । मानवीय सभ्यता और स्वाधीनता का अपहरण करनेवाले साम्राज्य पर कवि ने कसकर प्रहार किए है । पूँजीगत शोषण भी कवि के प्रहारों से नहीं बच पाया है । 'अभियान' की बंधनमुक्त रचना में पूँजी की जंजीरों से मुक्ति का आह्वान कवि करता है और 'विहान' में पूँजीगत तानाशाही की टूटती कमर का आश्वासन देता है । साथ ही कवि आश्वरत है कि पूँजीवादी सभ्यता का रथ, पतन के मार्ग पर, तीव्रता के साथ बढ़कर जगत का नाश करने पर उतारु है ।[35] अतः कवि का आग्रह है कि इसके विरोध और विनाश के लिए उठी हुई नई सभ्यता और संस्कृति का मार्ग प्रशस्त करना सबका पावन कर्तव्य है :

"उसीके मार्ग में हमको बिछाने फूल हैं कोमल,
उसीके मार्ग को हमको बनाना है सरल ।

जिससे नयी संस्कृति-लता के कुंज में

हम सब ख़ुशी का गा सके नूतन तराना,

भूलकर दुख़-दर्द जीवन का पुराना ।"[36]

कवि की कामना है कि नए संसार में - 'सुख़-दुख़ बँट सकें' निर्बन्ध जीवन की लहरियाँ बह चलें', 'निर्द्धन्द्ध वासर हों', 'स्नेह से परिपूर्ण रातें कट सकें', 'सबकी प्रगति में कोई व्यवधान न हो' और 'हर आदमी को आदमी का वेश मिले ।'[37] किन्तु संसार के मुनाफाख़ोर साहूकार, रक्त-पिपासु सामन्त और धर्म के ठेकेदारों ने विश्व की पावन धरती को अपनी मर्ज़ी से बाँट रख़ा है । क़िले तथा दीवारें ख़ड़ी करके मानव को उसके नैसर्गिक स्वत्व से अपदस्त कर रख़ा है । अन्याय, अनाचार, शोषण और उत्पीड़न के प्रतीक इन तत्वों के विनाश और उन्मूलन की चाह व्यक्त हुई है, 'अभियान' संग्रह की 'परिवर्तन हो' नामक रचना में । कवि शोषणहीन समाज निर्माण की घोषणा करता कहता है -

"जन-उर में द्रोह उठा दूँगा,

यौवन का तेज जगा दूँगा

उन्नति की राज़ बता दूँगा ।"[38]

कवि मार्क्सवाद के प्रभाव को अपनी भावभूमि के अनुसार अभिव्यक्त करने में सफल हो सका है, उसका विश्वास है कि पूँजीवादी सभ्यता को, पूँजीवादी शोषण व्यवस्था को नष्ट किये बिना सर्वहारा वर्ग का कल्याण संभव नहीं है । इसलिए उसकी दृष्टि में 'पूँजीवाद तानाशाह - भू-नासूर फोड़े पीब' हैं तथा 'प्रहारों से मिटेगा वर्ग शोषक क्रूर मतवाला' । अतः सर्वहारा वर्ग की अदम्य शक्ति और साहस के बल पर कवि शोषक-वर्ग के संसार को चुनौती देता हुआ कहता है :

"पीड़ित, त्रस्त, शोषित सर्वहारा की

उमड़ती बाढ़-सी धारा,

लगाकर यह गगन भेदी सबल नारा -

नई दुनिया बनानी है !

न होगा चिह्न जिसमें एक भी
मृत घृणित पूँजीवाद का,
बरबाद होगा विश्व से हर रूप तानाशाह का,
केवल जगत नव-साम्य-पथ पर ले सकेगा साँस,
सुख्र की साँस !”[28]

महेन्द्र भटनागर समाज के सचेत कवि हैं । अन्याय और शोषण का चाहे वह जिस रूप में हो, वे आधन्त कड़ा विरोध करते रहे हैं । उनकी यही क्रांतिकारी भावना स्वतंत्रता के पश्चात् विशुद्ध सांस्कृतिक धरातल पर संचरण करती हुई राष्ट्र जीवन को पुष्ट और सुन्दर बनाने की प्रेरणा देती है । जहाँ पर ख़तरा लगा वहाँ पर सचेत भी किया है । कवि आज़ाद देश के लोभी गिद्धों के प्रति सतर्क सावधान है । वह नहीं चाहता कि अब ये अपनी नुकीली चोंचों से आज़ाद देश का रक्त शोषण करें । इसलिए कवि उन लोभी शोषक गिद्धों को सावधान करता हुआ कहता है :

“पर सावधान ! लोभी गिद्धो !
यदि तुमने इसके फल-फूलों पर
अपनी दृष्टि गड़ाई,
तो फिर करनी होगी आजादी की
फिर से और लड़ाई !”[40]

कवि महेन्द्र भटनागर कल्पना के नये संसार में मज़दूरों, किसानों और मध्यवर्ग के लोगों का सम्मानपूर्ण स्थान होगा, पूँजीवाद का सूरज सदा के लिए अस्त हो जायेगा । स्पष्ट है कि कवि की सारी सहानुभूति शोषितों की ओर है। उसका पूर्ण विश्वास है कि गहरे घने आकाश में ही बिजली कौंधती है, मनुष्य जितना बलिदान करेगा, जनजन का विद्रोह उतना ही सशक्त होगा और आग का शोला बनकर भड़क उठेगा । डॉ. महेन्द्र ने साम्राज्यवादी और पूँजीवादी शक्तियों के विरुद्ध बग़ावत का झंडा खडा किया है । बगावत करनेवालों के हाथ में हँसिया-हथौड़ा है, ये बहादुर उत्तर कोरिया में युद्ध करते हैं, डॉलर (अमरिका) से बनी मज़बूत दीवार को आसानी से भेद कर ध्वस्त

कर देते हैं । स्पष्ट है कि कवि समाजवादियों का हिमायती है और अन्यों के प्रति अनुदार । कुछ आलोचकों के मत से, कवि की यह वर्गीय चेतना कविता को बहुत उँचा स्थान नहीं देती । डॉ. वासुदेवनंदन प्रसाद के मतानुसार "कवि को अन्तराष्ट्रीय मतभेदों और संघर्षों से अलग रहकर मानवीय संवेदनाओं को व्यक्त करना चाहिए । महेन्द्रजी में इसकी कमी नहीं है ।"[41]

कवि महेन्द्र सामाजिक बदलाव की आकांक्षा के कवि हैं । 'विहान' का कवि पग-पग पर क्रांति का आह्वान करता है, 'जग में जमकर संघर्ष करो' का उद्घोष करता है और 'कर्मों का ही नाम तपस्या' दर्ज़ करता है । उसका विश्वास है कि -

विप्लव होता जब जग में
शांति तभी ही आती है ।

"कवि महेन्द्र मूलतः सामाजिक संघर्ष और क्रांतिकारी चेतना के गायक हैं । उनकी कविताओं में सामाजिक जीवन-यथार्थ का विकृत एवं निराश चित्रण न होकर स्वस्थ एवं आशामय चित्रण मिलता है ।"[42]

पूँजीपतियों और निर्धन किसानों के बीच फैली असमानता का वर्णन करते हुए महेन्द्रजी लिखते हैं - जग पोषक स्वेद बहाता है / थकित चरण ले, बहते लोचन । तो दूसरी ओर - 'भवनों में बंद किवाड़ किये बिजली की पंखों के नीचे / शीतल खस के परदे में / जो पड़े हुए हैं /आँखें मीचे ।" वह उन्हें विवश करता है बंद आँखों को खोलने तथा असमानता के नंगे रूप को देखने के लिए । जिससे वे भी दलित वर्ग के दुखों को अनुभव कर सकें । ये ही अगणित लोगों का शोषण कर रहे हैं और उनकी लाशों पर नाच रहे हैं ।

इस तरह कवि महेन्द्र ने अपनी कविता में धृणित पूँजीवाद का चित्रण किया है ।

7.2 *शोषित की पीड़ा का चित्रण :*

महेन्द्र भटनागर की अनेक कविताओं में सामाजिक विषमता और संघर्ष का स्वर प्रबल है । जिस प्रकार वे राजनैतिक गतिविधियों के प्रति जागरूक रहे हैं, वैसे ही सामाजिक परिवेश और उससे उत्पन्न तरह-तरह की

समस्याओं के प्रति भी । उनकी दृष्टि में सामाजिक विषमता का मूल कारण शोषक-वर्ग की अवसरवादी और स्वार्थी प्रवृत्ति है । वे यह मानकर चले हैं कि जब तक शोषण की इस प्रक्रिया पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में ऊपर से नीचे तक परिवर्तन नहीं होगा और जब-तक वर्ग-भेद समाप्त नहीं होगा, तब-तक मनुष्य और मानवता को सुख और शांति प्राप्त नहीं होगी । वे पूरी तरह पीड़ित, दमित और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूतिशील रहे हैं ।

स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक परिवेश पर्याप्त निराशावादी रहा । सामान्य व्यक्ति अभावग्रस्त एवं परेशानियों से लदा था । इसमें आम व्यक्ति एक मुसिबत से यदि बाहर निकलता तो दूसरी समस्या आ खड़ी हो जाती । कवि महेन्द्र भटनागर ने इस स्थिति को 'गन्तव्य की ओर' कविता में संकेकित किया है -

"कितना बीहड़ दुर्गम रे पथ,

उलझ-उलझ जाता जीवन-रथ ।"[43]

लोग मजबूरियों से लड़ रहे थे । अपने अरमानों का गला घोंट कर जीवन यापन कर रहे थे, इस आशा में कि दुःख के बाद सुख मिलेगा ।

"कितने ही अरमान दबाए, नव-जीवन की प्यास लिए हूँ,

भूला-भटका अनजाना-सा, आँसू का इतिहास लिए हूँ ।"[44]

वे अपने अभावमय जीवन को अभिशाप समझकर जी रहा था। भारत-पाक विभाजन से व्यवसाय टूट गये थे । किसी को सांत्वना देनेवाला कोई नहीं था -

'साधन हीना, सबल हीना, पर संघर्ष किये हैं भारी'[45]

स्वतंत्रता-पूर्व भारत अंग्रेज़ों के शोषण से त्रस्त था । अंग्रेजों के प्रति भारतीयों में असंतोष व्याप्त था । 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन से यह विद्रोह भावना बढ़ती गयी अंग्रेज़ भारतीय प्रजा पर ज़ुल्म करते रहे ।

'शीताभ' शीर्षक कविता में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का वर्णन है :

"जब पीड़ित, व्याकुल मानवता

दुख-ज्वालाओं से झुलसाई
जब शोषण की आँधी ने आ,
मानव को अंधा कर डाला ।"[46]

प्रस्तुत गीत तत्कालीन सामाजिक जीवन का परिचय देता है । इस स्थिति ने समाज में ऐसा वातावरण पैदा किया कि - 'नगर-नगर' और गाँव गाँव में अंग्रेज़ों द्वारा उकसाई गयी साम्प्रदायिकता की आग लग गई ।[47] जिसके कोप-भाजन महेन्द्र भटनागर भी हुए । उनके शब्दों में - "कोई भी भावुक व्यक्ति जिसके हृदय में देश तथा मानवता के प्रति प्रेम है, अपने को इन घटनाओं से अछूता नहीं रख सकता । मैं प्रभावित था, अतः मैंने इन विषयों पर लिखा ।"[48]

अंग्रेज़ भारत को सत्ता सौंप गये, मगर जाते-जाते देश विभाजित करते गये । भारत-पाक विभाजन के फलस्वरूप सर्वत्र हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए; जिससे भारतीय संपत्ति को क्षति पहुँची ।

आज़ादी के बाद के भारत का वर्णन महेन्द्र भटनागर ने कविता 'आज़ाद मस्तक को उठा लेता' में किया है :

"क्या पता था देश का यह भाग्य आएगा
दूर हो अंग्रेज बैठा मुस्कराएगा
काट डालेंगे गले, लड़ आज आपस में !
हिंद की औलाद को यह रूप भाएगा ।"[49]

अत्याचारों के ऐसे माहौल में सर्वाधिक अत्याचार की शिकार नारी बनती रही है । हर आदमखोरी के इतिहास में उसीका सबसे पहले आखेट होता है । वही सब-कुछ भारत-पाक विभाजन के कारण हुए दंगों में हुआ । कवि महेन्द्र भटनागर नर-पशुओं को धिक्कारते हुए कहते हैं :

"लानत है इन्सान
किया तुम्ही ने नारी पर अत्याचार प्रहार,
लानत है युग-युग की चिरसंचित संस्कृति, जिसकी पशुता ने,
नारी की अस्मत पर हाथ उठाया ।"[50]

सर्वोदय के आदर्श की स्थापना के लिए स्वाधीनता आंदोलन से लेकर आज तक हमारे देश के नायक, समाज-सेवी, समाज-शास्त्री, बुद्धिजीवी सभी अपने-अपने ढंग से चिंतन-मनन एव तत्सम्बन्धी नीतियों के क्रियान्वयन में संलग्न हैं । राष्ट्र के सर्वांगिण विकास के लिए आवश्यक है कि सभी जन समुचित वृद्धि-समृद्धि से युक्त हो । कवि महेन्द्र भटनागर ने जिस विचारधारा से कविता को आगे बढ़ाया है, सबमें दरिद्र-नारायण को सहानुभूति दी है । उनकी सारी व्यथा शोषित-पीड़ित और सर्वहारा वर्ग की स्थिति से जुड़ी हुई है ।[51]

कवि महेन्द्र भटनागर जिस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, उस मध्यमवर्गीय जीवन की झाँकी भी उनकी कविता में मिलती है ।

साथ ही कवि ने निम्नवर्ग की पीड़ा का अनुभव करते हुए अपने काव्य में उसकी वेदना-कराहना को चित्रित किया है । निम्न-वर्ग की अपनी पीड़ाएँ हैं; अपने अवसाद हैं । सम्पन्नता के नित नए सपनों को दफ़नाने के बाद दम-घोंट सन्नाटे से साक्षात्कार करती शामें, नए संघर्ष के लिए शक्ति संचित करती भोरें और फाइलों से जूझती रातें । इन सब को झेलता है निम्न मध्यम वर्ग । कवि महेन्द्र ने मध्यम वर्ग के व्यक्ति की वास्तविक स्थिति का चित्रण किया है :

"पर, टपकती छत तले

सधः प्रसव से एक माता आह भरती है ।

मगर यह ज़िन्दगी इन्सान की

मरती नहीं, रह रह उभरती है !"[52]

मध्य-वर्ग के पास छत है मगर 'टपकती हुई' ! इसी तरह के और भी अभाव हैं; जिन्हें मध्य-निम्न वर्ग को सहने पड़ते हैं । समाज के नियमों, रीति-रिवाज़ों, मान्यताओं से बँधा हुआ यह वर्ग अपने ही दुख-दर्द में बेदम कराहता है । पुत्रियों के विवाह की चिंता, परिवार के निर्वाह की चिंता, समाज में अपने को जमाने की चिंता, बच्चों की पूर्ण परवरिश की चिंता, मकान के किराए से लेकर उसकी तमाम खामियों से निपटने की चिंता - इतनी चिंताओं के साथ व्यक्ति का जीना दूभर हो जाता है । ऐसे व्यथित समाज के व्यक्ति

का एक और चित्र चित्रित कर कवि ने समाज के यथार्थ रूप को प्रस्तुत किया है ।

"पास के घर में थकी-सी अर्द्ध-निद्रित

तीस-वर्षीया कुमारी करवटें लेती किसी की याद में ।

क्लर्क है उसका पिता और वह उलझा हुआ है

फाईलों के ढेर में । (ज़िन्दगी के फेर में !)"[53]

वर्तमान युग में निम्न-वर्ग की त्रासदी छुताछूत है । एक ग़रीब अछूत की दर्दनाक मौत का महेन्द्र भटनागर द्वारा अंकित करुण-चित्र दृष्टव्य है -

कवि अपनी पीड़ा को भी अभिव्यक्त करता है :

"उड़ गए ज़िन्दगी के बरस रे कई !

राग सूनी अभावों भरी ज़िन्दगी के बरस, हाँ कई उड़ गए ।[54]

कवि अपने जीवन की दुखद परिणति का कारण जानना चाहता है -

"मैंने जीवन का व्याकरण नहीं पढ़ा,

शायद, इसीलिए - सही अर्थों में जीना नहीं आया ।"[55]

ज़िन्दगी जीकर भी यह मलाल बना रहा :

"हँसकर और रोकर रे, बिता दी ज़िन्दगी हमने, जी न पाये !"[56]

निम्न-मध्य एवं निम्न-वर्ग को जीवन-संघर्ष अधिक करना पड़ता है, फिर भी उसे सफलता प्राप्त नहीं होती । असफलता का कटु अनुभव कवि महेन्द्र ने भी किया है । किन्तु वह अपने कर्तव्य-पथ से विमुख नहीं हुआ :

"मैं अपना ख़ुद पतवार बना, मैं अपना ख़ुद आधार बना,

निज की निर्भरता पर रखता अविचल जीवित विश्वास घना !"[57]

कवि का यह विश्वास पीड़ित जनों को जीने का आधार देता है ।[58] कवि अपनी आँखों अत्याचार सहते हुए युग के मनुष्यों को देख रहा है :

'देखता हूँ, हो रहा है घोर बर्बर

नृत्य तांडव, हिंस्र निर्मम ध्वंस,

देखता हूँ, हो रहे है राख़ ज़िन्दा

तड़प मानव तोड़कर दम, ध्वंस,

दीखते दीवार पर चित्रित करुण आख्यान !'[59]

चारों ओर हो रहे अत्याचार रूपी तांडव से किंकर्तव्यमूढ़ता की स्थिति में संसार दिशाशून्य हो गया है ।[60] इस अत्याचार व दमन, शोषण, मानवता की हननकारी दानवी शक्तियों के विरुद्ध सतत संघर्ष चलते रहने के बावजूद आशा की कोई किरण अभी तक उजागर नहीं हो पा रही है । संघर्ष की यह रात लम्बी और लम्बी होती जा रही है ।[61] व्यथा के समय में कवि अपने साथ-साथ युग-उर की वेदना का भी अनुभव करता है ।

कवि त्रस्त होता है पर टूटता नहीं, वह निदान की खोज में आगे बढ़ता है । साम्राज्यवादी विचारधारा व्यक्ति की स्वतंत्रता[62] छीन लेती है । आज विश्व में द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद यह समस्या सामने आयी है । व्यक्ति आज पीड़ा व त्रासदी का अनुभव कर रहा है । वह सुख की तलाश[63] में भटक रहा है । वर्गों के बीच की खाई और चौड़ी तथा गहरी होती जा रही है। देश के करोडों लोग यातना सहते मरते जी रहे हैं । दूसरी तरफ़ नेताओं, पूँजीपतियों, व्यापारियों, बुद्धिजीवियों का गांधीवाद की आड़ में हैवानियत का नंगा नाच, ढोंग और छलावा है । आज देश की तमाम लोगों के पास सिवाय फुटपाथ[64] के कुछ नहीं है । फिर भी वह ज़िन्दगी के दिन महज़ कर रहे हैं :

'आज देखा है -

मनुज को ज़िन्दगी से जूझते

संघर्ष करते ।'[65]

लोग अपने स्वार्थ से जुड़े हुए हैं । अन्यों की पीड़ा दूर करने की वे कभी नहीं सोचते । आज की ज़िन्दगी का यथार्थ[66] स्वार्थ है ।

प्रगतिवादी कवि महेन्द्र ने पौराणिक कथानक को भी काव्य के यथार्थ को प्रकट करने हेतु प्रयुक्त किया है । वर्तमान युग के मानव की त्रासदी को चित्रित करने के लिए कवि ने सीता-हरण प्रसंग को उठाया है । आज का वातावरण इस प्रसंग से अधिक समझा जा सकता है :

"दबा त्रस्त वातावरण क्रूर

जैसे हुआ हो अभी हाँ

अभी राम, सीता-हरण !"[67]

समय के अभाव में, आज किसी का दुख सुनने के लिए कोई रुकता नहीं। तब कोई किसी से हौसला पाने की ख्वाहिश कैसे करे। ऐसे में व्यक्ति का जीवन 'मरघट'[68] जैसा बन जाता है। व्यक्ति खुद अपने आपको बोझ समझने लगता है।

आजादी के छह दशकों के बाद भी देश का आम आदमी गरीब है। आज ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना लागू हो गई है फिर भी देश की गरीबी और बेकारी में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। सन् 1951 में 40 लाख लोग बेकार थे।[69] आज उसकी गिनती करोड़ों में है। आर्थिक योजनाओं का ढकोसला खूब चलता रहा है और आम आदमी उतना ही रीतता रहा। 'स्वतंत्रता', 'स्वराज' जैसे सुखदायी शब्दों का सत निचोड़ लिया गया। कवि महेन्द्र ने 'आज़ादी का त्यौहार'[70] शीर्षक कविता में देश की जनता का चित्रण किया है जो अभावपूर्ण जीवन में भी आजादी का त्यौहार मनाना चाहती है। इस विश्वास से कि अब कोई दुखी नही रहेगा।

तो 'जूझते हुए' का कवि 'विचित्र'[71] में भारत में फैली पशु साम्राज्य की व्यवस्था को लक्ष्य कर प्रश्न करता है 'यह कैसा स्वराज्य है ?'

स्वतंत्रता से पूर्व भारत की अर्थव्यवस्था जर्जर थी। ढेरो आर्थिक समस्याएँ विरासत में मिलीं। उपजाऊ भूमि बँटवारे में पाकिस्तान में चली गई। देशवासियों की रोज़ी-रोटी का सहारा कृषि दयनीय अवस्था में थी। उधोग धंधे विद्वेषपूर्ण नीति के कारण दम तोड़ चुके थे।[72] ऐसे में देश के पूँजीपति देश की प्रजा का शोषण करने पर तुले थे। 'आहत युग' का कवि देश में हो रहे सर्वत्र शोषण का खून-चूसती जौंकों से तुलना करता है :

'देश की नवदेह पर / चिपकी हुई जो / अनगिनत जोंके -

जलौकें, रक्त-लोलुप लोभ-मोहित।'[73]

'दरिद्रनारायण' कविता में भूखे-नंगों की सही तस्वीर उभारी गई है।

गरीब आदमी दिन-रात पिसता है । संस्कृति, कविता, नाटक, कला, आदि से उसका कोई संबंध नहीं है ।[74]

डॉ. विनयमोहन शर्मा के शब्दों में कहें तो 'उन्होंने अपनी आँखों से अपने ही प्रांत में जनता की गरीबी-बेबसी को देखा था । उसे अनाज के अभाव में भूख-विह्वल देखा था । इन दृश्यों ने समाज की व्यवस्था के प्रति उनमें विद्रोह भर दिया, जिसका विस्फोट उनकी कविता में देखा जा सकता है। सामाजिक अन्याय के प्रति कवि की अभिव्यक्ति काल्पनिक नहीं है । उसने भोगी हुई ज़िन्दगी को शब्द प्रदान किये हैं । पर, शब्द कवि की अनुभूति को पूर्णरुप नहीं दे पाते । उसका आभास मात्र देकर रह जाते हैं । इसलिए कवि को आज के जीवन को मुखर बनाने के लिए ऐसे शब्दों की खोज की चिंता रहती है जो उसके भावों को ईमानदारी के साथ अर्थ दे सके ।'[75]

महेन्द्र भटनागर इस युग के प्रगतिशील विचारधारा के कवि हैं । उनकी कविता में जो पीड़ा का चित्रण हुआ है वह उनकी भोगी हुई त्रासदी है। मार्क्सवाद का प्रभाव उनकी कविता में है; मगर वह उतना हावी होकर प्रकट नहीं हो पाया है । कवि महेन्द्र की कविता यथार्थ से सम्पृक्त है ।

7.3 *राजनीतिक प्रदूषण - भ्रष्टाचरण :*

'राजनीतिक स्वातंत्र्य प्राप्त करते ही हमारे देश में कई ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ घटित हुई; जिहोंने कुछ समय के लिए राष्ट्रीय विकास को स्थगित और अवरुद्ध कर दिया । उनमें से एक विस्थापितों की समस्या थी । दूसरी घटना उससे भी अधिक गहन थी, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी के निधन की । विस्थापितों का प्रश्न तो समय पाकर हल हो गया । यद्यपि अब भी उसके अवरोध मिटे नहीं हैं, परन्तु गाँधीजी के निधन से हमारे राष्ट्र का जीवन ही अंधकार में पड़ गया । उनका व्यक्तित्व हमारे राष्ट्रीय चारित्र्य का प्रतीक था । उनकी प्रेरणा संपूर्ण सामाजिक जीवन को आंदोलित करती थी । उनके न रहने पर सबसे बड़ी जो क्षति हमें उठानी पड़ी, वह राष्ट्रीय नैतिक चेतना के ह्रास की है। कोई ऐसा आलोक केन्द्र नहीं रह गया था जो हमें नैतिक दिशा-निर्देशन कर सकता । राजसत्ता और जनसमाज के बीच संबंध-सूत्र शिथिल होने लगे । राजसत्ता अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित होती गई, सरकारी विभागों की

संख्या बढ़ती रही और सरकारी माध्यम से ही जन-समाज से संपर्क स्थापित किया जाने लगा । तीसरी क्षति यह हुई कि देश के अत्यावश्यक राष्ट्रीय एक्य का भाव क्षीण होने लगा, एक वर्ग की चेतना दूसरे वर्ग या वर्गों की चेतना से विच्छिन्न होने लगी ।’[76]

स्वतंत्रता प्राप्ति से काफी वर्ष पूर्व भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने 1938 में, ‘राष्ट्रीय योजना आयोग’ की नियुक्ति की । जिसके अध्यक्ष पं. जवाहरलाल नेहरू ने उन सामान्य नियमों को व्यक्त किया जो अंग्रेज़ों के भारत छोड़ने के बाद हमारी भूमि-नीति का मार्गदर्शन करेंगे । उनका वक्तव्य इस प्रकार है :

‘कृषि, भूमि, खान, खदान, नदियाँ और वन राष्ट्रीय संपति के रूप हैं जिनका स्वामित्व सामूहिक रूप से भारतीय जनता के हाथों में ही रहेगा । सहकारी नियम सामूहिक और सरकारी फार्मों के विकास के द्वारा भूमि को काम में लाने के लिए प्रयोग किया जाएगा । फिर भी यह प्रस्ताव नहीं किया गया कि छोटी जोतों में किसान द्वारा खेती को समाप्त कर दिया जाए । किसी न किसी प्रकार से सामूहिक खेती शुरु करानी ही थी लेकिन संक्रांति काल के समाप्त होने के बाद ताल्लुकेदार, जमींदार आदि जैसे बिचोलियों को मान्यता नहीं देनी थी । इन वर्गों के लोगों को जो अधिकार और ख़िताब दिये गये थे उन्हें उत्तरोत्तर खरीदना चाहिए । राज्य सरकारों को खेती योग्य बंजर भूमि में सामूहिक खेती शीघ्र ही प्रारंभ करानी थी । सहकारी खेती व्यक्तियों अथवा संयुक्त स्वामित्व के साथ सम्मिलित की जानी थी । विभिन्न प्रकार की खेती के लिए कुछ ढील भी देनी थी ताकि अधिक अनुभव के साथ कुछ विशेष प्रकार की खेती को विकसित किया जाये जो अन्य प्रकार से अपेक्षाकृत अधिक प्रोत्साहन पा सके ।’[77] मगर यह संभव न हो पाया । उसका कारण राजनीतिक उथल-पुथल और उसमें फैला प्रदूषण है ।

राजनीति विषय पर कवि महेन्द्र भटनागर कहते हैं कि - “राजनीति विषयक मेरा ज्ञान कुछ न था । राजनीति से मेरा भावात्मक संबंध ही कहा जा सकता है । राजनीति जब साधारण जनता के जीवन को प्रभावित करने लगती है तब उससे विलग भी नहीं रहा जा सकता । अत: राजनीतिक चेतना से मैं अपने को नहीं बचा सका ।”[78]

"सन् 1942 का देश-व्यापी आन्दोलन, बंगाल का अकाल, आजाद हिन्द फौज का अभियान आदि ऐसी घटनाएँ है जिनका जनसाधारण के मन पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था । इसी प्रभाव का राजनीति से कोई सीधा संबंध नहीं है । कोई भी भावुक व्यक्ति जिसके हृदय में देश तथा मानवता के प्रति प्रेम है, अपने को इन घटनाओं से अछूता नहीं रख्र सकता । मैं प्रभावित था, अतः मैंने इन विषयों पर लिख्रा ।"[79]

राजनीतिक उथल-पुथल का प्रारंभ 1857 के 'सैनिक विद्रोह' से माना जाता है । "जबकि प्रसिद्ध भारतीय इतिहासकार पट्टाभि सीतारमैया के अनुसार यह भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम था ।"[80] इस क्रांति का नेतृत्व मुगल सम्राट बहादुरशाह तथा कुछ अन्य रियासतों के राजा-नवाबों आदि के हाथों में था ।

डॉ. ईश्वरीप्रसाद के अनुसार - "यह विद्रोह एक योजनाबद्ध था, इसके नेता बहुत समय से ब्रिटिश शासन के विरुद्ध गाँव-गाँव के लोगों में इस भावना को फैला रहे थे । वे नेता निःस्वार्थ और देशभक्त थे और अपने देश की आज़ादी से अधिक प्रिय उन्हें कोई चीज़ नहीं थी । चूँकि यह क्रांति अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रही, अतः इसे असफल राष्ट्रीय क्रांति अथवा भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम कहा जा सकता है ।"[81]

राजनीति के भ्रष्टाचरण की सबसे अधिक गंभीर स्थिति बंगाल के अकाल में देख्रने मिलती है । डॉ. महेन्द्र भटनागर इस घटना के विषय में कहते हैं कि - 'बंगाल का अकाल सबसे दुख्रद घटना है । ब्रिटिश सरकार के शासन में देश में सात बार अकाल पड़ा । जिसने समाज के पिछड़े लोगों को बेहाल कर दिया । इस अकाल में ख्राने को अन्न मुनासिब नहीं था । लोगों ने घर का धन क्या, अपने लाड़ले बच्चों को भी बेच दिया था । लोग अपने प्राण बचाने के लिए अपने बच्चों की ममता तक को दाव पर लगा रहे थे ।'[82]

महेन्द्र भटनागर ने स्वतंत्रता पूर्व के समाज की पीड़ा का चित्रण किया है । यथा :

'बढ़ रही अगणित व्यथाएँ
है मधुर जीवन न प्रतिपग ।'[83]

भारत लोकतंत्रात्मक देश है । जिसका तंत्र लोगों के लिए, लोगों से चलता है । फिर भी आज राजनीति में भ्रष्टाचार है । वर्तमान राजनीति ठगों का जमघट हो गई है । राजनीतिज्ञ एक दूसरे का जय-जयकार करते हैं । सबके सब पैसों के लिए कार्य करते हैं । कोई देश सेवा नहीं करता । यही व्यथा महेन्द्र भटनागर की कविता में चित्रित है । यथा :

"जमघट ठगों का कर रहा जमकर,
परस्पर मुक्त जय-जयकार / शीतल-गृहों में बस
फलो-फूलों, विजय के गान गा,
निश्चिंत चक्कर खा, हिंडोले पर चढ़ो झूलो !
जीवन सफल हो, हर समस्या शीघ्र हल हो !"[84]

अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए व्यक्ति मानवता का हनन करता रहा है । राजनीति एक ऐसी सत्ता है; जिससे राजनीतिज्ञ समाज का शोषण करता है । कवि महेन्द्र भटनागर ने अपने काव्य में दुनिया का राजनीतिक चित्र प्रस्तुत किया है । यथा :

'कर न सकता न्याय कोई स्वार्थ में जकड़ा हुआ है जग,
बढ़ रहीं अगणित व्यथाएँ हैं मधुर जीवन है न प्रतिपग,
हो गया है आदमी का आज तो पाषाण का मन !
क्या यही है मनुज जीवन ?'[85]

कवि डॉ. महेन्द्र भटनागर भी इस देश के आम लोगों की तरह बार-बार राजनीतिक चालबाज़ियों में स्वयं को छला गया महसूस करते हैं । धर्मनिरपेक्षता हो या सामाजिक न्याय, राष्ट्रीय एकता हो या संविधान-सुरक्षा, सब नारे हैं । ये नारे खोटे सिक्के हैं, जो घिस चुके हैं, काले पड़ गये हैं और सपाट हो गये हैं । फिर भी नेतागण विदूषकों की भाँति चुनाव के बाज़ार में इन्हें चलाकर जनता के साथ छल ही नहीं कर रहे हैं, उसे हास्यापद भी बना रहे हैं । यहाँ कवि का आक्रोश फूट पड़ता है :

"अदभुत अँधेर तमाशा है / घनघोर निराशा है,

यह किस जनतंत्र-प्रणाली का ढाँचा है ?

जनता के मुँह पर तड़-तड़ पड़ता तीव्र तमाचा है !"[86]

श्री महेन्द्र भटनागर एक आस्थावान, दायित्वशील, समय-सजग और अनुचित सहन न कर हस्तक्षेप करनेवाले रचनाकार हैं, जो मात्र कवि कहलाने की ललक से कविता नहीं करते । समय-समय में हुए दुष्चक्रों ने कवि के हृदय को भग्न किया है । देश की दुर्दशा से चिंतित कवि की व्यथा सहज और सम्प्रेषणीय हो गई है :

डॉ. सत्यनारायण व्यास के शब्दों में महेन्द्र भटनागर की कविता के बारे में कहें तो - 'वे किसी ख़ास क़िस्म की विचारधारा से 'प्रतिबद्ध' या उसके अन्धभक्त नहीं हैं । हाँ, प्रभावित जरूर हैं - समाजवाद हो, मार्क्सवाद हो, प्रयोगशील और प्रगतिशील आन्दोलन हो ।'[87]

हमारी वर्तमान समस्या आतंकवाद है । यह समस्या देश में चारों और अपने भयानक रूप में फैली हुई है । लूटमार, शोषण, प्रहार, ईर्ष्या और भ्रष्टाचार के कारण समाज झुलस रहा है । गहरी और बड़ी साज़िश में फँसा देश उबर नहीं पा रहा है । श्रमजीवी समाज की दशा यथावत् है :

"रोगग्रस्त, भूखे, अधनंगे, दमित, तिरस्कृत शिशु दुर्बल,

रुग्ण दुखी गृहिणी जिसका क्षय होता जाता यौवन अविरल,

तप्त दुपहरी में ढोते हैं मिट्टी की डलियाँ, फटे चरण ।

तपता अम्बर, तपती धरती, तपता रे धरती का कण-कण !"[88]

साम्प्रदायिकता सामाजिक संस्कृति को क्षतिग्रस्त कर देती है । साम्प्रदायिक दंगों पर कवि कहता है :

असभ्य मद प्रमत्त डोलती हैं हिंसकों की टोलियाँ,

सुलग रही असंख्य बेकसूर व्यक्तियों की होलियाँ,

जलन के दर्द से कराहती औ' काँपती वसुन्धरा,

कि आज एक बार फिर जगी चंगेज़ की परम्परा ![89]

यहाँ पर कवि महेन्द्र ने साम्प्रदायिक नेताओं की ओर अँगुलि-निर्देश किया है, जिनके भ्रष्टाचार से समाज ग़लत राह पर चलने के लिए मजबूर होता है ।

1997 में प्रकाशित कविता संग्रह 'आहत युग' में 'वोटों की दुष्ट-नीति' कविता में राजनीतिज्ञों पर कवि महेन्द्र ने करारा व्यंग्य किया है । इसमें दलित चेतना की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति है । दलितों का पक्ष लेने वाले राजनीतिक नेता दलितों का कितना शोषण कर रहे हैं, इसकी बड़ी सटीक अभिव्यक्ति कवि ने इन पंक्तियों में की है :

> “दलितों का रक्षक/दलितों के हित में/भरता हुकारें - देता ललकारें
> चित्र खिंचाता पीता जूस ! निकला अति भव्य जुलूस !
> कल नाना टी.वी. पर्दों पर दुनिया देखेगी/यह ही, हाँ-यह ही
> दलितों का भव्य जुलूस ! अफ़सोस/नहीं है शामिल इसमें
> दलितों की टोली, अफसोस, नहीं है शामिल/इसमें दलितों की बोली !”[8/]

महेन्द्र भटनागर का कवि महेनतकश के पक्ष में लडनेवाला कलाकार है । यह सही है कि बदमाश राजनीतिज्ञों और भ्रष्टनेताओं की राजनीति से देश के बुद्धिजीवी कलाकारों की हालत अंधेरे में के उन कुत्तों जैसी होती है, जिन्हें चोर-डाकू, लुच्चे-लफंगे, रोटी के टुकड़े डालकर चुप करा देते हैं । और फिर सामाजिक अपराध होते रहते हैं ।

“स्वराज-प्राप्ति के बाद देश के अधिकारी और नेता-वर्ग अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति तथा व्यक्तिगत पूँजी के विकास में ही विशेष लिप्त रहे । देश की गिरती हुई आर्थिक स्थिति की उन्हें रंचमात्र भी चिंता न थी, फलतः आर्थिक नीतियों के क्रियान्वयन हेतु जो पूँजी मिलती, वह लोगों के व्यक्तिगत खजानें में चली जाती तथा वे नीतियाँ यथावत् कागज़ पर लिखी रह जातीं । देश की जनता इन नीतियों एवं भूतपूर्व राष्ट्रभक्तों के द्वारा किये जा रहे शोषण के तरीकों को धीरे-धीरे जानती गयी और देश की सरकार से उसका मोहभंग होता गया । उन्हें यह एहसास होने लगा था कि राजनीतिक आजादी अवश्य प्राप्त हुई है, लेकिन अभी भी आर्थिक आजादी पाना बाकी है । फलतः असंतोष बढ़ता ही गया ।”[91] कवि महेन्द्र भटनागर ने 'जीवन-ज्वाला' में यही असंतोष प्रकट किया है :

'यह मम जीवन-ज्वाला इसको तुम चू-चू स्वर में गाने दो !'[92]

"स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत देश के समक्ष मुख्य रूप से तीन समस्यायें थीं - शरणार्थियों की समस्या, संविधान निर्माण की समस्या और देशी रियासतों को एक में मिलाकर अखण्ड भारत की कल्पना को साकार बनाने की समस्या ।"[93]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह समस्यायें धीरे-धीरे कम होती गईं और कुछ समस्यायें आज भी पूर्ववत् बनी हुई हैं । "इसका सबसे बड़ा कारण था - राजनेताओं की व्यक्तिगत स्वार्थ-लिप्सा । वस्तुतः स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले राजनेता एक उद्देश्य से संगठित थे तथा उनके सामने एक महान लक्ष्य था - स्वराज प्राप्ति का । स्वराज्य प्राप्ति के बाद परिस्थितियाँ बदली तथा देश की बागडोर उन्हीं राजनेताओं के हाथ में आयी, जो स्वराज्य प्राप्ति की लड़ाई में संघर्षरत थे । देश की जनता को इन राजनेताओं से काफी उम्मीदें थी । लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के बाद उनके महान् लक्ष्य में भी परिवर्तन उपस्थित हुआ । एक ओर देश की परिस्थितियाँ दिनों-दिन विषम होती जा रही थी, समस्यायें मुँह बाये खड़ी थीं तो दूसरी ओर राजनेता पद एवं अधिकार-प्राप्ति की स्वार्थ-लिप्सा में संलग्न थे ।"[94] फलतः आज़ादी से सामान्य जनता को जैसे 'धोखा हुआ' है का एहसास होने लगा । 'धोखा हुआ'[95] काव्य में कवि महेन्द्र ने सामान्य जन की इस मनोदशा को वाणी प्रदान की है । साथ ही कवि यह भी कहता है कि

'यह युगों की साधना का आज क्या परिणाम है ?"[96]

x x x x x

'आज युगों के घाव हरे ! हर उर में दुख-दर्द भरे !"[97]

'बदलता युग' की अनेक कविताएँ अकाल और साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि में लिखी गई हैं, इसलिए इनमें राजनीतिक प्रदूषण और समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार की स्पष्ट झलक देखने मिलती है । 'तूफ़ान' नामक कविता में लिखा है :

"मिटा समुदाय सारा खा गया है जंग

दीमक और फोड़ों से हुआ जर्जर, हुआ जर्जर !

बिगड़ दोनों गये है लंग्स !”

कवि कहता है :

“दशा युग की करुण है, आज वाणी में नहीं बँधती !

नहीं बँधती विषम है साधना स्वर में नहीं सधती !”[87]

इस संग्रह की कविता में ‘नौ-सैनिक विद्रोह’, ‘बंगाल का अकाल’, ‘जयहिन्द’, ‘हम एक है’, ‘संयुक्त बनो’, ‘धरती की पुकार’ आदि रचनाओं में स्वातंत्र्य पूर्व एवं स्वतन्त्रता पश्चात् के भ्रष्ट राजनीतिक ब्योरे मिलते हैं ।

राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट आचरण से समाज गुमराह हुआ है । आम आदमी पीड़ा और शोषण का शिकार हुआ है । कवि महेन्द्र हर पीड़ित व्यक्ति को संगठित होकर शोषणखोरों के विरुद्ध विद्रोह करने का एलान करते हैं । यथा :

“आओ टकराएँ

मिलकर टकराएँ

जीवन सँवरेगा,

हर वंचित-पीड़ित सँभलेगा !”[88] (‘सम्भव’)

आज भी धर्म के नाम पर दंगे और भ्रष्टाचार फैल रहा है । महेन्द्र भटनागर का कवि इन स्थितियों को जानता है, तभी तो वह मंदिरों को अय्याशी के अड्डे कह सकता है । भगवान के नाम पर जिस्म को प्रसाद के रूप में धनपतियों, पुजारियों और पंडों के शरीर की क्षुधा शान्त करने के लिए परोसा जाता है । आज मंदिरों का ठेका किसने ले रखा है ? धनपति, पुजारी और पंडों ने ही ? यही भ्रष्टाचार फैलाते हैं । इससे अधिक वह क्या कर सकते है ? इसका भंडाफोड़ कवि ने ‘हरिजन’ कविता में प्रस्तुत किया है :

युवक : यह कैसे कहते हो दादा / चाल ज़माना चलता जाता / हम भी क़दम-क़दम बढ़ते जाते / मंदिर सारे / आज हमारे लिये खुले हैं ।

दादा : मंदिर आज हमारे लिए खुले हैं / तो क्या उनको लेकर चाटें ? उनसे न मिलेगी / रहने काबिल आज़ादी / भगवान हमारा यदि साथी होता तो क्या इस जीवन से / पड़ता पाला ? / मंदिर तो धनिकों के अय्याशी के अड्डे हैं / तू क्या जाने ?”0//

डॉ. आदित्य प्रचण्डिया ने पंडों और पुजारियों को भी पूँजीवाद का प्रतीक माना है । उनके शब्दों में - "केवल वे धनिक ही पूँजीवादी नहीं हैं जो मध्यम और निम्नवर्गीय मानवों का शोषण कर विशाल संपत्ति के स्वामी हुए हैं, पर वे पण्डे, पुरोहित, मौलवी, पादरी, कथित, धर्माचार्य और वे राजनीतिक नेता भी पूँजीवाद का अंग ही हैं, जिन्होंने अपने स्वार्थ साधन के लिए समाज में सामाजिक और धार्मिक रुढ़ियों को जन्म दिया ।"[101]

'मूरत अधूरी'[102] गीत में कवि महेन्द्र भटनागर ने भारतीय जनता की मनोदशा को चित्रित किया है । भारत की जनता ने यह सोचकर स्वतंत्रता संग्राम किया था कि स्वतंत्रता के पश्चात् सभी भारतीयों की कल्पनाएँ, चाहनाएँ, वासनाएँ और सपने साकार होंगे, पर ऐसा हुआ नहीं । यथा :

"साकार हो जाएँ असम्भव कल्पनाएँ सब

आकार पा जाएँ चहचहाती चाहनाएँ सब

अनुभूत हों मधुमय उफ़नती वासनाएँ सब

यह जिन्दगी ऐसा कभी

जन्नत नहीं देगी / यह ज़िन्दगी ऐसी कभी / किस्मत नहीं देती ।"

राजनीतिक दाँव-पेच एवं निजी स्वार्थों के कारण समाज की दशा बहुत अस्त-व्यस्त हो गई है । लोग अपने-अपने स्वार्थों में अंधे हो गए हैं । शील, संयम और आचरण की उपेक्षा हो रही है । पद एवं प्रतिष्ठा के लिए मनुष्य नैतिकता को भूल गया है । आकाश में उमस है और पवन थमा हुआ है । ऐसे में कवि महेन्द्र भटनागर का मन और बदन थकावट व घुटन महसूस करता है -

बहुत उदास मन / थका-थका बदन / बहुत उदास मन / उमस भरा गगन / थमा हुआ पवन / घुटन-घुटन-घुटन !

कवि को ज्ञान है कि हम चारों ओर से नर-भक्षियों के जाल में फँस गये हैं - 'सुरंगों ने जकड़कर हमारे लौह पैरों को निष्क्रिय बना दिया है - पर उसको विश्वास है कि 'आदमी के प्रति आदमी की क्रूरता का दौर रह नहीं पायेगा !' व्यक्ति और राष्ट्र के सम्मुख वर्तमान ख़तरे और उनके प्रति कवि की

रचनात्मक दृष्टि के चित्र 'वसुधैवकुटुम्बकम्', 'भ्रष्टाचार', 'अन्त', 'रक्षा', 'तमाशा', 'वोटों की राजनीति', 'घटनाचक्र' आदि कविताओं में मिलते हैं ।

डॉ. नत्थनसिंह के शब्दों में - "'आहतयुग' की चेतना भारतीय मानस के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम करेगी ।'[103] इसका कारण 'आहत युग' काव्यसंग्रह के प्रकाशकीय वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है - "'आहतयुग' की कविताएँ एकरस नहीं विविधरूपा है ।" निश्चय ही ये कविताएँ भाव-संवेदन और अभिव्यक्ति-भंगिमा की दृष्टि से किसी एक परिधि में सीमित नहीं हैं । ये कविताएँ किसी प्रकार की वादग्रस्तता और दलीय प्रतिबद्धता से मुक्त रहते हुए जीवन के व्यापक आयामों को स्पर्श करती हैं । इनमें एक ओर युग के संत्रास को तो दूसरी ओर समाज के विपर्यय को प्रभावी अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है । इन कविताओं में समाज-परिवर्तन के लिए कवि की प्रतिबद्धता और संकल्पशीलता का स्वर सबसे ऊपर उठता हुआ सुनाई पड़ता है ।

निष्कर्ष :

राष्ट्रीयता की यह जनवादी रीति भारतेन्दु युग से शुरू हुई और विकसित होती आगे बढ़ती चली । अनेक कवियों ने इसे आगे बढाने का महनीय कार्य किया । श्री महेन्द्र भटनागर की विचार-सरणि उसी परंपरा की एक कड़ी है । सही राष्ट्रप्रेमी कवि अतीत का गौरव गान नहीं करता बल्कि वर्तमान का करीबी से सूक्ष्मावलोकन करता है । साथ ही भविष्य का पथदर्शक भी बनता है । महेन्द्र भटनागर के कवि ने उन विचारों को सहेजने का सफल प्रयास किया है, जिनकी रेखाएँ मिल-जुलकर राष्ट्रीय प्रेम, राष्ट्र-भक्ति को चित्रित करती हैं । अपनी कविताओं में कवि ने न केवल वर्तमान की दुर्व्यवस्था पर खुलकर प्रहार किये हैं, अपितु स्वातंत्र्य-पूर्व पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न भ्रष्टाचार के दूषण के ख़तरों का भी सांगोपांग निरूपण किया है, साथ ही भविष्य के एक नये संसार की परिकल्पना भी की है । जिसका आधार जीवन के कटु सत्य है ।

महेन्द्र भटनागर की कविताओं से युग को यथार्थ, आदर्श एवं राष्ट्र-जीवन की गहराई का पता चलता है । संघर्ष की विषम ज्वाला की भावोत्तेजक चिनगारियाँ, भ्रष्टाचार के विरुद्ध भारतीय जन-समाज को जागृत होने का

एलान करती हैं । उन्होंने युग की राजनीति का गहरा और व्यापक अनुभव किया है । उसकी गहराई में धँस कर ज्ञानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान के पारिजातों को अपनी कविताओं में पुष्पित और पल्लवित किया है ।

डॉ. सत्यनारायण व्यास के शब्दों में - "डॉ. महेन्द्र के काव्य का आधार सामाजिक है और अधिरचना साहित्यिक । उनकी सोच एकदम जनवादी है और भाषा स्तरीय । वे अनपढ़-अनगढ़ जन की बात को भी साहित्य के शाण पर तराशकर कहते हैं ।"[104] तो डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' कहते हैं "कवि में जन-संस्कृति के नव-निर्माण की जो अदम्य आस्था है वह उसके स्वर को और सबल तथा साधनापरक बनाती है । हिन्दी के वर्तमान कवियों में उसने सहज ही गौरवपूर्ण स्थान बना लिया है । युग की वाणी उसके कण्ठ में ढलकर जनजीवन के अश्रुहास की सजीव गाथा बन गई है ।"[105]

महेन्द्र भटनागर प्रगतिशील विचारधारा के कवि हैं । मार्क्सवाद का प्रभाव उनके काव्यों में देखने को मिलता है । परन्तु यह प्रभाव उनके भोगे हुए सत्य से मेल खाता है । उन्होंने अपनी आँखों से जनता की गरीबी-बेबसी को देखा है । उसे अनाज के अभाव में भूख विह्वल देखा है । इन दृश्यों ने समाज-व्यवस्था के प्रति उनमें विद्रोह भर दिया । यह विद्रोह कवि को मार्क्सवाद के करीब ले जाता है । उनकी प्रतिबद्धता अपने प्रति अपने अनुभूत सत्य के प्रति है । इसीसे उन्हें किसी खेमे के खूटे से नहीं बाँधा जा सकता ।"[106]

कवि श्री महेन्द्र भटनागर का शोषण-मुक्ति का आह्वान नारेबाज़ी नहीं बल्कि एक सुनियोजित कार्य है; जिसमें उन्होंने समाजगत विकृतियों और आर्थिक वैषम्य को लक्षित कर नव-निर्माण का स्वप्न सँजोया है ।

अध्याय-7

1. ‘समाजविज्ञान कोश’, ओम प्रकाश गावा, पृ.29
2. ‘दर्शनकोश’, प्रगति प्रकाशन मास्को, पृ.366
3. वहीं, पृ.368
4. वहीं, पृ.368 ‘दर्शनकोश’
5. ‘आर्थिक विचारों का इतिहास’ (एतिहासिक आर्थिक विचारक), नसीम ए. आजाद, पृ.198
6. ‘छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप’, पृ.73
7. ‘छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप’, पृ.75
8. ‘नया हिन्दी काव्य’ : शिवकुमार मिश्र, पृ.24
9. ‘आधुनिक हिन्दी काव्य’, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ.31-32
10. वहीं, पृ.23
11. ‘आधुनिक हिन्दी काव्य’, डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ.83
12. वहीं, पृ.145
13. वहीं, पृ.169
14. वहीं, पृ.235
15. ‘ईत्यलम्’, अज्ञेय, पृ.53
16. ‘हुंकार विपथगा’, रामधारी सिंह, दिनकर
17. ‘हम विषयायी जनम के दग्ध हो रहे मेरे जन’, बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’, पृ.542
18. ‘जीवन के गान’, ‘यह किसका कंकाल पडा है’, शिवमंगल सिंह, पृ.95
19. वहीं, पृ.96
20. ‘धरती’ - त्रिलोचन शास्त्री, पृ.29
21. जिजीविषा, ‘हिम्मत न हारो’, महेन्द्र भटनागर, पृ.1
22. वहीं, पटाक्षेप, महेन्द्र भटनागर, पृ.44
23. जिजीविषा ‘लेखनी से’, महेन्द्र भटनागर, पृ.35-36
24. युगवाणी ‘नारी’ सुमित्रानंदन ‘पंत’, पृ.46
25. आधुनिक कवि ‘नारी’, रामेश्वरशुक्ल ‘अंचल’, पृ.19
26. चयनिका - ‘नई नारी’ महेन्द्र भटनागर, पृ.147-148
27. ‘अप्रतिहत’, ‘जिजीविषा’, पृ.
28. ‘कवि महेन्द्र भटनागर सृजन और मूल्यांकन’, सं. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, पृ.25
29. वहीं, पृ.38
30. नई चेतना, ‘आँधी’, पृ.21
31. टूटती श्रृंखलाएँ, ‘संबल’, पृ.27

32. अभिधान, 'संघर्ष', पृ.33
33. बदलता युग, 'विवशता में', पृ.47
34. नई चेतना, 'नई संस्कृति', पृ.80
35. वहीं, पृ.81
36. जिजीविषा, 'युग और कवि', पृ.46
37. अंतराल, 'स्नेह सुघाजल', पृ.18-19
38. वहीं
39. 'नई दिशा', समग्र खण्ड-1
40. 'आजादी का त्यौहार', महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1
41. कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार, डॉ. विजय मोहन शर्मा
42. जनता और जीवन के कवि महेन्द्र भटनागर, पृ.60
43. 'गंतव्य की ओर', समग्र खण्ड-1, पृ.120
44. वही, 'साधना', पृ.121
45. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.310-311
46. 'शीताभा', वही
47. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.310-11
48. वहीं, पृ.311
49. 'आजाद मस्तक को उठा लेना' वहीं
50. बदलता युग, 'दमित नारी', पृ.90
51. वहीं
52. जिजीविषा 'मध्यवर्ग' महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-3
53. वहीं, पृ.31
54. वहीं संवर्त 'अनुदर्शन', पृ.26
55. संकल्प, 'प्रक्रिया', पृ.30
56. संवर्त, अनुपथ, पृ.30
57. विहान, 'स्वावलंब', पृ.45
58. नई चेतना, 'मुझे भरोसा है', पृ.56
59. टूटती श्रृंखलाएँ, 'धधुकती आग', पृ.34
60. वहीं 'निशा का युग', पृ.61
61. टूटती श्रृंखलाएँ 'मंझिल कहाँ', पृ.34

    है अभी मंज़िल कहाँ ?
    चल रहा हूँ राह पर अभिनव लिए विश्वास
    लक्ष्य का मिलता नहीं किंचित कहीं आभास,
    द्रोपदी के चिस्सा यह बढ़ रहा है पथ
    इति कहाँ ? बीता नहीं दुर्गम अभी तक अथ ।

62. टूटती श्रृंखलाएँ 'ज़िन्दगी की शाम', पृ.47
यह उदासी से भरी मजबूर, बोझिल ज़िन्दगी की शाम
अपमानित दुःखी, बेचैन युग - उर की
तड़पती ज़िन्दगी की शाम ।
63. संकल्प 'अंधकाल', पृ.42
छा रहे अनेक दैत्य छीनने स्वतंत्रता मनुष्य की,
वेगवान अंधकार, लीलने किरण-किरण भविष्य की ।
64. संकल्प 'आकस्मिक', पृ.20
आवश्यकता हैं : पर, पूर्तियाँ नहीं, अर्चनाए है :पर, मूर्तिया नहीं ।
भटकने हैं : बाट नहीं, नदियाँ है : पर, घाट नहीं ।
सर्वत्र तलाश-ही-तलाश है ।
65. संकल्प 'हमारे इर्द-गिर्द', पृ.15
सिर पर खुला आसमान है,
नीचे नंगी धरती । सूनी निगाहें
ठण्डी आहे विकलांग, निरीहता
सर्दी बरसात आँधी !
66. जिजीविषा 'आज की ज़िन्दगी', पृ.30
सामने बस स्वार्थ का जंगल घना
दुर्ग जिसमें डाकुओं का है बना ।
मौत की शहनाइयाँ बजती जहाँ
रंग-बिरंगी अर्थियाँ सजती जहाँ ।
67. संतरण 'टूटना मत', पृ.15
68. संतरण, 'टूटना मत', पृ.15
69. आर्थिक विचारों का इतिहास, पृ.217
70. टूटती श्रंखलाएँ, महेन्द्र भटनागार, पृ.11
71. 'सर्वत्र धन को पद का साम्राज्य है'
72. भारतीय अर्थ व्यवस्था नई शताब्दी में, ओ. पी. शर्मा
73. आहत युग रक्षा, महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-3, पृ.327
74. 'कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार', डॉ. विनय मोहन शर्मा सुधारानी आमुख से
75. वहीं
76. आलोचाना अप्रैल 1957 आ. नंददुलारे वाजपेयी, पृ.6 अंक-2
77. 'भारत की भयावह आर्थिक स्थिति', कारण और निदान, चरण सिंह, पृ.127
78. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.310-11
79. वहीं, पृ.311

80. ‘भारत का मुक्ति संग्राम भाग-1’, एस.एल.नागोरी, जीतेश नागोरी, पृ.4
81. वहीं, पृ.5 डॉ. ईश्वर प्रसाद
82. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.108
83. वही, ‘मनुज-जीवन’, पृ.124
84. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-3, ‘आहतयुग’, ‘अंत’, पृ.327
85. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.124 ‘मनुज-जीवन’
86. ‘तमाचा’, वहीं, पृ.88
87. डॉ. महेन्द्र भटनागर का कवि - व्यक्तित्व
88. ‘विचित्र’ समग्र खण्ड-1
89. वहीं
90. वहीं
91. वहीं
92. ‘डॉ. महेन्द्र भटनागर का कवि व्यक्तित्व’, सं. डॉ. रविरंजन, पृ.41
93. महेन्द्र भटनागर खण्ड-1, ग्रीष्म, पृ.73
94. वहीं, ‘साम्प्रदायिक दंग’, पृ.233
95. वहीं, ‘आहत युग’, पृ.238
96. ‘छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड’, डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय, पृ.76
97. ‘महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1’, पृ.97
98. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड, पृ.69
99. वहीं, पृ.70
100. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, ‘धोखा हुआ’, पृ.125
101. वहीं, ‘परिणाम’, पृ.150
102. वहीं, ‘वेदना’, पृ.156
103. ‘तुफान’, ‘बदलता रूप’, पृ.256
104. ‘सम्भव’, समग्र खण्ड-1, पृ.220
105. ‘हरिजन’, वहीं, पृ.231
106. ‘डॉ. महेन्द्र भटनागर का कवि व्यक्तित्व’, सं. डॉ. रविरंजन कवि महेन्द्र भटनागर के गीतों में सामाजिक चेतना, डॉ. आदित्य प्रचण्डिया, पृ.94

अष्टम अध्याय

सामाजिक अंध-विश्वास और रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध

- सामाजिक अंध-विश्वास
- सामाजिकता चेतना
- जातिगत-वर्ण व्यवस्था का विरोध
    - वर्ण-व्यवस्था का प्रारंभ
    - जाति के आधार पर कार्य-विभाजन
- जातिगत रूढ़ि का प्रारंभ
- वर्ण-व्यवस्था का विघटन
- नारी का शोषण
- क्रांति का उद्‌घोष

अष्टम अध्याय

सामाजिक अंध-विश्वास और रूढ़िगत मान्यताओं का विरोध

"कवि समाज का संवेदनशील और जागरूक अंग है । सामाजिक परिवर्तन के काल में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है । संसार का इतिहास साक्षी है कि अनेक महान परिवर्तन साहित्यकारों की प्रेरणा से हुए हैं । सच्चा साहित्य अपने काल का ही दृष्टा और चितेरा नहीं होता वह भविष्य की कल्पना को साहित्य में साकार करता है । इसलिए साहित्यकार रूढ़ियों को तोड़ता है । कवि को निरंकुश इसी आधार पर कहना सार्थक है । लेकिन सामाजिक या मानवीय मर्यादा का तिरस्कार उग्र वांछनीय नहीं जान पड़ता । इतिहास के विविध कालों में कलाकार की यह जागरूकता सर्वथा समान नहीं रहती । हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल का कवि काफी हद तक रूढ़िप्रिय रहा है । सन् 57 के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन के पश्चात् साहित्यिकों ने अपने दायित्व को भली प्रकार समझकर निभाया है । राष्ट्र के पुनरुत्थान की चेतना जगाने में भारतेन्दु, गुप्त और प्रसाद जैसे साहित्यकारों की भूमिका सर्वविदित है । धार्मिक क्षेत्र में हिंसा आदि की रुढ़ि हो, समाज में नारी को हीन मानने की रुढि हो, या प्रणय को अपराध मानने या जाति के आधार पर ऊँच-नीच की रुढियाँ हो, इन क्रांतदर्शी साहिति्य कों द्वारा सभी तिरस्कृत हुई हैं ।"[1]

हिन्दी कविता में प्रगतिशील आन्दोलन का प्रारंभ किस वर्ष से माना जाय इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है । "डॉ. नामवर सिंह और ललित मोहन अवस्थी उसका आरंभ 1930 से मानते है ।"[2] डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला के शब्दों में कहें तो "हिन्दी का प्रगतिशील काव्य एक रुढ़िबद्ध संकीर्णता के दौर से भी गुज़रा है ।"[3]

कवि महेन्द्र भटनागर प्रगतिवाद के द्वितीय उत्थान के केन्द्रीय कवि हैं। कवि ने प्रगतिवादी कविता को 'नारा' बनने से बचाया है । सामाजिक परिस्थितियाँ समाज के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करती हैं। "आर्थिक तथा राजनैतिक रंगमंच पर होने वाले परिवर्तनों ने भारत की सामाजिक स्थिति को प्रभावित किया है । ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय समाज में अनेक वर्गों का आविर्भाव हुआ । जातिगत, वर्णगत, धर्मगत और अर्थगत वर्ग प्रमुख रहे

हैं। लेकिन बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही विदेशी सत्ता से संघर्षरत भारतीय समाज अपने अन्य भेदभाव भूलकर केवल तीन वर्गों में बँटा था । ये वर्ग थे - निम्नवर्ग, मध्यवर्ग और उच्चवर्ग । ये हर जाति, हर धर्म और हर वर्ण में उस काल में अपनी अस्मिता बनाए हुए थे ।"[4]

"डॉ. महेन्द्र भटनागर ने हिन्दी कविता में पदार्पण किया उस समय समाज में यह दूषण मौजूद था । समाज में कई अंध-विश्वास व्याप्त थे । ब्रिटिश शासनकाल में जिसमें अंशतः सुधार भी हुआ । उच्चवर्ग हमेशा समाज में शोषण करने में आगे ही रहा है । चाहे वह प्राचीन काल हो या आधुनिक काल, ब्रिटिश शासन के दौरान उच्चवर्ग के लिए देश और समाज व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि के साधन मात्र थे । मध्यवर्ग की स्थिति हमेशा ढुलमुल रही है ।"[5] समाज में व्याप्त रूढ़ियों को आधुनिक काल के कवियों ने दूर करने का यथासम्भव प्रयत्न किया है ।

महेन्द्र जी की रचनाओं के माध्यम से प्रमाणित होता है कि प्रगतिवाद स्वस्थ परंपरा का विरोधी नहीं है । अलबत्ता परंपरा के नाम पर कूड़े-करकट का समर्थन भी नहीं करता ।[6]

कवि महेन्द्र का काव्य प्रगतिशील काव्य के संकीर्णता के घेरे से बाहर रहा है । कवि ने स्वयं इस बात का स्वीकार 'नई चेतना' के प्राक्कथन में किया है - "मेरा संबंध प्रगतिशील कविता से जोड़ा जाता है और प्रगतिशील कविता को काफी लोग भ्रमवश अथवा जानबूझकर 'साम्यवादी' कविता मानकर चलते हैं । स्पष्ट है, मेरी कविताएँ मात्र 'साम्यवाद' की श्रेणी में नहीं आती, इससे उस वर्ग की मात्र सहानुभूति ही मुझे मिलती है और साम्यवादी वर्ग के विरोधी साहित्यकारों की उपेक्षा ।"[7]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में समाज के प्रत्येक वर्ग का चित्रण किया गया है । जिसे हम 'उच्चवर्ग', 'मध्यवर्ग' और 'निम्नवर्ग' में विभाजित कर सकते हैं । समाज के इन तीनों वर्गों में अंधविश्वास और सामाजिक रूढ़ियाँ व्याप्त हैं; जिसे कवि महेन्द्र ने अपनी कविता के माध्यम से समाज के प्रबुद्ध लोगों के समक्ष लाने का और समाज को उचित राह दिखाने का महनीय कार्य किया है ।

सामाजिक अंध-विश्वास :

काल की अजस्र धारा जीवन और जगत को बदलती हुई प्रवाहित होती है । विभिन्न विधानों और व्यवस्थाओं के बावजूद समाज भी परिवर्तित होता है । काल की गति के अनुसार संस्कृति के मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहता है । अनेक मूल्य युगीन संदर्भ में अपनी सार्थकता खो बैठते हैं, कुछ किंचित परिवर्तित एवं संशोधित रूप में मान्य हो जाते हैं । जिन मूल्यों से समाज या व्यक्ति को कोई लाभ न होता हो; फिर भी समाज उनका अनुकरण अपना सर्वस्व न्योछावर करके करता रहे वही अंधविश्वास है । सामाजिक अंध-विश्वास वे हैं; जिनका अनुसरण समाज करता रहे पर लाभ न होकर उनसे नुक़सान हो ।

भारतीय समाज में संस्कृति, राजनीति, कला, धर्म, जाति आदि में ऐसे अंध-विश्वास, संक्रमित हो गये हैं; जिनसे समाज का एक हिस्सा पतन की ओर उन्मुख होता जा रहा है ।

"नयी कविता में बौद्धिकता तथा वैज्ञानिक दृष्टि"[8] का उन्मेष देखने को मिलता है । "नयी कविता का कवि गलदश्रु भावुकता व अंध-विश्वास का तिरस्कार कर चीजों व स्थितियों की बुद्धिसंगत व्याख्या करना चाहता है । कहना होगा कि यह बौद्धिकता उसके आधुनिक भावबोध का ही अंग है । डॉ. जगदीश गुप्त का कथन इस विषय में दृष्टव्य है

"नयी कविता बौद्धिकता की छाया में विकस रही है । अतः उसमें एक अन्तर्निहित आलोचनात्मक यथार्थ चित्रण का आग्रह, सूक्ष्म व्यंग्य तथा शैलीगत वैचित्र्य एवं नये-नये अर्थों को ध्वनित करनेवाला अभिनव प्रतीक विधान आदि जिन्हें नयी कविता की प्रमुख विशेषताएँ कहा जा सकता है, सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट झलकता है ।"[9]

डॉ. लक्ष्मणदत्त गौतम के शब्दों में कहें तो - "व्यक्तिबद्ध अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और बौद्धिक गद्यात्मकता जो 'नयी कविता' की स्वीकृत उपलब्धियाँ बन चुकी हैं - की अनुपस्थिति के कारण ही महेन्द्र भटनागर की 'कविश्री' में अधिक आकर्षण है । किन्तु इसके बावजूद वे कविताएँ 'नयी' हैं और नयी कविता के उदाहरणों के रूप में इन्हें निःसंकोच उदाहरित किया जा सकता है,

भविष्य के प्रति आस्था की अन्तर्दीप्ति जगाता हो और फिर भी नया" कवि के रुप में खरा उतरता है ।[10]

सामाजिक अंधविश्वास का दौर मध्यकाल और उससे भी पहले से समाज में व्याप्त था । भक्तिकाल के कवि और समाज-सुधारक महात्मा कबीर ने समाज के अंधविश्वासों और रुढ़िगत मान्यताओं का खंडन किया । उन्होंने समाज के प्रत्येक वर्ग के चाहे वह हिन्दू हो या मुस्लिम, ब्राह्मण हो या शुद्र सबके अंधविश्वासों का खंडन किया है, फिर चाहे वह धार्मिक हो, या सामाजिक - किसी भी पहलू को नहीं छोडा है । मुस्लिम धर्म में मौलवी धार्मिक प्रतिनिधि होता है । कबीर ने मौलवी की धार्मिक अंधश्रद्धा पर भी व्यंग्य किया है । यथा :

"कंकर पत्थर जोड़िके मस्जिद लियो बनाय

ता पर चढ़ि मुल्ला बाँग दे क्या बहरा भया खुदाय ।"[11]

तो साथ ही

"दिन में रोज़ा रखत रत को हनन गाय

खाला, केरी, बेटी ब्याहे घर में करे सगाई ।"[12]

बाह्मण की धार्मिक अंधश्रद्धा को भी कबीर ने लताड़ा है :

"मूँड मुँडाए हरि मिले तो सब कोई लियो मुँडाय

बार बार ते मूँडते भेड़ न वैकुठ जाय ।"[13]

क्योंकि महात्मा कबीर ने किसी रुढ़ि या अंधश्रद्धा से धर्म का अनुसरण नहीं किया था, बल्कि वास्तविक स्थिति को परखकर अपने पथ को चुना था । तभी कबीर कहते हैं :

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोई

ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होई ।"[14]

सामाजिक कुरीतियों को कबीर ने देखा । जो समाज इन कुरीतियों से ग्रस्त था; उसे उसमें से बाहर लाने का कार्य किया । यह परंपरा मध्यकाल (भक्तिकाल) से शुरू हुई । आधुनिक काल तक आते-आते इसमें विस्तार होता गया ।

आधुनिक काल में जब अंग्रेज़ों का भारत में शासन था प्रजा दुखी और पीड़ित थी । अंग्रेजों ने उसके आर्थिक आधार को नष्ट कर दिया था । अतः पीड़ित प्रजा के दिमाग में अंधश्रद्धा पनपती गई । जातिगत मान्यताएँ भक्तिकाल में थी - ऊँचनीच, छूआछूत, ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुस्लिमी उन्हें ही अंग्रेजों ने भी प्रोत्साहित किया । फलतः भारत की प्रजा जातिगत और सामाजिक रीतियों से एकदूसरे से अलग होती गयी ।

आधुनिक काल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सामाजिक अंधविश्वास और रूढ़िगत मान्यताओंकी ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया । प्रजा को उपदेशात्मक दृष्टिकोण से कविता, नाटक, लेख आदि लिखे । 'अज्ञान' और 'विज्ञान' का संघर्ष तो मानवता के आदिकाल से ही चलता चला आ रहा है । धर्म अज्ञान की छाया में ही फला और फूला है । वह तर्क, विज्ञान और बुद्धिवाद का नहीं, श्रद्धा और विश्वास का पक्षपाती है ।[15]

क्योरबाख्र ने धर्म की व्याख्या करते हुए अपने ग्रंथ 'इसाइयत' में लिखा है - "धर्म का आदि मध्य और अन्त मानव है ।"[16] यह मानव जब अज्ञान को ही धर्म बनादे तो यहाँ से अंधश्रद्धा शुरु हो जाती है । आधुनिक काल में - "आर्थिक तथा राजनीतिक रंगमंच पर होनेवाले परिवर्तनों ने भारत की सामाजिक स्थिति को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है । ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय समाज में अनेक वर्गों का आविर्भाव हुआ । जातिगत, वर्णगत, धर्मगत और अर्थगत वर्ग प्रमुख रहे हैं ।"[17]

छायावादोत्तर काल में सामाजिक वर्गों में वैचारिक परिवर्तन आया । "इन मानदण्डों के निर्धारण में हमारी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियाँ क्रियाशील थीं ही, साथ ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उदय होनेवाली वैज्ञानिक विचारधाराओं ने भी इसके परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । गांधीवादी विचारधारा ने जहाँ कवियों को सत्य और अहिंसा की राह पर चलने की प्रेरणा प्रदान की, वहीं मार्क्सवादी-समाजवादी वैज्ञानिक चेतनाओं ने उसे व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता महसूस करायी, साथ ही नये समाजवादी समाज के निर्माण की प्रेरणा प्रदान की ।"[18]

सामाजिकता चेतना :

आज के कवि के लिए वैयक्तिक चेतना ही सर्वोपरि नहीं है, वह अपनी व्यक्ति-चेतना को समष्टि चेतना के साथ मिलाने की आकांक्षा रखता है। सच्चे कलाकार के लिए, युग-संदर्भों से जुड़े सजग कलाकार के लिए यह आवश्यक भी है, क्योंकि "कला की सच्ची प्रगतिशीलता कलाकार के व्यक्तित्व की सामाजिकता में है, व्यक्तित्वहीनता में नहीं।"[19] हरिनारायण व्यास के अनुसार "वह (कवि) अपनी वैयक्तिकता को इतना विशाल बनाये कि समाज की सारी-की-सारी आवश्यकताएँ उसमें आ समायें और उसकी वाणी समाज के उस वर्ग की गीतिका बन सके जो सच्चा समाज है।"[20]

कवि महेन्द्र भटनागर सामाजिक चेतना के कवि हैं। कवि ने सामाजिक चेतना को काव्य का मानदण्ड मानकर कविता की है। यद्यपि उसके मन में संशय है, कुंठा है, दर्द है, पराजय एवं निराशा है, फिर भी आशा एवं आस्था की लौ बुझी नहीं है। वह अपने लक्ष्य के प्रति आस्थावान हैं। अपने जीवन तथा समाज के वर्तमान एवं भविष्य के प्रति भी आस्थावान हैं -

"हिम्मत न हारो !
कंटकों के बीच मन-पाटल खिलेगा एक दिन,
हिम्मत न हारो !
यदि आँधियाँ आएँ तुम्हारे पास
उनसे खेल लो।
निरन्तर राह पर चलते रहोगे तो
तुम्हारा लक्ष्य तुमसे आ मिलेगा एक दिन,
हिम्मत न हारो !"[21]

'दूसरा सप्तक' के कवि नरेशकुमार महेता की कविता 'समय देवता' तथा कीर्ति चौधरी की कविता में अपने व्यक्तित्व के प्रति अटूट निष्ठा का भाव देखने को मिलता है :

"सुबह-शाम

क्या जाने, कब पूरा होगा !

पर होगा तो मुझसे होगा,

इस आशा में

दायित्व सँभाले बैठा हूँ ।"[22]

वस्तुतः अपने व्यक्तित्व या अपनी ज़िन्दगी के प्रति आस्थावान वही हो सकता है जिसमें भविष्य के प्रति आस्था हो । भविष्य के प्रति आस्थावान व्यक्ति अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख पाने में सफल होता है । यदि सुन्दर भविष्य की कल्पना ही मनुष्य के भीतर न जगे तो शायद जीवन जीना दूभर हो जाये । यही कारण है कि जहाँ कवि वर्तमान के प्रति आस्थावान है वहीं भविष्य के प्रति भी । उसे पूर्ण विश्वास है कि -

"तुम न मानो शब्द कोई है न नामुमकिन

कल उगेंगे चाँद तारे, कल उगेगा दिन

कल फसल देंगे समय को, यही 'बंजर खेत' ।"[23]

यही विश्वास और श्रद्धा महेन्द्र भटनागर की 'नयी दिशा' शीर्षक कविता में है -

सुख की साँस !

जिसमें आश नूतन ज़िन्दगी की ही भरी होगी,

कि जिसकी राह पर चलकर

धरा सूखी हरी होगी ।

कवि महेन्द्र भटनागर मानव की जय-यात्रा में विश्वास करनेवाले कवि है । अँधेरे से घबराए बिना, अभावों से जूझते हुए कवि विजय श्री प्राप्त करना चाहता है । नयी सुबह में साँस लेना चाहता है ।[24]

कितना भी प्रतिकूल समय क्यों न हो कवि कहता है

"तुम प्रतिपल मिट-मिट कर जलते रहना ।"[25]

उसका प्रण है -

“तोड़ बंधन, आज जग को

मुक्ति के पथ पर चला दूँ,

हर सड़े, विश्वास मिथ्या

खोदकर जड़ से बहा दूँ

है यही कर्तव्य मेरा,

इसलिए ही मुक्त वाणी ।”[26]

समाज में प्रत्येक व्यक्ति कर्मशील होगा, तभी समाज-व्यवस्था व्यवस्थित रहेगी । समस्या का निदान कर्म से ही सम्भव है । कवि सामाजिक जीवन-दृष्टि का परिचय देता हुआ कहता है -

जीवन जब है एक समस्या

कर्मों का ही नाम तपस्या

प्राणों के अंतिम पल तक

जग में जमकर संघर्ष करो,

बहता जाये जीवन-निर्झर ।

कवि महेन्द्र भटनागर धार्मिक अंधश्रद्धा में नहीं; कर्म में विश्वास रखते हैं। वह पत्थर के मृत-पुतलों को तन, मन, धन, जीवन अर्पित करने के विरुद्ध है :

इतना भी रे क्या पागलपन,

इतनी भी क्या यह मौन लगन,

अर्पित करते मृत-पुतलों को

तन-मन-धन, जीवन-सुख, वैभव

दुनिया के किस आकर्षण पर ।[27]

क्योंकि -

हम नव-जीवन-पथ के राही !

नयी व्यवस्था के संचालक, उन्मुक्त नये युग के मानव,

बहता निर्मल रक्त नसों में, हममें नव-गति, साहस अभिनव,

हम निर्भय, मानव-उद्‌बोधक, राग सुनाते है युग-भैरव,

करते ध्वस्त पुरातन जर्जर जग में लाकर दुर्दम विप्लव ।[28]

महेन्द्र भटनागर की कविता में निर्भयता और कबीर का सामस्तमौलापन दिखता है । वह अपनी कविता की सार्थकता परिवर्तन में मानते हैं ।

"तोड़ बंधन, आज जग को मुक्ति के पथ पर चला दूँ !

हर सड़े विश्वास मिथ्या खोद कर जड़ से बहा दूँ ।

है यही कर्तव्य मेरा ।"

क्योंकि :

"हूँ नये युग का मनुज मैं, बद्ध हो पाया न जीवन,

मार्ग में रुकना कहाँ जब पा रहा युग का निमंत्रण

यदि बदल पाया ज़माना, तभी सार्थक जवानी ।"[29]

कवि महेन्द्र भटनागर नये विचारों के प्रभाव से सामाजिक अंधविश्वास और जड़ता का विरोध करते हैं ।

'बदलता युग' की अनेक कविताओं में अन्ध-विश्वास से उत्पन्न स्थिति का अंकन हुआ है । 'तूफ़ान' शीर्षक कविता में अंधविश्वास से समाज की क्या स्थिति होती है, उसका वर्णन किया गया है :

मिटा समुदाय सारा खा गया है ज़ंग

दीमक और फोड़ों से हुआ जर्जर हुआ जर्जर ।[30]

यहाँ कवि 'दीमक' और 'फोडे' के प्रतीक से सामाजिक अंधविश्वास और उसकी रुढ़िगत जड़ता की ओर निर्देश करते हैं । कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में 'विषाद और आस्था'[31] के स्वर सुनाई देते हैं । कवि महेन्द्र का

काव्य मुख्यतः यद्यपि आस्था का काव्य है, फिर भी जीवन के उतार-चढावों से वे प्रभावित तो हुए हैं । दुःख ने, विषाद ने, बिछोह और अभाव ने उनका भी दिल दुखाया है ।"[32]

डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में - "महेन्द्र भटनागर की रचनाओं में तरुण और उत्साही युवकों का आशावाद है ।"[33] यही आशावाद और आस्था कवि में अंधश्रद्धा और रुढ़ियों से संघर्ष की भावना जगाती है ।

सामाजिक परिस्थितियाँ एवं उनसे उत्पन्न चेतना :

ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय समाज जातिगत, वर्णगत, धर्मगत और अर्थगत वर्गों में विभाजित था । लेकिन बीसवीं सदी के प्रारंभ से ही विदेशी सत्ता से संघर्षरत भारतीय समाज निम्नवर्ग, मध्यवर्ग और उच्चवर्ग में बँटा । उक्त तीनों वर्गों में व्याप्त सामाजिक अंधविश्वास और रुढ़ियों को महेन्द्र भटनागर ने किस प्रकार देखा है; दृष्टव्य है ।

निम्नवर्ग :

किसान, श्रमिक, मजदूर, हरिजन आदि आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक पीड़ित रहे हैं । ब्रिटिश हुकुमत के दौरान सरकार की आर्थिक नीति ने जो मोड़ लिया उससे कृषक-वर्ग का अपनी ही भूमि पर से स्वामित्व समाप्त होता गया और ज़मींदार, महाजन तथा पूँजीपति उस पर हावी होते चले गये ।

कृषक अपने जीवन-यापन एवं कृषि-कार्य हेतु ऋण लेने के हेतु बाध्य हुए । लेकिन ऋण चुकाने का उनके पास कोई ज़रिया नहीं था । "ऋण चुकाने की असमर्थता के परिणाम स्वरुप किसान खेतिहार मज़दूर बना, शहरों को चला और अंततः मशीनी दुनिया की विभिषिका में ग्रसित होकर घुल गया ।"[34] किसानों की इस स्थिति का वर्णन तत्कालीन साहित्य[35] विशेषकर प्रगतिवादी काव्य में देखा जा सकता है ।

कवि दिनकर दिल्ली को सामंतवादी ऐश्वर्य के प्रतीक के रूप में देखते हैं :

"आहें उठीं दीन कृषकों की,
मज़दूरों की तड़प पुकारें

अरी ! गरीबों की लोहू पर -

खड़ी हुई तेरी दीवारें ।”[36]

प्रगतिवादी कवियों ने निम्नवर्ग व शोषितवर्ग का पक्ष लिया है । महेन्द्र भटनागर ने भी अपनी कविता में समाज का यथार्थ चित्रण किया है । शोषितों के प्रति सहानुभूति एवं जागृति का संदेश दिया है । भारतीय कृषक-जीवन की विडम्बनापूर्ण स्थिति को प्रकट करते हुए रामधारीसिंह ‘दिनकर’ ने लिखा है :

“जेठ हो कि हो पूस, हमारे,

कृषकों को आराम नहीं है,

छुटे बैल के संग, कभी

जीवन में ऐसा काम नहीं है ।”[37]

किसान की दयनीय स्थिति का वर्णन कवि महेन्द्र भटनागर इस तरह करते हैं :

“बढ़ता जा रहा है ब्याज,

दस से सौ रकम हा,

हो गयी है आज !”[38]

किसान की संतानों को दूध व अन्न के कतरे-कतरे के लिए मुहताज़ होना पड़ता है । किसान की बिटिया कहती है -

“अरे हा !

माँ लगी है भूख

क्या होगा बचा कुछ दूध ?”[39]

कवि जब अपने कृषक देशवासियों की स्थिति को इतने दयनीय एवं गिरे रुप में देखता है तो उसके धैर्य की सीमा-रेखा टूट जाती है तथा वह क्षुब्ध होकर कह उठता है :

श्वानों को मिलते दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,

माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं ।

युवती के लज्जा-वसन बेच, जब ब्याज चुकाए जाते हैं ।

मालिक जब तेल-फुलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहाते हैं ।

पापी महलों का अहंकार, देता मुझको तब आमंत्रण ।[40]

कवि महेन्द्र भटनागर का किसान परिस्थिति के आगे नतमस्तक होना नहीं जानता । उसे अपने कर्म पर, श्रम पर भरोसा है । कवि कहता है :

"महेनतकश उठो !

बलवान हो तुम

हल चलाकर ही

उगा सकते अभी सोना,

मिटा दो आततायी का

सभी मिथ्या भरा टोना,

अटल विश्वास जीवन में

तुम्हारा हो सदा संबल,

उठाओ हल, चलाओ हल !"[41]

कवि महेन्द्र भटनागर समग्र कृषक समाज को सावधान करता हुआ कहता है कि सुनो, सुनो ! चोर डाकुओं से सावधान हो जाओ, जो देश के हरे भरे 'चमन' को मसान[42] बना रहे हैं । दोनों कतारों की स्त्रियाँ प्रश्न पूछती कहती हैं - कौन है वह ?

अदृश्य पुरुष - तमाम जमींनदारों और महाजनों की ओर इशारा करता है और साथ ही यह चेतावनी देता है कि वे नष्ट होकर रहेंगे । सन् 1917 की रूसी क्रांति के बाद किसान-वर्ग में नयी चेतना जागी तथा उसने अपने हितों की रक्षा हेतु संगठित होकर आंदोलनों को जन्म दिया ।[47] इसी आंदोलन का प्रभाव कवि महेन्द्र भटनागर की 'खेतो में' शीर्षक कविता में देखने को मिलता है । यथा :

किसान -

पहला - पर, हमें है भय नहीं इसका,

संगठित हैं हम !

दूसरा - ज़माने को बदलने के लिए

तीसरा - पीड़न और अत्याचार का साम्राज्य धरती पर सुलाने के लिए !

समवेत - संगठित हैं हम !

संगठित हैं हम ![43]

और यही संगठित किसान 'अभियान' कविता में कहता है :

दुख, दैन्य, निराशा, जड़ता तम

जीवन का सब आज हरो !

अभियान करो[44]

'अभियान' के कवि महेन्द्र भटनागर को विश्वास है कि जनशक्ति की दीवार कभी 'गिर नहीं सकती'[45] । कवि की जनवादी आस्था विषम परिस्थितियों में भी उसे निराश नहीं होने देती । इसी आस्था से कवि कहता है :

सदियों के बंधन मिटाते चलो तुम,

तम के ये परदे हटाते चलो तुम,

अवरुद्ध राहों के पत्थर सभी ये

निर्झर सदृश सब उडाते चलो तुम !

प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर ने केवल सामाजिक अंधविश्वासों का ही खंडन नहीं किया बल्कि भारतीय समाज और संस्कृति की रूढ़ एवं पुरातन नैतिकताओं एवं मान्यताओं की भी घोर आलोचना की है तथा एक ऐसे समाज के सृजन की आकांक्षा व्यक्त की है, ऐसे नये विश्व-मानव की संस्कृति के प्रति अपनी लालसा प्रकट की है, जिसमें मानवता पुरातन रूढ़ियों एवं परंपराओं से आबद्ध न हो और वर्ग-विषमता के चलते समाज विभिन्न श्रेणियों में विभक्त न हो, साथ ही जनता किसी भी रूप से शोषण का शिकार न हो। 'जिजीविषा' का कवि कहता है - मेरी लेखनी, तुम मनुष्य की सूखी शिराओं

में नये रक्त का संचार करने के लिए, जन-जन के कण्ठ में नया राग भरने के लिये तथा नये समाज के निर्माण के लिए समय-पट पर चलो तथा नवीन समाज के सृजन में सहायक बनो ।

जातिगत-वर्ण व्यवस्था का विरोध :

वर्ण-व्यवस्था का प्रारंभ :

प्राचीन भारतीय आर्यों ने किस प्रकार से समाज को चार वर्णों में विभाजित करके वर्ण-व्यवस्था की नींव डाली, इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता । प्रायः यह माना जाता है कि इस व्यवस्था का मूल उद्देश्य समाज का संचालन सूचारु हो यह रहा होगा । भारत के प्राचीनत ग्रंथ ऋग्वेद के प्रथम नौ खंडों से यह ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण आर्यों का एक ही वर्ग था क्योंकि किसी अन्य वर्ग का कोई उल्लेख नहीं मिलता । 'नवें मण्डल में एक ऋषि ने अपने पिता को वैद्य, माँ को पिसनहारी तथा स्वयं को कवि कहा है ।'[46] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में व्यवस्था-चयन की पूर्ण स्वतंत्रता थी और कोई कार्य हेय नहीं माना जाता था । ऋग्वेद के दसवें मण्डल में 'विराट पुरुष' द्वारा चातुर्वर्ण की उत्पत्ति का उल्लेख है - 'ब्राह्मण उसके मुख से, राज्य उसके बाहु से, वैश्य उसकी जानु (जंघा) से और शूद्र उसके पैरों से उत्पन्न हुआ ।'[47] शायद यही तत्कालीन समाज की स्थिति का रूपकमय चित्रण है ।

जाति के आधार पर कार्य-विभाजन :

ब्राह्मण : ब्राह्मण-वर्ग का पठन-पाठन एवं यज्ञ सम्पन्न करवाना था ।

क्षत्रिय : क्षत्रियों का कार्य देश की रक्षा करना था ।

वैश्य : वैश्य खेती और उद्योग करते थे ।

शूद्र : (जो सम्भवतः आर्येत्तर जातियों के सदस्य थे जिन्हें आर्यों ने दास बना लिया था) द्विज वर्णों की सेवा करते थे ।

जातिगत रूढ़ि का प्रारंभ :

यह श्रम-विभाजन कालान्तर में रूढ़ हो गया और समाज में इसी आधार पर ऊँच-नीच की भावना पनपी । परवर्ती समाज ने इस वर्ण-व्यवस्था में देश,

काल और परिस्थिति के अनुरूप उपबन्धों का समावेश किया गया है और इस प्रकार इस व्यवस्था को व्यावहारिक बनाए रखा गया है ।

गौतम और आपस्तम्ब के सूत्रों के पश्चात् 'महाभारत में शूद्रों को उच्च स्थान दिया गया था । शूद्र के ब्राह्मणत्व तक उठ पाने को भी संभाव्य माना गया है, किन्तु फिर भी चारों वर्णों को नैसर्गिक माना गया है और अपने-अपने कर्तव्य-कर्म पर दृढ़ रहने का प्रतिपादन किया गया था ।'[48]

स्मृतिकारों ने भी वर्ण-व्यवस्था को वांछनीय माना है । गुप्तकाल के प्रख्यात नीतिकार और चिन्तक कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजा पर यह दायित्व डाला है कि वह कभी वर्ण-संकरता न होने दे और यह भी कहा है कि अपने-अपने धर्म का पालन स्वर्ग और मोक्ष का हेतु होता है जबकी वर्ण-संकरता संसार में उथल-पुथल ला देती है ।[49] यहाँ इस तथ्य की ओर पुनः संकेत करना होगा कि तब तक भी व्यावहारिक रुप से विभिन्न वर्गों में खानपान और वैवाहिक संबंधों के अनेक उदाहरण मिलते हैं, किन्तु फिर भी इस काल के पश्चात् धीरे धीरे वर्णव्यवस्था ने एक ऐसी रुढ़ि का रुप लिया जो शताब्दियों तक भारतीय समाज में मान्य रही ।

वर्ण-व्यवस्था का विघटन :

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में सांस्कृतिक पुनर्जागरण के अग्रदूतों ने वर्ण-व्यवस्था की रुढ़ि पर प्रहार किया । स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अनेक प्रमाण देकर यह प्रतिपादित किया कि इस व्यवस्था को जन्मता न मानकर कर्मणा मानना चाहिए और कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था से ही उन्होंने समाज की उन्नति संभव बताई है ।[50] महात्मा गाँधी अस्पृश्यता, ऊँच-नीच जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करना चाहते थे किन्तु वर्ण-व्यवस्था के सच्चे स्वरूप को, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी धन्धे पर आधारित है, वांछनीय मानते थे ।[51] इस प्रकार पुनरुत्थान काल के विचारकों ने वर्ण-व्यवस्था की विकृतियाँ दूर करने की चेष्टा की थी । तत्कालीन हिन्दी काव्य में एतद्‌विषयक चित्रण का अभाव है । प्रसंगोपात कवियों ने जाति-प्रथा की कट्टरता पर आघात अवश्य किये हैं ।

हिन्दी के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने वर्णभेद से हिन्दूपन पर घाव होने की आशंका व्यक्त की है ।[52] भारतेन्दु एवं प्रसाद के अनुसार ब्राह्मण

आदरणीय हैं । प्रसाद जी ने अपने एक नाटक में ब्राह्मण को सर्वोच्च मानकर वैश्य को उसके पोषक, शूद्र को सेवक और क्षत्रिय को रक्षक कहा है । प्रकारान्तर से यह वर्ण-व्यवस्था की स्वीकृत ही है किन्तु इसके साथ ही उन्होंने संयम, त्याग, परोपकार आदि उच्च गुणों को ब्राह्मण के लिए आवश्यक बताया है ।[53] इस प्रकार उनकी दृष्टि में भी वास्तव में महत्व जन्म का नहीं कर्म का ही है । जातिगत आधार पर ऊँच-नीच की भावना को वे गर्हित मानते हैं । इस तथ्य की पुष्टि 'अजातशत्रु' नाटक के एक प्रसंग से हो जाती है । प्रसेनजित दासी के गर्भ से उत्पन्न अपने पुत्र को जब युवराज-पद का अधिकारी नहीं मानता तो गौतम उसे समझाते हुए कहते हैं - 'क्या दास-दासी मनुष्य नहीं हैं..... यह छोटे-बड़े का भेद क्या इस संकिर्ण हृदय में इस तरह घुसा है कि निकल नहीं सकता ।'[54]

कहना न होगा कि मानव-समानता का यह सन्देश बुद्ध ने अपने युग को दिया था, परन्तु यह तब भी पूर्णतया सफल नहीं हुआ था । प्रसाद जी ने इसे रचनाकालीन परिवेश में ही प्रस्तुत किया है । ऐतिहासिक आवरण हटाकर प्रेमचन्द ने वर्ण-व्यवस्था की संकीर्णता दिखाने व मानव-समता का बोध कराने के लिए तत्कालीन जन-जीवन के जीवन्त चित्र प्रस्तुत किए हैं । उदाहरणार्थ गोदान में गोबर-झुनिया तथा मातादीन-सिलिया के प्रणय-प्रसंगों को लिया जा सकता है । प्रेमचन्द के मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय उक्त प्रसंगों से स्पष्टतः मिल जाता है । इसी परंपरा में कविवर निराला ने 'सरोज-स्मृति' शीर्षक कविता में जातिप्रथा की बुराइयों का चित्रण करके रूढ़ियों को तोड़ने का साहस दिखाया है ।[55] प्रगतिवादी कवियों ने मानव-समानता का निषेध करनेवाली सभी व्यवस्थाओं का विरोध किया है ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर ने इसी प्रवृत्ति को अपनी कविता के माध्यम से आगे बढ़ाया । सामाजिक अंधविश्वास से पीडित जनता को नये युग में जाग्रत होने का आह्वान करता हुआ कवि 'मैं कहता हूँ', ('जिजीविषा') में कहता है :

मैं शोषित दुनिया के

आज करोड़ों इन्सानों से कहता हूँ

मैं भूखों नंगों पददलितों

बेबस और निरीहों की आहों से कहता हूँ

अब और अँधेरे में

मत खोजो पथ अपना ।"[56]

'संवर्त' काव्य-कृति में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है, "अंधकारमय दुनिया में कवि प्रतिबद्ध है हर व्यक्ति का जीवन समुन्नत करने के लिए । वह संसार में न्याय की व्यवस्था करना चाहता है । इस त्रस्त दुनिया को बदल डालने के लिए वह सन्नद्ध है ।"

"वर्ग के या वर्ण के अन्तर मिटाकर

विश्व-जन-समुदाय को

हम

मुक्त दोहन से कहेंगे ।"[57]

कवि के इन क्रांतिकारी विचारों का कुछ श्रेय उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के साहित्य को भी जाता है । कवि महेन्द्र ने 'प्रेमचंद' शीर्षक कविता में स्पष्ट किया है :

'तुम प्रगति-पथ की

नयी ज्योतित दिशा का

मार्गदर्शन कर रहे हो !

प्राण में बल भर रहे हो !'[58]

आधुनिक युग में महात्मा गांधी से लेकर सभी क्रांतिकारी विचारकों और साहित्यकारों ने जाति-प्रथा का विरोध किया है; मगर यह दूषण समाज में आज भी वैसे-का-वैसा है । इसी वेदना को वाणी प्रदान करता हुआ कवि कहता है -

"मिटी नहीं अभी

मनुष्य की पशुत्व-वृत्ति,

ले रहा अशांत श्वास

जंगली हृदय मलान

रंग-भेद के बुझे हुए चिराग पर !

गये नहीं अभी समाज से विचार -

रक्त-पान के

अपार लूट के, खसोट के

मनुष्य के मनुष्य पर प्रहार मौत के !"[59]

समाज में पनप रही अंधश्रद्धा का यही कारण है । दूसरा कारण महेन्द्र भटनागर देते हुए कहते हैं कि - "असभ्य दासता-प्रथा बनी रहे यह स्वर्ण (उच्च) कहे जाने वाले लोग चाहते हैं । वर्तमान समय में अनेक राजनेता भी अपना वोटबैंक सुदृढ़ बनाने के उद्देश्य से जाति-वाद को बढ़ावा देते हैं । समाज में अंधविश्वास पनप रहा है और अराजकता पढ़ रहा है । जाति-गत मान्यता को बल देशी-रियासतों में भी मिला । कवि महेन्द्र भटनागर 'देशी रजवाड़े' शीर्षक कविता में लिखते हैं :

'पनपा इनकी सीमा में बढ़

हिन्दू, मुस्लिम, हरिजन में घुस

जाति-पाँति का भेदभाव रे

ये प्रतिक्रियावादी दृढ़ गढ़ ।'[60]

भारतीय समाज में व्याप्त अन्य मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में वर्णाश्रम-व्यवस्था को गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' ने एक पौराणिक कथा-आधृत महाकाव्य 'तारकवध' में यों प्रतिपादित किया है -

अपना-अपना कर्म करे, सब धर्म-निरत हो दानी ।

कोई भाग न ले औरों का सभी न्याय के ध्यानी ।[61]

तो महेन्द्र भटनागर कहते है कि - "हर व्यक्ति का जीवन समुन्नत कर धरा को शोषण से मुक्त करेंगे । वर्ग और वर्ण के अन्तर मिटाकर विश्व-जन समुदाय को अत्याचार से मुक्त करेंगे ।[62]

कवि रांगेय राघव ने वर्णभेद के दुष्परिणामों की ओर संकेत करते हुए कहा है -

'वर्ग-भेद है वर्ण-भेद है
ऊँचे बोल कर्म है नीचा
इन टुकड़े-टुकड़े वर्गों ने
मानव के दुःख्र को ही सींचा ।'[63]

प्रगतिवादी कवि पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था की ख़िलाफत करता है, जीर्ण-शीर्ण पुरातन मान्यताओं एवं रूढ़ नैतिकताओं के प्रति विद्रोह की भावना प्रकट करता है ।

पुरातन रूढ़ियों, संस्कारों एवं अप्रासंगिक नैतिकताओं के ध्वंस पर ही आज का कवि नये निर्माण की आकांक्षा करता है तथा उसी पर नये मानव-समाज के भव्य-प्रासाद को खड़ा करना चाहता है -

"खोलो जीर्ण विश्वासों, संस्कारों के शीर्ण वसन
रूढ़ियों, रीतियों, आचारों के अवगुण्ठन,
छिन्न करो पुराचीन संस्कृतियों के जड़ बंधन
जाति, वर्ण, श्रेणि, वर्ग से विमुक्त जन नूतन ।
विश्व-सभ्यता को शिलान्यास करें भव-शोभन,
देश राष्ट्र, मुक्त धरणि पुण्य तीर्थ हो पावन !"[64]

वर्ग-चेतना कवि की समाजार्थिक रचनाओं में व्याप्त है । कवि ने सामाजिक अंधविश्वासों और आज़ादी के पश्चात् आयी वैचारिक क्रांति का चित्रण किया है । उनकी रचनाओं का आधार उनका अपना अनुभव रहा है, उसीसे उन्होंने प्रत्येक रचना को युगधर्मी बनाया है ।

कवि महेन्द्र भटनागर आगे कहते हैं -

'भूलो जग के भेद-भाव सब
वर्ण-जाति के, धन-पद-वय के,

गूँजे दिशि-दिशि में स्वर केवल

मानव महिमा गरिमा जय के ।'[65]

आज का कवि मानव-मानव में किसी भी भेद को स्वीकार नहीं करता। प्रभाकर माचवे के शब्दों में -

"मानव-मानव में विभेद क्यों, स्वर्ग नरक में वर्गान्तर क्यों ?

प्रभु ने क्या जड़ प्रकृति ने क्या भिन्न बनाए अभ्यंतर क्यों ?

'नहीं' मनुज की ही करनी है, मनुज-मनुज को सोख्र रहा है

प्रभु इस शैतानी लीला को, चुपके बैठा जोख्र रहा है ।"[66]

मानव-मानव में भेद करने से समाज मिथ्या विश्वास की ओर आगे बढ़ता है और परिणाम यह होता है कि समाज के विकास की कोई दिशा नहीं मिलती । 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में कवि महेन्द्र भटनागर कहते हैं -

"मिथ्या विश्वासों के शव पर

नव-संस्कृति-ज्वाला रही बिख्रर,

पिछड़ी सोयी मानवता के

नयनों में नव-आलोक प्रख्रर !"

"कर्मकाण्ड पूजापाठ, धार्मिक ग्रंथों के पारायण, मंदिर-तीर्थ आदि में महेन्द्र भटनागर जी की आस्था कभी नहीं रही । इन सबके वे विरोधी और कट्टर आलोचक रहे हैं । पुरोहितवाद से उन्हें सख़्त नफ़रत है ।"[67] इस विचारधारा की पुष्टि कवि की 'हरिजन' शीर्षक कविता से होती है । कवि मंदिरों की वास्तविकता का चित्रण करते हुए कहते हैं :

"मंदिर आज हमारे लिए ख्रुले हैं तो

क्या उनको लेकर चाटें ?

उनसे न मिलेगी

रहने काबिल आज़ादी !

मंदिर तो धनिकों के

ऐयाशी के अड्डे है !"[68]

तो पुरोहितों को कवि समाज के जानी दुश्मन कहता है । इन लोगों ने ही समाज को बरबाद किया है । यथा :

ये पंडित पोथीवाले लाल तिलक वाले

पगड़ीवाले लाला लोग

कि रोज़ लगाते मोहन-भोग

आज हमारे जानी दुश्मन !

इनने ही बरबाद किया है जीवन ![69]

यहाँ पर कवि महेन्द्र ने हरिजन युवक के दादा से जो कि पुरानी पीढ़ी के हैं धर्म की आड़ में हो रहे शोषण का पर्दाफ़ाश करवाया है । 'हरिजन' शीर्षक रचना का विषय, उसके शीर्षक से ही स्पष्ट है । यह काव्य-रचना एक प्रयोग है । सन् 1942 में गीति-नाट्य की शैली पर लिखी गई यह रचना शिल्प की दृष्टि से अपना ऐतिहासिक महत्व रखती है । हरिजनों के प्रति कवि की अगाध सहानुभूति, इस रचना में व्यंजित है ।"[70] साथ ही यह रचना हरिजनों में आये वैचारिक परिवर्तन का मोड़ भी परिलक्षित करती है । कवि महेन्द्र भटनागर ने हरिजनों की छूआ-छूत की समस्या को दूर करने का प्रशंसनीय प्रयास किया है ।

नारी का शोषण :

नारी की स्थिति मध्यकाल से ही दयनीय रही है । प्रगतिवाद के पूर्व समाज सुधारकों ने नारी-समस्या को राष्ट्रीय समस्या के रूप में उठाया तथा उसकी स्थिति को बेहतर बनाने की कोशिश की । 'अखिल भारतीय होमरूल लीग' की संस्थापिका तथा इस आंदोलन की प्रमुख नारी शक्ति एनी बेसेण्ट थीं । अन्यथा भी सदियों से घरों की चहारदीवारी में क़ैद नारी भी अपने कर्तव्यों के प्रति सजग हो रही थी । नयी शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने स्त्री समाज को प्रभावित किया । जिनका परंपरागत शोषण हो रहा था ऐसी समाज सुधारकों ने आंदोलनों के माध्यम से स्त्री समाज को जागृत किया । इसमें समाज सुधारकों के साथ-साथ साहित्यकारों का हाथ है । "नारी सदियों से शोषित, प्रताड़ित एवं उपेक्षित होती रही है । उसको प्राय: दो रूपों में ही देखा

जाता रहा है - पहला भोग्या के रूप में, दूसरा गृहसेविका के रूप में । वस्तुतः वैज्ञानिक चेतना के प्रस्फुटन के पहले तक नारी को मात्र काम-लिप्सा या वासना की पूर्ति के साधन के रूप में ही चित्रित किया जाता था ।"[71] प्रगतिवाद से पहले, मैथिलीशरण गुप्त ने उपेक्षित नारी को उच्च पद प्रदान कर उसे समाज के समक्ष एक नये रूप में प्रस्तुत किया; तो छायावादी कवियों ने उसे वासना की पंकिलता से बाहर निकाल माँ, देवी, सहचरी एवं प्राणप्रिया के रूप में प्रतिष्ठित किया । प्रगतिकाल की कविता में नारी को व्यापकता मिली । व्यापकता के परिणाम स्वरूप एक तरफ बंदिनी नारी की मुक्ति का आह्वान किया तो दूसरी तरफ सदियों से शोषित एवं पीड़ित नारी को उत्थान की प्रेरणा दी । नारी मुक्ति का एलान करते हुए पंत ने कहा है :

"मुक्त करो नारी को मानव !
चिर बन्दिनी नारी को,
युग-युग की बर्बर कारा से,
जननि, सखी, प्यारी को ।"[72]

नारी को योनि-स्तर से उपर उठाते कवि पंत उसे मानवी स्वरुप प्रदान करते हैं :

"नर-नारी का तुच्छ भेद है,
केवल युग्म विभाजन !
उसे मानवी का गौरव दे,
पूर्ण सत्व दो नूतन !"[73]

आधुनिक युग में कवियों ने नारी को सम्मान एवं आदर से देखा है । चाहे वह सुहागिन स्त्री हो या विधवा । नारी का विधवा-स्वरूप निराला की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है, जिसमें कवि उसके प्रति सहानुभूति एवं सम्मान की भावना प्रकट करता है -

"वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी
वह दीपशिखा-सी शांत, भाव में लीन,

वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी

वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन-

दलित भारत की ही विधवा है ।"[74]

वस्तुतः परिस्थिति के परिवर्तन के साथ-साथ नारी के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ । 'नवयुग और नारी' में जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' नारी को संबोधित करते हुए उसे बाह्याडम्बर, जड़ता एवं शोषण से मुक्त होकर क्रांति की ज्वाला बनने को कहते हैं । कवि कहता है कि अब सामाजिक रूढ़ मूल्यों का अस्तित्व धराशायी हो गया है, परिस्थितियाँ परिवर्तित हो चुकी हैं । अतः उसे भी नवीन समाज की रचना के लिए सन्नद्ध हो जाना चाहिए ।[75]

प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर ने भी नारी के परिवर्तित स्वरूप को अपनी कविता के माध्यम से प्रकट करते हुए नारी से कहा है :

"तुम नहीं कोई

पुरुष की ज़र-खरीदी चीज़ हो,

तुम नहीं

आत्म-विहीना सेविका

मस्तिष्क-हीना सेविका,

गुड़िया हृदय-हीना,

नहीं हो तुम

वही युग-युग पुरानी

पैर की जूती किसी की,

कह रहा हूँ मैं -

तुम्हारा प्रभु नहीं हूँ,

हाँ, सखा हूँ ।"[76]

यहाँ कवि ने नारी को अपनी अस्मिता की पहचान कराकर उसे अपने गौरव के लिए, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने के लिए आह्वान किया

है । नारी पर महेन्द्र भटनागर ने कई कविताए लिखी हैं । 'भिखारिन' शीर्षक कविता में कवि महेन्द्र ने अकाल में भूख और पीड़ा से त्रस्त भिखारिन का वर्णन किया है ।

बंगाल के अकाल से ऐसी विपदा देश पर आयी जिसके कारण स्त्री जिसे करुणा की देवी कहा जाता है, संतान तक को बेचने के लिए विवश हुई । यथा :

भूख-भूख की इस ज्वाला में सारा परिवार विलीन हुआ,

घर का धन क्या, शिशुओं तक को बेचा, उर ममताहीन हुआ ।[77]

'तुम्हारी माँग का कुकुम !' शीर्षक कविता में कवि महेन्द्र भटनागर ने नारी की मूकवेदना को चित्रित किया है । कवि कहता है :

"बहुत ही पास से मैंने तुम्हें देखा

न थी मुख पर कहीं उल्लास की रेखा,

न जाने क्यों रही केवल खड़ी तुम पद-जड़ित गुमसुम !"[78]

तो 'नारी' शीर्षक कविता में महेन्द्र भटनागर की नारी समरांगण में कूद पड़ी है । वह बंधनों को तोड़ती हुई आगे बढ रही है । कवि कहता है :

'चिर-वंचित, दीन, दुखी बंदिनि !

तुम कूद पड़ी समरांगण में,

भर कर सौगन्ध जवानी की

उतरीं जग-व्यापी क्रन्दन में,

युग के तम में दृष्टि तुम्हारी

चमकी जलते अंगारों-सी,

काँपा विश्व, जगा नवयुग, हृत -

पीड़ित जन-जन के जीवन में !'[79]

कवि महेन्द्र भटनागर ने 'नारी' शीर्षक कविता में एक ओर सदियों से हो रहे नारी के शोषण का चित्रण किया है; तो साथ ही किस तरह संघर्ष कर वह आगे बढ़ी उस गौरव-गाथा का बखान भी ।

नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण शारीरिक सलूकों वाला नहीं है । उनके प्रेम में गहराई है, क्योंकि प्रणय-बंधन उनके लिए शाश्वत चेतना है । कवि अभिशप्त नारी जीवन को उल्लास से भर देना चाहता है, निर्वासिता को नील-कमलों का नया घर देना चाहता है और सुख-दुख की सहचरी तिरस्कृत नारी को स्नेह -

वंचिता ओ !

उपहसित नारी -

अरे आ

रुक्ष केशों पर

विकम्पित स्नेह-पूरित

उँगलियाँ धर दूँ ।[80]

डॉ. संतोषकुमार तिवारी के शब्दों में कवि की वैयक्तिक प्रेम-भावना समष्टि-मनस् में बाधक नहीं है । "महेन्द्र भटनागर में संयम-संतुलन है । उनका काव्य कुण्ठाओं, विकृतियों और उलझनों का काव्य नहीं है ।"[81] उनमें रूपासक्ति अवश्य है; परन्तु उनमें अतिशय भावातिरेक स्खलन, दौर्बल्य और अभिव्यक्ति का अतिक्रमण नहीं है । कवि महेन्द्र भटनागर ने नारी को परंपरागत-रूढ़िगत होते शोषण से बाहर लाकर प्रेम की देवी के रूप में, करुणा की मूर्ति और साहसी स्त्री के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया है ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि सदियों की पुरानी ढहती मान्यताओं तथा नवीन युग-संदर्भों के बीच कवि महेन्द्र भटनागर ने नवीनता एवं व्यापक दृष्टिकोण से मानव-जीवन एवं समाज-यथार्थता, समस्याओं, विषमताओं, नवीन मूल्यों को वाणी प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । मानव की महत्ता के साथ-साथ सदियों से पीड़ित शोषित नारी के प्रति समाज को नये ढंग से सोचने का दृष्टिकोण प्रदान किया है । शोषितों के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है; जबकि शोषकों के विरुद्ध खुला विद्रोह किया है । धर्म-ईश्वर एवं जाति-प्रथा जैसी भावनाओं के प्रति कवि विद्रोहात्मक हो गया है । वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर कवि ने काव्य में नवीन दृष्टि प्रदान की है । साथ ही

अभिव्यक्ति के परंपरागत उपादानों एवं प्रणालियों को असमर्थ एवं रूढ़ मानते हुए काव्य-भाषा का भी नवीन सर्जन किया है ।

क्रांति का उद्‌घोष :

ब्रिटिश शासन के पूर्व भारत में सामंतीय संस्कृति का बोलबाला था, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों की भाँति सांस्कृतिक क्षेत्र में भी अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित हुए । ब्रिटिश शासन द्वारा औद्योगिक एवं पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना के साथ ही भारत की सामंतीय संस्कृति की जड़ें जर्जर होने लगीं तथा विदेशी शासन की राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक व्यवस्था का प्रभाव भारतीय जन-मानस पर पड़ने लगा और धीरे-धीरे ये प्रभाव एवं परिवर्तन स्पष्ट भी होने लगे ।

सन् 1936 के पश्चात् भारतीय जनता के मानसिक ढाँचे में परिवर्तन हुआ । साहित्यकारों में भी नयी चेतना जागी । फलतः पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति में आकण्ठ डूबे भारतीयों को लक्ष्य बनाकर अनेक व्यंग्य-काव्यों की रचना हुई ।

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा - "मार्क्सवाद वर्गों की भूमिका को भी ऐतिहासिक विकास के संदर्भ में देखता है । एक समय आदिम समाज-व्यवस्था के मुकाबले में सामंती समाज ने मनुष्य के विकास में क्रांतिकारी परिवर्तन किये । मार्क्सवाद इन वर्गों की रची हुई संस्कृति को आँख मूँदकर ठुकराता नहीं है, न हवा में नयी मानव-संस्कृति की रचना करता है । वर्ग-युक्त समाज में वर्ग-आधार पर जितना भी मनुष्य ने ज्ञान अर्जित किया है, मार्क्सवाद उसका मूल्यांकन करके उसे विकसित करता है ।"[82]

कवि महेन्द्र भटनागर के साहित्य में क्रांतिकारी भावना मार्क्सवाद का सीधा प्रभाव नहीं है, बल्कि समय-समय पर बदलते परिवेश का असर है । मार्क्सवाद के संदर्भ में कवि महेन्द्र भटनागर कहते हैं कि - "परिवार की विकट परिस्थितियों के बीच जब मैं ऐसे विचारों के संपर्क में आया तो मुझे उनमें अपने मन की बात मिल गयी ! जो मैं सोचता था, वह लोग पहले ही सोच चुके थे - उन विचारों को ग्रंथ-बद्ध कर चुके थे । एतदर्थ यह वैचारिक

साम्य पाकर मुझे बड़ा संतोष मिला ।"[83] इसी वैचारिक साम्य से कवि मार्क्सवाद के करीब है - ऐसा कह सकते है ।

'अभियान' काव्यसंग्रह कवि महेन्द्र भटनागर की क्रांति-पथ की यात्रा का पहला कदम है । 'कवि महेन्द्र का यह संग्रह इस युग-बोध के दृष्टा के स्वर मुखर करता है ।'[84]

कवि महेन्द्र ने महाकवि तुलसीदास पर दो कविताएँ लिखी हैं । इनमें उस समय के अंधविश्वास और संशयग्रस्त स्थिति की व्यंजना है । प्रथम कविता में कवि ने तुलसी का अभिनन्दन किया है, दूसरी कविता में कवि महेन्द्र कहते हैं कि

'महाकवि तुम, तुम्हारा गीत सच, हम गा नहीं सकते !'

'अँधेरा छा रहा था जब कि तुम आये'[85]

ऐसे समय में कवि तुलसीदास ने समाज को नयी सोच और दृष्टि प्रदान कर अंधकार से बाहर लाने का कार्य किया । ऐसे महान कवि की यशगाथा गाने पर कवि को गर्व है ।

व्यक्तिपरक रचनाओं में तुलसी के बाद प्रेमचंद पर कवि ने कविता की है । कवि प्रेमचंद को क्रांतिकारी साहित्य-सर्जक कहता है । यथा :

"रूढ़ियाँ-बंधन शिथिल तुमने किये
अपनी अरुक, दृढ़ लेखनी के बल !
सभी ये थरथरायीं ।
काल्पनिक, प्राचीन, झूठी, जन-विरोधी
धारणाएँ, मान्यताएँ,
धर्म-ग्रंथों से बँधी
निर्जीव मिथ्या, शून्य की बातें
अनोखी, खोखली
जो हो रही थीं प्रगति-बाधक !"[86]

कवि महेन्द्र भटनागर के क्रांतिकारी विचारों के प्रेरणास्रोत प्रेमचंद जी हैं । कवि ने यह प्रभाव स्पष्ट घोषित किया है :

"तुम प्रगति-पथ की

नयी ज्योतित दिशा का

मार्ग-दर्शन कर रहे हो !

प्राण में बल भर रहे हो !"[87]

कवि महेन्द्र भटनागर विचार क्रांतिकारी हैं । वे रूढ़िगत समाज के ढाँचे को बदलना चाहते हैं । श्री आग्नेय ने 'नया पथ' (लखनऊ) में लिखा, 'महेन्द्र भटनागर उन सचेत कलाकारों में हैं जिनकी रचनाएँ सद्‌वृतियों को जाग्रत करती हैं और सामाजिक आस्था को प्रतिष्ठित करती हैं ।'[88] 'अभियान' का कवि 'संघर्ष' कविता में कहता है :

"क्रांति-पथ पर बढ़ रहा हूँ, द्रोह की ज्वाला जगाने !

आज जीवन के सभी मैं तोड़ दूँगा लोह-बंधन

शोषितों को आज अर्पित प्राण की प्रत्येक धड़कन

स्वत्व के संघर्ष में, मैं पीड़ितों की जीत के हित

अब चला हूँ गीत गाने ।"[89]

कवि महेन्द्र की कविता के प्रेरणास्रोत गांधीजी भी है । गांधीजी पर कवि ने पाँच अलग-अलग कविताएँ लिखी हैं । प्रथम कविता में उन्हें सत्य-अहिंसा की सबल नींव पर मानव-संस्कृति के नव आदर्शों का निर्माता बताया गया है । दूसरी कविता में गांधी को पीड़ित, वंचित, दलितजनों की आशा और त्रस्त दुर्बल विश्व के लिए शक्ति के उपहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है । 'अन्तर-ज्वाला' का कवि कहता है :

अब आनेवाली है आँधी, कट जाएंगे जिससे बंधन,

अगणित शोषक साम्राज्यों के भू-लुंठित होंगे सिंहासन !

कवि महेन्द्र साम्यवादी विचारों के समर्थक कवि हैं । 'अभियान' की

कविताएँ सन् 1942 से 1949 के मध्य लिखी गयीं । परतंत्रता के समय की और स्वतंत्रता के समय की । 'बंधन मुक्त' कविता में कवि कहता है कि यह परतंत्रता और स्वतंत्रता दो युग की संधि का समय है । यह समय धार्मिक, सामाजिक आदि परिवर्तनों का समय है । ऐसे समय में सबको स्वतंत्रता प्राप्त हो । यथा :

"युग के सैनिक हो, क्रांति करो, नव युग की बढ़कर सृष्टि करो !

मानवता के संताप-क्लेश, पीड़ा अभाव सब शीघ्र हरो,

बलिदानों की बलिवेदी पर डरना तुमको स्वीकार न हो !"

\- - -

यह दो-युग का संधिस्थल है संघर्ष छिडेगा वर्गों का,[90]

कवि महेन्द्र भटनागर मानव-कल्याण की भावना से साहित्य निर्माण करते है । उन्होंने अपनी कल्पनाओं में 'स्व' से अधिक मानव-कल्याण को स्थान दिया है । कवि कहता है :

'मैं केवल अपने सुख-दुख का क्या गान करु ?'[91] वह संस्कृति के पतन के प्रति सचेत है । सामाजिक सभ्यता का पतन संस्कृति का पतन है । ऐसे माहौल में कवि अपने सुख की चिन्ता छोड़ मानव-संस्कृति को बंधनों से युक्त करने की सोचता है । शोषण और अत्याचार के विरुद्ध वह क्रांति का आह्वान करता है -

जब जगती में आग लगेगी

विद्रोही हुंकार जगेगी[92]

ऐसे समय में कवि महेन्द्र भटनागर साहित्यकारों को क्रांतिकारी गीत गाने का आह्वान करता है । यथा :

इतिहास बने बलिदानों का,

उत्सर्ग करो निज प्राणों का,

पीड़ित मानवता की जय हित, ओ कवि, प्रेरक गाने गा ले ![93]

कवि अपनी कविता के माध्यम से समाज में नयी क्रांति लाना चाहता है । परतंत्रता के बंधन टूटें; यही उसका लक्ष्य है :

"शीघ्र तोड़े बंधनों को,

तीव्र करदे धड़कनों को,

वेग से विप्लव मचाकर, सृष्टि कर दे और नूतन,

प्रेरणा दे, वह कला हूँ ।"[94]

'विश्वज्योति' (होशियारपुर, पंजाब) में प्रो. रघुनंदनजी ने लिखा, "अभियान की ललकार में कवि का मस्तिष्क बोल रहा है । उसमें समाज को चुनौती है । सामाजिक व्यवस्था पर आक्रोश है । दलितों और शोषितों के लिये उतेजना है । मजदूरों और किसानों को ढारस दिया गया है । यह सब कुछ उनके मस्तिष्क से आया है, जो उनके पठन, मनन और गंभीर विचार का परिणाम है । पर इस चुनौती में हृदय की ईमानदारी और दिल की गहरी सहानुभूति इसको प्रेरणा दे रही है ।"[95] 'कवि' शीर्षक कविता में कवि समाज-हित, नवयुग-निर्माण और वर्ग-विभाजन के भेद को मिटाने का एलान करता है । कवि कहता है :

"परिवर्तन का आकांक्षी हूँ, मन्थन कर सकता सागर का,

वह भीषण आँधी हूँ जिससे कँपता वक्षस्थल अम्बर का,

मैं नवयुग का अग्रदूत हूँ, नयी व्यवस्था का निर्माता,

मैं नवजीवन का गायक हूँ साधक अभिनव प्राणद स्वर का,

सजग-चितेरा नव-समाज को मैं चित्रित करनेवाला हूँ ।

मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग को निर्मित करनेवाला हूँ ।"[96]

'चेतना' का कवि मार्क्सवादी विचारों का गायक लगता है । कवि कहता है

"आज आगे मैं बढ़ूँगा,

आपदाओं से लड़ूँगा,

राह की दुर्गम सभी

ऊँचाइयों पर जा चढ़ूँगा ।"[97]

'नारी' जो 'अबला' है, कवि महेन्द्र भटनागर ने उसे भी क्रांतिकारी के रूप में चित्रित किया है । यह 'नारी', 'अबला' नहीं बल्कि नवयुग की निर्मात्री है । कवि कहता है कि तुम्हारे साथ जगत के नवयुवक हैं, तुम प्राचीन व्यवस्था, वर्ग-बंधन आदि को बदल डालो । यथाः

है साथी जग का नव-यौवन,

बदलो सब प्राचीन व्यवस्था,

वग-भेद के बँधन सारे

तुम आज मिटाने को आयीं ।[98]

नवीन प्रेरणा संघर्ष की जननी है । संघर्ष से ही क्रांति का इतिहास निर्मित होता है ।

'नव-प्रेरणा का ज्वार ऐसा

जन-समुन्दर में बहेगा जब

तभी यह क्रांति का इतिहास

निर्मित हो सकेगा'[99]

'देश-दीपक' कविता में कवि देश की स्वतंत्रता के लिए नव-युवकों को बलिदान देने के लिए प्रेरित करता है । परतंत्रता की कडियों में बँधा जकड़ा राष्ट्र जब अँधेरे में रहेगा तो देश में लूट, हिंसा और शोषण बढ़ेगा । कवि कहता है :

"बलिदान की है माँग,

आओ नौजवानो !

आज माता माँगती है

प्राण का उत्सर्ग !"[100]

'बलिया'[1] (सन् 1942 की क्रांति का जन-गढ है) कविता में कवि ने अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए बलिया में जो विद्रोह हुआ उसका चित्रण किया है ।

युग-परिवेश की विरूपताओं को अपनी भास्वरता के साथ नि:संग करतीं महेन्द्र भटनागर की कविताएँ जागरूक वाणी की शाश्वत थाती कही जा सकती हैं । कवि की निर्भीक और प्रेरणादायी कविताओं की मूल संवेदना देश-प्रेम से ओतप्रोत हैं । कवि की आस्थाशील काव्य-प्रवृत्ति जन-संस्कृति के नव-निर्माण की ललक से आतुर और अधीर जान पड़ती है । कवि-कण्ठ सामाजिक धरातल पर न्याय की प्रतिष्ठा के लिए सम्पूर्ण उन्मेष के साथ मुखर हुआ है । कवि जन-शक्ति और जन-सत्ता की विपुल सामर्थ्य का क़ायल है । प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरुद्ध कवि सदैव आक्रामक रुख में दिखाई देता है । अन्याय, शोषण और अत्याचार के सम्मुख सिर झुकाकर जीना कवि को कदापि स्वीकार नहीं है ।"[109] यहाँ कवि एक क्रांतिकारी के रूप में दिखाई देता है । 'स्वातंत्र्य-झंझावात' की निम्नांकित पंक्तियों में कवि उद्घोष करता है -

'झुक नहीं सकते हज़ारों व्यक्तियों के शीश,
झुक नहीं सकते हज़ारों नारियों के शीश,
झुक नहीं सकते हज़ारों बालकों के शीश ।'[101]

यहाँ न्याय और सत्य की रक्षा के लिए कवि का अडिग विश्वास दिखाई देता है ।

कवि अंधविश्वासों, विगलित मान्यताओं और ध्वस्त परंपराओं-रूढ़ियों के विरुद्ध क्रांतिकारी, संहारक के रूप में प्रस्तुत हुआ है । 'ध्वस्त करो' कविता में कवि ने पुरानी मान्यताओं के खंडन की बात की है । यथा :

सब जर्जर-जर्जर ध्वस्त करो,
चिर जीर्ण पुरातन ध्वस्त करो ।[102]

कवि की मान्यता है कि स्वतंत्रता के मतवालों का अवरोध करने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है । युवा क़दमों में अद्भुत बल और गति होती है; जिसके सम्मुख बाधाओं का खण्ड-खण्ड होना निश्चित है । 'जन-समुन्दर' शीर्षक कविता में कवि महेन्द्र क्रांतिकारियों के संकल्प और पौरुष को अभिव्यक्ति देता है -

'नाश को ललकारती है युग-जवानी
क्रांति का आह्वान करती आज वाणी,
प्राण में उत्साह नूतन ताज़गी है,
युग-युगों की साधना की लौ जगी है,
सामने जिसके ठहरना है असम्भव ।
हर कदम पर, हर क़दम पर,
बढ रहा दृढ़ जन-समुन्दर ।'[103]

कवि महेन्द्र दुर्दमनीय साहस और ओज के उपासक हैं । उन्हें अपने अतीत और वर्तमान पर गर्व है । कर्म के प्रति उनका अटूट विश्वास है । वे सामूहिक श्रमशक्ति की उपासना करते हैं । 'ओ भवितव्य के अश्वो !' कविता का भाव-बोध निर्जीव तक को जीने की कला सिखाता है -

हम उमड़ / श्रम धार से / हर हीन होनी की / लिखावट को मिटाएँगे / मदिर मधुमान / श्रम संगीत से / हम हर तबाही के अभेदे दुर्ग तोड़ेंगे ।[104]

कवि महेन्द्र शोषणहीन समाज की संरचना के पक्षधर हैं । वे प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को समुन्नत करने और मानवीय स्तर पर न्याय-भावना को सर्वोच्च मानने का आग्रह करते हैं । नव-निर्माण में कवि की दृढ़ आस्था है । उसमें भविष्य के प्रति अटूट विश्वास की आकुल ललक भी उपलब्ध होती है । मानव मात्र के प्रति कवि की असीम श्रद्धा उसके प्रौढ़ चिन्तन और गहन मनन का परिचायक हैं । 'प्रतिबद्ध' में कवि कहता है :

'हर व्यक्ति का जीवन समुन्नत कर/धरा को
मुक्त शोषण से करेंगे, वर्ग के या वर्ण के अंतर मिटाकर
विश्व-जन समुदाय को हम मुक्त दोहन से करेंगे ।'[105]

'जिजीविषा' में कवि अपनी लेखनी से कहता है कि हे लेखनी, तुम मनुष्य की सूखी शिराओं में नये रक्त का संचार करने के लिए, जन-जन के कण्ठों में नया राग भरने के लिए तथा नये समाज के निर्माण के लिए समय पट पर चलो तथा नवीन समाज के सृजन में सहायक बनो -

"लेखनी मेरी ।

समय पट पर चलो ऐसी कि जिससे

त्रस्त जर्जर विश्व का

फिर से नया निर्माण हो ![106]

मार्क्सवादी धारणा के अनुसार सामाजिक क्रांति नव-निर्माण की पुनीत-भावना से परिचालित होती है । कवि इस भावना का पोषण करता हुआ क्रांतिवाद में अपनी आस्था व्यक्त करता है तथा उसके शांतिमय संकेत की ओर भी करता है -

"हुँकार हूँ हुँकार हूँ ।
मैं क्रांति की हुँकार हूँ
मैं न्याय की तलवार हूँ !

शांति जीवन जागरण का मैं सबल संसार हूँ !
लोक में नवद्रोह का मैं तीव्रगामी ज्वार हूँ ।
फिर नये उल्लास का मैं शांति का अवतार हूँ !
हुँकार हूँ हुँकार हूँ ! मैं क्रांति की हुंकार हूँ !"[107]

कवि महेन्द्र भटनागर के काव्य का आधार सामाजिक है और अधिरचना साहित्यिक । उनकी सोच एकदम जनवादी है, वे किसी प्रशस्तियों का मोहताज़ नहीं है । समाज में जहाँ भी रूढ़िगत भावना दिखाई दी है वहाँ वे क्रांतिकारी की तरह डटकर सामना करने ओर उस रूढ़िगत मान्यता को मिटाने में लग गये हैं । मज़हबी जुनून का विरोध करता हुआ कवि कहता है कि - नये इन्सानों को अच्छा बनने के लिए, बहेतर बनने के लिए धर्म के ठेकेदारों के भडकावे में न आकर उनका विरोध करना चाहिए । यथा :

नये इन्सानो !

आओ, करीब आओ

और मानवता की ख़ातिर

धर्म-विहीन, जाति-विहीन

समाज का निर्माण करो ।[108]

कवि महेन्द्र 'मनुष्य' की पहचान देश, धर्म, जाति, उपजाति, भाषा-विभाषा, रंग और नस्ल से न करके 'मनुष्य' को केवल मनुष्य के रूप में पहचाना जाये - यह चाहते हैं । वह मनुष्य को देश, जाति, धर्म में विभाजित न करके एक कुटुम्ब के रूप में, कुटुम्ब के सदस्य के रूप में देखना चाहते हैं । 'मनुष्य', 'मनुष्य' के बीच में विभाजन करने वाली हर शृंखला को कवि तोड़ना चाहता है । यथा :

जुड़ी रहेगी कब-तलक

देश से धर्म से जाति उपजाति से

भाषा-विभाषा से रंग से नस्ल से ?

तोड़ो -

देशों की कृत्रिम सीमा-रेखाओं को,

तोड़ो -

धर्मों की

असम्बद्ध, अप्रासंगिक दकियानूस

आस्थाओं को,

तोड़ो[109]

कवि 'इतिहास-स्रष्टाओ !' को बोध कराता कहता है कि रक्त-रंजित संसार की तसवीर को बदले बिना सोना नहीं । हर भेद की प्राचीर को तोड़े बिना सतत श्रम-साध्य विजय का अवसर खोना नहीं । यथा :

"इंसान की तकदीर को

बदले बिना,

संसार की तसवीर को

बदले बिना,

सोना नहीं, सोना नहीं !"[110]

मनुष्य के मिलन में आनेवाली हर रुकावट को कवि दूर करके उन्हें एकदूसरे के करीब लाना चाहता है । कवि कहता है :

ध्वस्त करो

अन्धी पौराणिकता

मानव-मानव के प्रति पाशविकता

जागे दलितों में

अपराजित अदभुत क्षमता[111]

कवि दलितों में जो अपराजित क्षमता छिपी है, उसे बाहर लाकर समाज में उन्हें गौरवमय स्थान दिलाना चाहता है । कवि की भावना स्पष्ट है कि वह दलितों को दूर नहीं, बल्कि अपने करीब लाना चाहता है ।

कवि ने 'वास्तविकता' में वैयक्तिक यथार्थ को अंकित किया है -

ज़िन्दगी ललक थी, किन्तु भारी जुआ बन गयी,

ज़िन्दगी फलक थी, किन्तु अंधा कुआँ बन गयी,

कल्पनाओं रची, भावनाओं भरी, रुप-श्री

ज़िन्दगी ग़ज़ल थी, बिफर कर बददुआ बन गयी ![112]

'विरुद्ध' शीर्षक कविता में कवि कहता है :

'आप-बीती सुनायी, कहानी बता

दर्द में गुनगुनाते रहे उम्र भर !'[113]

"कवि महेन्द्र काव्य का यह एक अत्यंत स्वस्थ एवं सबल पक्ष है कि वह सामाजिक चेतना को अनुस्यूत किये हुए है । कवि के हृदय का तार समाज की वीणा से जुड़ा हुआ है । फलतः जब-जब वह झंकृत हुआ सामाजिक जीवन की अनेक सम-विषम राग-रागिनियाँ भी उनके स्वरों में मुखरित हो उठीं ।"[114] वस्तुतः कवि महेन्द्र भटनागर की कविता स्वस्थ जीवान-दर्शन की कविता है ।

अध्याय-**8**

1. 'समकालीन हिन्दी कविता सामाजिक मूल्य', डॉ. रविन्द्रनाथ दरगन, पृ.153
2. 'आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ', नामवर सिंह, पृ.54-60
3. कवि महेन्द्र भटनागर : सृजन और मूल्यांकन, पृ.1
4. 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरुप', डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय, पृ.77
5. वहीं, पृ.77
6. महेन्द्र भटनागर, खण्ड-२, पृ.10
7. नई चेतना, महेन्द्र भटनागर प्राक्कथन से उदृत
8. 'समकालीन हिन्दी कविता सामाजिक मूल्य', डॉ. रविन्द्रनाथ दरगन, पृ.15
9. 'नयी कविता : स्वरुप और समस्याएँ', डॉ. जगदीश गुप्त, पृ.12
10. 'कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार' (आलोचना) से डॉ. विनय मोहन शर्मा, सुधारानी, पृ.11 से उदृत
11. 'कबीर के दोहे', हजारी प्रसाद द्विवेदी
12. वहीं
13. वहीं
14. वहीं
15. 'हिन्दी कविता : मार्क्सवादी परिपेक्ष' में डॉ. जेनेश्वर वर्मा, पृ.60
16. वहीं, पृ.69
17. 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड' एवं स्वरुप, डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय, पृ.77
18. वहीं, पृ.98
19. तारसप्तक वक्तव्य से नेसिचन्द्र जैन, पृ.50
20. दुसरा सप्तक वक्तव्य से, हरिनारायण व्यास, पृ.53
21. जिजीविषा - 'हिम्मतन हाटी', महेन्द्र भटनागर, पृ.1
22. तीसरा सप्तक, 'दायित्व का भार', कीर्ति चौधरी, पृ.35-36
23. सूर्य का स्वागत 'नयी पीढी का गीत', दुष्यन्तकुमार, पृ.83
24. 'नयी दिशा', महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.23
25. वहीं प्रार्थना
26. वहीं, पृ.6

27. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, 'जीवनदृष्टि', पृ.84
28. वहीं, 'नव पथ राही', पृ.87-88
29. वहीं, 'अभय', पृ.89
30. वहीं, बदलता युग 'तुफान', पृ.224
31. 'प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर, अनुभूति और अभिव्यक्ति', डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.171
32. वहीं, पृ.171
33. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, प्राक्कथन से
34. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य, 'बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप', पृ.77
35. वहीं
36. 'हुंकार' 'नयी दिल्ली के प्रति', रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ.37
37. वहीं, 'हाहाकार', पृ.20
38. 'अभियान' खेतिहर महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.200
39. वहीं
40. हुंकार, 'विपथगा', दिनकर, पृ.45-46
41. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, अभियान खेतिहर, पृ.201
42. वहीं, खेतों में, पृ.202
43. 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप', पृ.78
44. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, अभियान 'खेतों में', पृ.203
45. 'अभीयान', वहीं, पृ.204
46. बदलता युग 'गिर नहीं सकती', वहीं, पृ.219
47. 'ऋग्वेद' 9/42/3
48. महाभारत 143/51
49. कौटिल्य अर्थशास्त्र : प्रथम अधिकरण, तीसरा अध्याय 15,16
50. 'सत्यार्थ प्रकाश' स्वामी दयानन्द, चतुर्थ सम्मुलास, पृ.111, 129
51. 'मेरे सपनों का भारत', महात्मा गाँधी, पृ.262, 64
52. 'हिन्दू' मैथिलीशरण गुप्त, पृ.175
53. 'चन्द्रगुप्त मौर्य' जयशंकर प्रसाद, पृ.19

54. ‘अजात शत्रु’, प्रसाद, पृ.125
55. ‘अनामिका’, निराला, पृ.118
56. ‘मैं कहीं हू’, जिजीविषा, महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.295
57. ‘प्रतिबद्ध’ : संवर्त समग्र खण्ड-3, पृ.18
58. वहीं, समग्र खण्ड-3, प्रेमचंद ‘अभियान’, पृ.193
59. ‘मलान सावधान’, समग्र खण्ड-1, पृ.249
60. ‘देशी रजवाडे’, महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.248
61. ‘तारक वध’ - गिरिजादत्त शुकल ‘गिरीश’, पृ.552
62. ‘प्रतिबद्ध’ भटनागर, समग्र खण्ड-3, पृ.118
63. ‘मेघानी’, रांगेय राघव, पृ.199
64. ‘ग्राम्या’ ‘उद्‌बोधन’, सुमित्रानंदन पंत, पृ.99
65. ‘समता का गान’, संकल्प, पृ.44
66. ‘अनुक्षण’, प्रभाकर माचवे, पृ.42
67. महेन्द्र भटनागर : जीवनयात्रा और पहचान, पृ.6
68. महेन्द्र भटनागर : समग्रत हरिजन, पृ.106
69. वहीं, पृ.107
70. ‘महेन्द्र भटनागर के काव्यसाधना’, श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.37
71. ‘छायावादोत्तर हिन्दी काव्य’ : बदलते मानदण्ड, पृ.101
72. युगवाणी ‘नारी’ सुमित्रानंदन पंत, पृ.46
73. वहीं, पृ.46
74. परिमल विधवा, सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’, पृ.98
75. भूमि की अनुभूति, नवयुग और नारी जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द, पृ.26
76. चयनिका ‘नई नारी’, महेन्द्र भटनागर, पृ.147-48
77. ‘भिखारिन’, महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.108
78. ‘तुम्हारी माँग की कुमकुम’, महेन्द्र भटनागर, पृ.145
79. ‘नारी’, महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.183
80. संतरण, वही, पृ.6

81. सामाजिक चेतना के शिल्पी कवि महेन्द्र भटनागर प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर उनकी काव्य मिमाशा, डॉ. संतोष कुमार तिवारी
82. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ : रामविलास शर्मा, पृ.79
83. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.310
84. वही, पृ.163 'अभियान'
85. 'तुलसीदास', वहीं, पृ.191
86. वहीं, 'प्रेमचंद', पृ.192
87. वहीं, पृ.193 'प्रेमचंद'
88. 'महेन्द्र भटनागर की काव्य-साधना', श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.55-56
89. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, 'संघर्ष', पृ.180
90. 'अंतर ज्वाला', महेन्द्र समग्र खण्ड-1, पृ.177
91. वहीं, 'जाहिर', पृ.176
92. वहीं, 'बेबसी', पृ.177
93. वहीं, पृ.178
94. वहीं, 'प्रणय-संगीत', पृ.178
95. 'महेन्द्र भटनागर की काव्य साधना', श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.56
96. वहीं, 'कवि', पृ.179
97. 'नयी चेतना', वहीं, पृ.182
98. 'नारी', वहीं, पृ.184
99. 'देश-दीपक', वहीं, पृ.184
100. वहीं, पृ.85
101. 'बलिया', महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, पृ.185
102. 'ध्वस्त कहीं टूटती श्रृंखलाएँ', समग्र-2, पृ.50
103. 'जन समुन्दर', वहीं, पृ.54
104. ओ 'भविष्य के अश्वों' संतरण समग्र खण्ड-2, पृ.50
105. 'प्रतिबद्ध', संवर्त समग्र खण्ड-3, पृ.117
106. जिजीविषा, 'लेखनी से', समग्र खण्ड-1, पृ.35-36
107. 'हुंकार', भटनागर, टूटती श्रृंखलाएँ, पृ.31

108. ‘जीने के लिए’, समग्र खण्ड-3, पृ.259

109. ‘नये इन्सानो से’, समग्र खण्ड-3, पृ.266

110. ‘इतिहास सृष्टाओं’, समग्र खण्ड-3, पृ.270

111. ‘मंत्र’, वहीं, पृ.274-275

112. ‘वास्तविकता’, वहीं, पृ.292

113. विरूद्ध, वहीं, पृ.292

114. ‘बदलता युग’, महेन्द्र भटनागर, आमुख से डॉ. रामविलास शर्मा

नवम अध्याय

साम्प्रदायिक सोहार्द

9.1 धर्म की नकारात्मक भूमिका

9.2 ईश्वर एवं मंदिर-मस्जिद : विकृत मानसिकता

9.3 रक्तपात

9.4 राजनीतिक स्वार्थ

नवम अध्याय

साम्प्रदायिक सोहार्द

9.1 *धर्म की नकारात्मक भूमिका :*

9.1.1 *धर्मगत भावना :*

जातिगत व्यवस्था के ही समान धर्मगत भावना ने भी भारतीय समाज में विसंगतियों को उत्पन्न करने का कार्य किया है । धर्मगत विद्वेष का मुख्य कारण साम्राज्यवादी शासकों की 'बाँटो और शासन करो' की नीति रही है । राजनीतिक विवेचन के अन्तर्गत यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि ब्रिटिश शासकों की कूटनीति के ही चलते भारत में 'मुस्लिम लीग' नामक संस्था की स्थापना हुई तथा वह भारत की प्रमुख राष्ट्रीय काँग्रेस पार्टी के विरोध में खड़ी हुई । यह अवश्य है कि दोनों पार्टियों का लक्ष्य एक ही था - स्वराज्य-प्राप्ति, लेकिन मुस्लिम लीग की स्थापना तथा पाकिस्तान की माँग ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच कटुता की भावना पैदा कर दी । इस प्रकार की साम्प्रदायिक कटुता के परिणाम स्वरूप देशव्यापी दंगे हुए तथा गृहयुद्ध जैसा वातावरण निर्मित होता गया । फलतः स्वतंत्रता-संघर्ष के आन्दोलन को काफ़ी आघात पहुँचा ।

ऐसे वातावरण में जबकि मुस्लिम लीग मुसलमानों की तरफदारी कर रहा था, 'हिन्दू महासभा' और 'राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ' ने हिन्दुओं की तरफ़दारी शुरू कर दी । परिणाम स्वरूप साम्प्रदायिकता की आग और उग्र हो उठी ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर ने धर्म की इस नकारात्मक स्थिति को कविता में बख़ूबी से चित्रित किया है । कवि 'टूटती शृंखलाएँ' की 'पाषाण-उर' शीर्षक कविता में कहता है :

"आज मानव का हृदय तो बन गया पाषाण,
ख़ून से विचलित नहीं होते तनिक भी प्राण !"[1]

अत्याचारों और अतिक्रमणों के कारण आम जनता त्रस्त है, ऐसा हाहाकार कवि की वाणी से सहज ही सुनाई देता है :

‘आज तो पथ-भ्रष्ट मानव हिंस्र खूनी क्रूर !

मानवी-व्यापार कितनी दूर !’[2]

साथ ही, समग्र संसार को कवि दिशा-शून्य स्थिति में देखता है :

‘अंधकार में डूबा हुआ

घिरा संसार

समस्त नयन की सीमा तक

गहन अंधकार बेछोर घोर ।’[3]

“कवि ने अपनी कविताओं को, समान्तर ज़िन्दगी से सीधे सम्बद्ध किया है । उस युग में देश के सामूहिक जीवन और सोच को झकझोर देनेवाली कई घटनाएँ हुईं और समर्थ युग-दृष्टा होने के नाते कवि महेन्द्र भटनागर ने इस ‘बदलते युग’ को महत्व और अभिव्यक्ति दी है ।”[4]

इस काल की दिलदहला देने वाली घटनाएँ - बंगाल का अकाल (1943) तथा मालवा में अकाल (1947) हैं; जिन्होंने कवि की आत्मा को गहरे पैठकर झकझोर दिया । मालवा का अकाल उतना दारूण नहीं है, वहाँ मृत्यु का तांडव नहीं है । दोनों कविताओं का विषय समान होने पर भी, प्रगतिवादी चेतना ने बंगाल के अकाल हेतु धर्म को आडे हाथों लिया है

“मंदिरों ने, मस्जिदों ने क्या किसी को भी बचाया ?

सांत्वनामय धैर्य इनका क्या किसी के काम आया ?”

धर्म के पोथे करोड़ों सड़ रहे हैं नालियों में,

आज चाँदी के न टुकड़े हैं प्रसादी थालियों में,

ईश पर विश्वास कैसा ? कौन ले अवतार आया ?

ढोंग मंदिर, ढोंग मसजिद भूल यह, ‘गुण गा न पाया ।’[5]

धर्म की यह स्थिति हमारी समस्त दुर्गति की ज़िम्मेदार है । निष्क्रिय धार्मिक आस्था, पलायनवादी प्रकृति और भाग्यवादी चिन्तन के विरुद्ध कवि समाज में श्रम के प्रति समर्पित होने का भाव पैदा करना चाहता है । श्रम की

महिमा जाने बिना; समाज की जड़ता को समाप्त नहीं किया जा सकता। कवि कहता है :

'वरदान अमरता का प्रतिपल मत माँगो रे जड़ पाहन से

गा-गा अगणित वंदन के स्वर !'

क्योंकि कवि मानता है कि :

"यह मानवता का धर्म नहीं, यह मानवता का मर्म नहीं,

संघर्षों से घबराकर जो सभय पलायन धारण करता

कह, मिथ्या जग, जीवन नश्वर !"[6]

भारत में स्वतंत्रता आयी किन्तु हर्षोल्लास का वातावरण टिकाऊ नहीं रहा । आजादी के साथ ही बँटवारे ने व्यापक नर-संहार, मानवता पर बलात्कार की स्थिति पैदा कर दी । महेन्द्र भटनागर ने अपनी कविता में इन सभी दृश्यों को जीवंत किया है । यह दशा इतनी भयानक थी कि उसे अपनी वाणी में अभिव्यक्त करने में असमर्थ रहा । यथा :

"दशा युग की करुण है, आज वाणी में नहीं बँधती,

नहीं बँधती, विषम है साधना स्वर में नहीं सधती !"[7]

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ भारत-पाक विभाजन हुआ और साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये । महेन्द्र भटनागर ने 'साम्प्रदायिक दंगे' शीर्षक कविता में भारत-पाक विभाजन का वह भयावह चित्र प्रस्तुत किया है । यथा :

"नगर-नगर व गाँव-गाँव में, दहक रही यह आग है,

डगर-डगर व पाँव-पाँव पर, भभक रही यह आग है !

मनुष्य का कठोर रूप यह भयावना है किस क़दर,

कि धर्म जातिगत प्रभाव का ज़हर उगल रहा ग़दर ।"[8]

कार्ल मार्क्स के अनुसार - "धर्म जन साधारण के लिए अफ़ीम के समान विनाशकारी है ।"[9]

'बदलता युग' की अनेक कविताएँ अकाल और साम्प्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि में लिखी गई हैं, इसलिए उनमें विनाश और क्रंदन के स्वर प्रधान हैं। इसके पीछे धर्म की नकारात्मकता अधिक ज़िम्मेदार है । 'तूफान' नामक कविता में लिखा है :

"मिटा समुदाय सारा खा गया है ज़ंग,

दीमक और फोड़ों से

हुआ जर्जर, हुआ जर्जर !

बिगड़ दोनों गये है लग्स !"[10]

कवि महेन्द्र भटनागर ने धर्म के विष का अनुभव कर उन अनुभव को कविता के रूप में वाणी दी । धर्म की इस क्रूरता का शिकार अधिकतर निम्न समाज का व्यक्ति ही हुआ ।

महेन्द्र भटनागर धर्म के नाम पर समाज को खंडित, विभाजित करना नहीं चाहते । सबको बनानेवाला खुदा एक ही है । सबको एक ही खुदा से जोड़कर वे सबको संयुक्त करना चाहते हैं । उनका कहना है कि -

'एक है सब का ख़ुदा, जिसने बनाये जीव सारे'[11]

यह नारा लगाने के बावजूद धार्मिकता के ज्वार ने भारत-पाक विभाजन पर मुहर लगा दी । भारत खंडित हुआ जिसका प्रभाव कवि के हृदय पर कैसा पड़ा । कवि कहते हैं :

'अपने ही हाथों से अपने हमने आज कुल्हाड़ी मारी,
ग़लती पर ग़लती कर आज जुए में जीती बाजी हारी,
ले न सके हम वह जिसके पाने के युग-युग से अधिकारी
दिल टूक-टूक होता है, यह निर्मम कितनी रे लाचारी !
मेरा देश बँटा है टुकड़ों में अनगिन'[12]

धर्म की संकीर्णता आदिकाल से चल रही है । 'देशी रजवाड़े' कविता में इसी संकिर्णता का सांगोपांग चित्रण हुआ है :

'एक नवाब बनाता मसजिद

आर्य-समाज न बनने देगा,

धर्मों की संकिर्णता बढ़ी,

छीने है हक़, यह कैसी ज़िद !'[13]

यह आज़ादी के पहले का दृश्य है, जबकि आज़ादी के पश्चात् मानव की वृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं आया ।

'हिन्दु-मुस्लिम, हरिजन में घुस
जाति-पाँति का भेदभाव रे'[14]

युग सत्य यह है कि आज़ादी पूर्व और पश्चात् - "काँग्रेस ने भी जाने अनजाने साम्प्रदायिकता की इस आग को भड़काने में अपना योग दिया । वस्तुतः काँग्रेस मुसलमानों की प्रसन्नता हेतु हिन्दू-हितों की उपेक्षा करती गयी, फलतः वह हिन्दू जनता तथा निष्पक्ष विचारकों के आलोचना की पात्र बनी । इस प्रकार हिन्दुओं में असंतोष की आग बढ़ती गयी और इसका परिणाम हिन्दुओं के द्वारा गांधी की हत्या के रूप में सामने आया ।"[15] कवि महेन्द्र भटनागर ने गांधीजी को श्रद्धासुमन अर्पित करने 'गांधी' शीर्षक कविता में लिखा :

'मानव-संस्कृति के संस्थापक, नव आदर्शों के निर्माता,
आनेवाली संसृति के तुम निश्चय, जीवन भाग्य-विधाता !'[16]

कवि महेन्द्र भटनागर गांधीजी को मानव संस्कृति का संस्थापक और नव-आदर्शों का निर्माता कहा है । क्योंकि गांधीजी के आदर्शों, सत्य, अहिंसा से ही मनुष्य अपना जीवन सार्थक बना सकता है । गांधीजी ने इन्हीं आदर्शों को आधार बनाकर बनाकर आंदोलन किये । भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का मुख्य आधार भी यही आदर्श थे ।

'त्रस्त दुर्बल विश्व को सुख, शक्ति के उपहार हो तुम !'[17]

* * *

'प्राची के उगे तुम सूर्य
सहसा बुझ गये !
पर, तुम्हारी
फैलती ही जा रही है ज्योति !'[18]

* * *

तुमने बुझते

युग-मानव के उर-दीपक में
निज जीवन का संचित स्नेह ढाल
अभिनव ज्योति जगायी है ।[19]

* * *

और
आज हमारी श्वासों में जीवित है गांधी,
तम के परदे पर मन के ज्योतित है गांधी,
जिससे टकराकर हारी पशुता की आँधी ![20]

साम्प्रदायिकता की आग को अधिक प्रज्वलित करने का कार्य अंग्रेजों ने किया । इस "साम्प्रदायिक विद्वेष का ब्रिटिश शासन ने भरपूर लाभ उठाया । क्योंकि वह विद्वेष की आग यदि न फैली होती तो शायद आज़ादी वर्षों पहले ही मिल गयी होती तथा विभाजन के रूप में देश को भारी घाटा भी न उठाना पड़ता ।"[21]

स्वतंत्र भारत का धार्मिक परिवेश अत्यंत भयावह था । महेन्द्र भटनागर लिखते हैं कि "भारत की स्वाधीनता के साथ-साथ साम्प्रदायिक दंगे शुरू हो गये थे । इलाहाबाद में सफ़र के समय एक बार सुनसान में घिर गया था - 'राम-राम' करके स्टेशन पकड़ा और थोड़ी देर बाद ही किसी ने समाचार दिया कि जिस रास्ते से मैं आया था, छुरेबाजी की वारदातें हो गयीं ! कितना बुरा समय था वह !"[22]

प्रगतिवादी कवियों ने इन विषम परिस्थितियों में अपनी सजगता दिखाते हुए एक ओर साम्प्रदायिकता के विरोध में तो दूसरी ओर दोनों सम्प्रदायों की एकता के लिए ओजस्वी कविताओं की सर्जना की है ।

कवि महेन्द्र को धर्म के प्रति आस्था है । और यह आस्था कभी-कभी प्रार्थना का रूप धारण करती है, किन्तु यह प्रार्थना किसी निष्क्रिय हताश व्यक्ति की प्रार्थना नहीं है, बल्कि एक अदम्य जिजीविषा भरे कर्मरत मनुष्य की प्रार्थना है :

"अँधेरा दो / पराजय का अँधेरा दो / निराशा का सघन अँधेरा दो पर / विजय की आस मत छीनो / सुबह की साँस मत छीनो !"[23]

डॉ. कांतिकुमार जैन कवि महेन्द्र की आस्था के संदर्भ में लिखते हैं कि

"महेन्द्र भटनागर की इस आस्था का स्वरूप आध्यात्मिक नहीं है । वे मार्क्स के दर्शन से अपनी आस्था ग्रहण करते हैं, किन्तु यहाँ पर यह कहना उपयोगी होगा कि उनके काव्य में मार्क्सवादी दर्शन राजनीतिक नारेबाज़ी या घोषणा-पत्र के रूप में उपस्थित न होकर काव्यात्मक रूप में अभिव्यक्त होता है ।"[24]

कवि महेन्द्र भटनागर को शोषित-वर्ग की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है । उसकी धारणा है कि अंतिम विजय शोषित-वर्ग की ही होगी । ऐतिहासिक विकास का गतिचक्र शोषितों के साथ है । इसलिए आस्थायुक्त आश्वस्त स्वरों में वे कहते हैं :

"राजा, काल्पनिक भगवान डिक्टेटर

हुकूमत के ज़माने के कफ़न पर

कील अंतिम ठुक चुकी है आज ।"[25]

कवि यथार्थ से बचने का प्रयत्न नहीं करता । छायावादी गीतकारों की तरह कवि महेन्द्र भी कल्पना और सौन्दर्य उपासक रहे, किन्तु युग के परिवर्तन के अनुरूप उनमें भाव परिवर्तन भी हुआ । जब कवि का बोध जागता है तब वह यथार्थ के थपेड़ों से विचलित-सा हो जाता है । यह मोह-भंग की स्थिति है । इस सोपान पर कवि एक ओर तो अपने बीते वैभव की स्मृति करता है तो दूसरी ओर यथार्थ को भी उसके नग्न रूप में स्वीकार करता है । मोहभंग की अवस्था अनास्था और अनिश्चय से भरी होती है । जब कवि इसका अनुभव करता है तब उसके चारों ओर संदेह और शंकाओं का वातावरण छा जाता है ।

साम्प्रदायिकता वैसे तो एक पुरानी बीमारी है, पर भारत में उस प्रकार के साम्प्रदायिक दंगे, जैसे ब्रिटिश शासन के अंतिम दिनों में और स्वाधीनता के बाद हुए, पहले कभी नहीं देखे गये थे । साम्प्रदायिकता का यह उग्र रूप प्रमुखतः ब्रिटिश शासन की नीतियों का ही परिणाम था । ब्रिटिश शासन की सामान्य नीति फूट डालों और राज्य करो की नीति थी ।

ईश्वर एवं मंदिर-मस्जिद : विकृत मानसिकता :

ईश्वर और मंदिर मस्जिद के नाम पर मध्ययुग से ही हिन्दू-मुस्लिम

एक दूसरे का विरोध करते आये हैं । कबीर जैसे समाज सुधारक संतों ने उसका विरोध भी प्रकट किया है । धर्म की आड़ में अनेक जघन्य अपराध समाज में प्रचलित थे और आज भी हैं । कबीर कहते हैं :

"जियत पिता के मारे डंडा, मुवे पिता पहुँचावे गंगा ।"[26]

* * *

"अरे इन दोउन राह न पायी ।

हिन्दू अपनी करे बड़ाई, सागर छुअन न देई

वैश्या के पावन तर सावैं, यह देखो हिन्दुआई

* * *

मुसलमान के पीर औलिया, मुर्गी-मुर्गा खाई

खाला केरी बेटी ब्याहैं घर में करैं सगाई ।"[27]

धर्म के बाह्य स्वरूप के प्रपंच में फँसकर लोग एक उलझनपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे । समाज में नैतिकता के अनेक मापदण्ड थे । ब्राह्मणों के लिए एक अलग धर्म नियत था । छोटे वर्ग के लोगों ने हिन्दू धर्म का परित्याग कर ईसाई धर्म की ओर झुकना प्रारंभ किया ।

इस तरह अंग्रेजों ने ईसाई धर्म में धर्मांतरण करने के लिए अपना दरवाजा खोला ।

धर्म और संस्कृति के रूढ़ रूप ने विश्व को ऐसी संकीर्ण भूमि पर लाकर खड़ा किया जिसके कारण मानव जाति ऊँच-नीच और अमीर-गरीब के दायरों में फँस गई । सम्पन्न और समर्थ वर्ग की स्वार्थ लिप्सा ने आगे चलकर मानव जाति को और ही जड़ एवं विकृत कर असहाय बना दिया । एक ओर तो पूँजीवादी शक्तियाँ निरंतर विकसित होती रहीं तो दूसरी ओर महेनतकश जनता उनके शोषण-पाटो में पिसती टूटती गई । अतः प्रगतिवादी कवियों का प्राचीनता के प्रति प्रतिक्रियात्मक हो उठना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता । कवि महेन्द्र भटनागर भी 'मनुज महान धर्म' की पुनः स्थापना के लिए उन समस्त प्रतिगामी परंपराओं को बदलने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि कुरान, वेद, उपनिषद्, पुराण, बाइबिल, सब बदल चुके हैं । आज सामाजिक प्रगति

के लिए पुराने ग्रंथ किसी काम के नहीं रहे है । इसलिए नवीन ग्रंथ का निर्माण करने की आवश्यकता है जिससे मानव धर्म की सड़ी गली मान्यताएँ नष्ट हों और पुरानी पंरपराएँ बदल जाएँ ।

"कुरान ? वेद ? उपनिषद ? पुराण ? बाइबिल ?
सभी बदल चुके
नवीन ग्रंथ और एक 'ईश' चाहिए
कि जो युगीन जोड़ दे नया, नया, नया ।
व लहलहा उठे
मनुज महान धर्म की सड़ी-गली लता !
सुधार, मान्यता, नवीन मान्यता, सशक्त मान्यता,
न व्यर्थ मोह में पड़ो
न कुछ यहाँ धरा !
बदल परंपरा, परंपरा, परम्परा ।"[28]

'साम्प्रदायिक दंगे', 'साम्प्रदायिक विष', 'एकता', 'हिन्दू-मुसलमान' आदि कविताएँ 1947-48 में लिखी गई हैं और इनकी केन्द्रीय चिन्ता यह है कि धर्म-द्वेष, सम्प्रदाय द्वेष आदि को खारिज करते हुए किसी तरह मानव-मानव की एकता और आत्मीयता को स्थापित किया जाये । देश की आज़ादी से कवि को जो अपेक्षाएँ थीं, उनमें शोषण-मुक्ति के अतिरिक्त हिन्दू-मुसलमान-सिख्र-ईसाई का पारस्परिक सोहार्द भी निहित है । 'संयुक्त बनो' में कवि ने स्वतंत्रता के बाद देश के स्तर पर जो कुछ चाहा था वह आज भी प्रासंगिक है :

"ऊँचे ऊँचे भवन गिरेंगे शोषण पूँजीवाद मिटेगा
शक्तिमना अविजित उन्नत मेरा यह हिन्दुस्तान बनेगा
हिन्दू-मुस्लिम, सिख, ईसाई, सबका है यह देश, जगेगा,
गले मिलेगें भेद भूलकर ये जन-जन ।"[29]

कवि की इन रचनाओं में करुणा और सहानुभूति झलकती है । यद्यपि इन रचनाओं में कवि का मानस गहरे अवसाद और नैराश्य में डुबा है, परन्तु वह टूटकर असहाय नहीं बना है । देश की तात्कालिक विपन्नता और दरिद्रता का सारा दोष कवि ने ब्रिटिश शासकों के सिर मढ़ा है, जो एक ऐतिहासिक

सत्य है । शासकों की नीति का पर्दाफाश करता हुआ कवि का आक्रोश हमारी चेतना को उत्तेजित करता है :

"तूने कर दिया बरबाद
मेरे देश का वैभव
कि मेरे देश का गौरव

* * *

तूने कर दिया मुहताज़
भूखों मार
दुख, आतंक, गोलों और तोपों का
भरा भंडार !
तूने जमाया पैर माँ के वक्ष पर,
जिसके करोड़ों लाल
हिन्दू और मुस्लिम को लड़ाया,
फूट का बो बीज !"[30]

महेन्द्र भटनागर समाज के सचेत कवि हैं । जाति-धर्म और संप्रदाय के नाम से लोग आपस में भेद-भाव, वैर भाव-रखें वे किंचित भी नहीं चाहते। अन्याय और अत्याचार का, चाहे वह जिस रूप में हो, वे आद्यन्त कड़ा विरोध करते हैं । उनकी यह क्रांतिकारी भावना स्वतंत्रता के पश्चात् विशुद्ध सांस्कृतिक धरातल पर संचरण करती हुई राष्ट्र जीवन को पुष्ट और सुन्दर बनाने की प्रेरणा देती है ।

महेन्द्र भटनागर ने 'कविता-प्रार्थना' में कविता की रचनात्मक भूमिका का उल्लेख करते हुए उसे अन्याय-अत्याचार के विरोध का सशक्त माध्यम करार दिया है :

"आदमी को आदमी से जोड़नेवाली
क्रूर हिंसक भावनाओं की उमड़ती आंधियों को

मोड़ने वाली

इनके प्रखर अंधे वेग को

आवेग को बढ़ / तोड़ने वाली

सबल कविता ऋचा है ।"[31]

कवि महेन्द्र भटनागर ने आज के आतंकवाद को नेस्तनाबूद करने का यत्न किया है । 'आतंक के घेरे में', 'धर्मयज्ञ', 'आरजू', 'सन् 1986 ई.', 'अग्नि परीक्षा' सरीखी कविताओं में धर्म और संप्रदाय से जुड़े लोगों की हत्या करने को बहुत चिन्ता की दृष्टि से देखा गया है । यह आशा की गई है कि इक्कीसवीं सदी तक सभी तथाकथित धर्मों के स्थान पर एक महान मानव धर्म प्रतिष्ठित हो लेगा :

'इक्कीसवीं' सदी का

महान् मानव-धर्म

प्रतिष्ठित हो

अन्य लोकों में पहुँचने के पूर्व

मानव की पहचान सुनिश्चित हो ।'[32]

ये कविताएँ एक नये मानव-धर्म की कल्पना से जन्मी हैं । यह मानव धर्म पुराने 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का ही सगा भाई है । इस वैचारिकता की नींव पर खड़ी कविता न केवल बहुमूल्य होती है; अपितु यह हमारी वैचारिक विरासत भी है । कवि ने स्वयं कहा है :

"इस मानसिकता से

रची कविता

ऋचा है

इबादत है ।"[33]

कवि महेन्द्र भटनागर ने अपनी कविता में महाभारत युगीन आख्यान एवं रामायणकालीन परिवेश के चित्रण से वर्ग-संघर्ष की चेतना का प्रकाशन किया है । महेन्द्र के काव्य में एक ओर अतीत का आकर्षण है तो दूसरी ओर समसामयिकता के प्रति आग्रह भी । महेन्द्र में परंपरा का परिज्ञान है जो

'ऐतिहासिक बोध' के नाम से अभिहित किया गया है । कवि अपने यौवन की सार्थकता स्त्री पर होने वाले अत्याचार को रोकने में तथा पूँजीवादी रावण को मिटाने में मानता है :

"जन युग-संस्कृति-सीता की यदि लज्जा न बचा पाये,
पूँजीशाही रावण को यदि फिर से न मिटा पाये,
तो व्यर्थ तुम्हारा यौवन ।"[34]

तो 'नव-पथ राही' में कवि कहता है

'नयी व्यवस्था के संचालक
उन्मुक्त नये युग के मानव ।'[35]

नये युग के मानव मंदिर-मस्जिद, जाति-पाति और धर्म की संकिर्णता से मुक्त हैं ।

'भारत छोडो' आन्दोलन का प्रखर ताप, पूरे भारतीय उपमहाद्वीप को उग्र और आन्दोलित बना रहा था । इस परिवेश में, कविताओं का बोध स्वभावतः जन-मानस को आर-पार की लड़ाई के लिए प्रेरित और संबोधित कर रहा था । यह काल, संघर्ष का निर्णायक चरण था तो दूसरी ओर अनेक गांधीवादी मूल्यों के ह्रास का साक्षी भी था । हिन्दू-मुस्लिम एकता और भ्रातृभाव, अहिंसा, सोहार्द आदि मानवीय मूल्य राजनीतिक स्वार्थों के समक्ष धराशायी होने लगे थे, जिनके भग्नावेश पर भारत का विभाजन हो गया । इसलिए पर्याप्त ऊर्जा का प्रकाश रहने पर भी युगीन यथार्थ की सीमाओं ने प्रबुद्ध कवियों में हताशा और पराजय का भाव भी जाग्रत किया ।"[36]

महेन्द्र भटनागर ने भी युगीन समस्याओं व तत्कालीन विकृत मानसिकता का चित्रण अनपी कविताओं में किया है, साथ ही हिन्दू-मुस्लिम एकता को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न किया है ।

'तुलसी' पर लिखी कविता में कवि ने मध्ययुग के संदर्भ में तुलसी का सांस्कृतिक महत्व बताते हुए उस समय के अंधविश्वास और संशयग्रस्त स्थिति की व्यंजना की है । यथा :

"धुआँ चहुँ ओर झूठे धर्म का
जब घिर रहा था व्योम में,
औ वास्तविकता जा छिपी थी
चक्र, कुंडल, मंत्र, नाडी की
विविध निस्सार माया में
भ्रमित था जग सकल..... ।"[37]

ऐसी विषम परिस्थिति में अंधकार और आतंक में भटकती मानवता को 'सत्य, शिव सौन्दर्यवाहक' गीतों द्वारा अभिनव साहस, प्रगति और नवचेतना का मार्ग-दर्शन करानेवाले तुलसी का अभिनंदन कवि ने मुक्त स्वर से किया है।"[38] साथ ही कवि का विश्वास है कि वर्तमान में - 'गांधी के आदर्श अमर रहेंगे, जन-जीवन की यह चिनगारी कभी नहीं बुझेगी, काला तम हर बार पराजित होगा, क्योंकि

आज हमारी श्वासों में जीवित है गांधी ।[39]

क्रूरता और हैवानियत के पुराने मानदंडों का अतिक्रमण करता हुआ आज भी यह ज़हर यदा-कदा देश के कई भागों में काल-कूट के रूप में प्रकट होता रहता है । इस समस्या को कवि ने कई कविताओं में जीवन्त तथा ज्वलंत रुप में प्रकट किया है । 'साम्प्रदायिक दंगे' तथा 'साम्प्रदायिक विष' शीर्षक दो कविताएँ इस फैलते हुए विष का प्रभाव प्रदर्शित करती हैं :

'रक्तपात'

"असभ्य मद-प्रमत्त डोलती हैं हिंसकों की टोलियाँ
सुलग रही असंख्य बेकसूर व्यक्तियों की होलियाँ
जलन के दर्द से कराहती औ' काँपती वसुन्धरा,
कि आज एक बार फिर जगी चंगेज़ की परंपरा ।"
....
"मनुष्य का कठोर रुप यह भयावना है किस क़दर
कि धर्म जाति गत प्रभाव का जहर उगल रहा ग़दर !"[40]

इन दंगों के कारण 'ध्वस्त गृह-अट्टालिकाएँ' धरा पर बहता खून का सागर, 'प्रलय का तांडव प्रखर' और 'सर्व भक्षक क्रूर लपटें' सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही हैं, जिनके सामने पुराने आततायी फीके पड़ गये, पूर्वी बंगाल (पाकिस्तान) के तत्कालीन एक साम्प्रदायिक नेता सरवर गुलाम के जुल्मों के आगे तेमूर और चंगेज़ छोटे पड़ गये ।[41] इन सबके पीछे मंदिर-मस्जिद में गुमराह करने वाला ज्ञान है । परन्तु कवि महेन्द्र भटनागर ने इस विषम स्थिति में भी कविता के द्वारा मानवीय एकता का संदेश दिया है ।

"तुम्हीं वतन की शान-बान को गिरा रहे, मिटा रहे
कि हिन्द की उदार भावना स्वयं घटा रहे !"[42]

"कि मेल से रहो, यही करीम और श्याम की पुकार है,
कि एक हिन्दी हो यही रहीम और राम की पुकार है ।"[43]

आज़ादी के पश्चात् विभाजन की समस्या सामने हुई जिसके कारण हिंसा लूट जैसी भयावह समस्याओं ने विकृत रुप धारण किया । जैसे मनुष्य पर एक प्रकार का नशा छा गया था ।"[44]

धर्म और मज़हब के नाम पर लड़ते हिन्दू-मुस्लिम को कवि महेन्द्र सही राह बताते कहते हैं कि :

"एक है सबका खुदा, जिसने बनाये जीव सारे !
खून की नदियाँ बहाकर
देश की रक्षा न होगी,
धर्म का ले नाम यो पथभ्रष्ट मानवता न होगी ।"[45]

'संयुक्त बनो' में कवि ने भारत-विभाजन और मज़हब के नंगे नाच के लिए दोषियों को नामांकित किया है :

'लीगी' वाले भारत को अगणित काफ़िर, नीरो सिद्ध हुए,
जिनके 'कौमी' प्रचार से एके के सब पथ अवरुद्ध हुए ।[46]

परंतु कवि की अटल-आस्था जन-शक्ति में है - विवेक की विजय-

कामना में है । उसे लगता है, साम्प्रदायिकता को नष्ट कर पूरा देश पुनः संयुक्त बनेगा :

‘शक्तिमना अविजित उन्नत मेरा यह हिन्दुस्तान बनेगा,
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, सबका है यह देश, जगेगा !
गले मिलेंगे भेद भूलकर ये जन-जन,
खिल जाएगा रे सूखा उजड़ा उपवन,
......
अखंड संयुक्त बनो ! मुक्त करो जीवन ।’[47]

पाकिस्तान की माँग तथा भयंकर रक्तपात :

“द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान कॉंग्रेस ब्रिटिश सरकार के विरोध में थी। लेकिन मुस्लिम लीग सरकार का समर्थन कर रही थी । फलतः उसे सत्ता का संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्राप्त था । इसी संघर्ष काल के बीच मार्च, 1940 में मुस्लिम लिग ने एक प्रस्ताव पास कर पाकिस्तान की माँग की । लोगों ने इसे मि. जिन्ना का एक शिगूफा मात्र समझकर टाल दिया । लेकिन भविष्य में इसी माँग ने व्यापक तबाही मचायी । जुलाई, 1946 के संविधान सभा के चुनाव में कॉंग्रेस की आशातीत सफलता से मि. जिन्ना चिढ़ गए और ‘सीधी कार्यवाही’ (Direct Action) की घोषणा कर दी । परिणाम स्वरूप कलकत्ते में खुलेआम हिन्दुओं का वध किया गया और ये सभी वारदातें तत्कालीन लीगी प्रधानमंत्री सुहरावर्दी की आँखों के सामने की गई ।”[48] ‘साम्प्रदायिक दंगे’ शीर्षक कविता में महेन्द्र भटनागर ने रक्तपात का भयानक दृश्य प्रदर्शित किया है ।”[49]

“इस भीषण नरमेघ में लगभग 3000 से अधिक हिन्दुओं को शिकार बनाया गया । फलतः प्रतिक्रिया-स्वरूप पूरे देश में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। मुसलमानों ने अपना दूसरा लक्ष्य नोआखली को बनाया, जहाँ कलकत्ते से भी भयानक नरमेद्य हुआ तथा अमानुषिक कृत्य किये गये, जिसका इतिहास साक्षी है ।”[50]

‘आज़ाद मस्तक को उठा लेता’ शीर्षक कविता में मि. जिन्ना की ‘सीधी कार्यवाही’ का असर दिखता है । देशभर में साम्प्रदायिकता की आग

फैल गई । नोआखली तथा कलकत्ता की सीधी प्रतिक्रिया बिहार में हुई, जहाँ हिन्दुओं ने मुसलमानों से अपना बदला लिया ।"[51]

धर्म और जाति के नाम पर जनता में ऐसा विष भरा गया कि लोगों ने स्त्री पर अत्याचार करना भी नहीं छोड़ा । यथा :

"पर रुक न सका
हैवानों का चलता चक्र अरे !
जिसने नारीत्व
धरा पर लुण्ठित कर
माँ पर हाथ उठाया,
बना दिया विधवा-विधवा
पुत्र विहीना !"[52]

इस प्रकार, धीरे धीरे गृह-युद्ध जैसा वातावरण निर्मित होता जा रहा था। गांधीजी के सत्प्रयत्नों से दंगे तो अवश्य रुक गये लेकिन हिन्दुओं और मुसलमानों के हृदय - जो एक दूसरे के प्रति कट गये थे - एक न हो सके । इस प्रकार पाकिस्तान की माँग तथा उसके कारण होनेवाले भयंकर नरमेद्य ने साम्प्रदायिकता की भावना को जन्म दिया, जो कि स्वराज-संघर्ष के रास्ते में बाधक बनी । सामान्य जनता के ही समान, कवि-समुदाय में भी स्वराज भावना भरी थी, उसका संवेदनशील हृदय साम्प्रदायिकता के ज़हर को कदापि सहन नहीं कर सकता था ।

कवियों ने एक ओर साम्प्रदायिकता जैसी असामाजिक भावना की कटु आलोचना की तो दूसरी और स्वराज्य-प्राप्ति हेतु साम्प्रदायिक एकता की आवश्यकता पर बल दिया ।

फरवरी, 1947 को 'एटली' ने घोषणा कर दी कि ब्रिटेन जून, 1948 तक भारत छोड़ देगा । भारतवासियों ने इस घोषणा का हार्दिक स्वागत किया। इसी समय लोर्ड वावेल के स्थान पर लोर्ड माउण्टबेटेन की योजना में पाकिस्तान की माँग स्वीकार कर ली गयी तथा ब्रिटिश साम्राज्य इन दोनों राज्यों को - भारत और पाकिस्तान - स्वतंत्र रूप से सत्ता हस्तान्तरण करने की

आज़ादी प्राप्त हुयी । इसी आज़ादी का पूरे देश में स्वागत किया गया । लेकिन जहाँ कुछ लोगों ने इसे वास्तविक आज़ादी मानने से इन्कार किया वही वामपंथी नेताओं ने इसे 'झूठी स्वतंत्रता' की संज्ञा दी ।

'धोखा हुआ' शीर्षक कविता में महेन्द्र भटनागर इसी मानसिकता का चित्रण करते कहते हैं

''धोखा हुआ धोखा हुआ !.....
अंधे नयन को कर दिये,
यह सोचना लड़ते रहो !''[42]

तो 'नया सवेरा' का कवि स्वतंत्रता की ख़ुशियाँ मनाता दिखता है :

''युगों का अँधेरा मिटाकर, बड़ा लौह-परदा हटाकर,
सबेरा नया आ रहा है !''[43]

स्वतंत्रता के पहले और स्वतंत्रता के बाद धार्मिक एवं राजनीतिक आन्दोलन हुए जिन आन्दोलनों का मुख्य हेतु भारतीय स्वतंत्रता संग्राम व भारत-पाक विभाजन रहा है । उसमें कई बार रक्त-रंजित होलियों खेली गयीं । महेन्द्र भटनागर की कविताओं में उन घटनाओं व रक्तपात के दर्शन होते हैं । साथ ही, इन कविताओं में प्रयुक्त शब्दों से तत्कालीन जीवन-बोध प्रकट होता है, क्योंकि व्यक्ति, स्थान और घटनाएँ जन-मानस में ऐतिहासिक-बोध बोध बनकर प्रतिष्ठित हो जाती हैं, यथा - जलियानवाला बाग, सन् उन्नीस-सौ बयालीस, भारत छोडो, लीगी, गांधी, रहीम, ख़ान, जवाहर, कर्बला, प्रयाग, क़ुरान, वेद, करीम और श्याम, रहीम और राम, शिवा-प्रताप आदि ।

''महेन्द्र की कविताएँ स्वाधीनता संग्राम और उसके बाद के घटनाक्रमों की गवाह हैं । उनकी काव्य-यात्रा भारत की जय-यात्रा का इतिहास है । कवि महेन्द्र मार्क्सवादी जीवन दर्शन से प्रभावित है । परन्तु वैचारिक संकीर्णता उनके यहाँ नहीं है ।''[55]

महेन्द्र भटनागर प्रगतिशील कवि हैं । प्रगतिशील कवि की यह पहचान है कि वह कभी हताश नहीं होता । महेन्द्र भटनागर की कविताओं में तमाम पीड़ा और संघर्ष के बावजूद कहीं हताशा के स्वर नहीं उभरते ।[56] 'अजब विश्वास' की अटूट आस्था महेन्द्र भटनागर की काव्यशक्ति है । विषमता की आँधियों में जिससे व्यक्ति घबराता नहीं मार्ग तलाश लेता है :

“बज रही है मौत की शहनाइयाँ

कूकती वीरान है अमराइयाँ ।”[57]

‘प्रतिकूलता’ शीर्षक कविता में कवि महेन्द्र भटनागर ने 1945 के समय की घोर सामाजिक विषमता का चित्रण किया है । इस समय प्रत्येक व्यक्ति को असफलता और जड़ता का शिकार होना पड़ा था । यथा :

“मिलती प्रतिपग पर असफलता

बढती जाती है व्याकुलता

....

जड़ता का अँधियारा छाया

बरखा-आँधी का युग आया ।”[58]

कवि ‘जीवन-ज्वाला’ में कहता है -

“आँसू मत लाना आँसू से

ज्वाला ठंडी पड़ जाएगी ।”[59]

‘भिखारिन’ कविता में तो समस्या का चरमोत्कर्ष बताया गया है । भूख से बेहाल होकर कई लोग जीवन की अंतिम साँस लेते हैं :

‘इसी तरह दम तोड़ रहे हैं जग में जाने कितने मानव !”[60]

‘अंतराल’ में पचास कविताएँ संगृहीत हैं । इनका रचना-काल सन् 1944 से 1946 है । यह स्वाधीनता-संग्राम के उत्कर्ष का युग है । स्वभावतः संघर्ष, निराशा-आशा, आत्म-निवेदन, सफलता और विजय-उल्लास के क्षण इन कविताओं में युगबोध की अन्विति के रूप में अंकित हैं । लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग में आनेवाली बाधाओं के निवारण हेतु तूफ़ान, ज्वाला, भँवर, झंझा, अँधेरी रात, भूकम्प इत्यादि उपमानों और प्रतीकों का उपयोग गीतों में संदर्भों की बुनावट में किया गया है ।

कितना बीहड़ दुर्गम रे पथ

उलझ-उलझ जाता जीवन-रथ ![61]

‘अभियान’ का रचनाकाल सन् 1942 से सन् 1949 है । यह युग भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का अंतिम चरण है और स्वतंत्रता-प्राप्ति का उषाकाल भी ।

"कुल मिलाकर देखने पर इन कविताओं में कवि की दृष्टि पूरी तरह प्रगतिवादी है । वह पीड़ित, दलित जन-समुदाय की ओर से इनको इतिहास पर प्रतिष्ठित करता है । सर्वत्र अत्याचारी तथा साम्राज्यवादी शक्तियों से युद्धरत महापुरुष, महाकवि, लेखक और संघर्ष के प्रतीक रूप में स्थानों को प्रतिष्ठित किया गया है ।"[62]

रक्तपात :

"युद्ध के बादल गगन में, भूख धरती पर खड़ी है,
सांध्य-जीवन की करुणतम यह
असह दुख की घड़ी है
मृत्यु का त्यौहार है क्या ?"[63]

तो 'व्यष्टि' में कवि अपने सुख-दुख का गान करने के बजाय समाज में छायी भयानकता की चिंता करता है । यथा :

"देव ! तुम्हारी जन-नगरी में
महानाश का तांडव नर्तन
अगणित मनुजों की लाशों पर
क्रूर पिशाचों का पद-मर्दन ।"

x x x x

"रक्ताप्लावित युग-प्राण किये,
उस मानव पर फिर मैं कैसे अभिमान करूँ ?"[64]

मनुष्य-मनुष्य के बीच रोटी के लिए रक्तपात हुआ । 'बेबसी' शीर्षक कविता में यही समस्या वर्णित है । यथा :

"रोटी पर संघर्ष मचा है,
जिससे कोई भी न बचा है,
मानव-मानव से लड़ता है, ले भीषण हथियार निराले !
आज पड़े प्राणों के लाले !"[65]

रोटी-संघर्ष इतना भयानक है कि कवि को आदिम मानव से सब दीख रहे हैं ।

"पशुता का आदिम रूप वही उतरा है फिर से धरती पर

भीषण नर-संहार मचा है, गूँजा सामूहिक क्रंदन-स्वर !"[66]

कवि भीषण-नर-संहार में शांति स्थापित करने का प्रयत्न करता है । जिस भीषण स्वर की आवाज़ उठ रही है; उसी भीषण आँधी में शांति के लिए संघर्ष-रत कवि कहता है :

"दे रहा जिसमें सुनायी सिर्फ़ क्रन्दन का करुण स्वर,

हूँ सतत संघर्ष रत मैं, रक्त से डूबी धरा पर

शांति, समता, स्नेह लाने !"[67]

'बदलता युग' सन् 1953 में प्रकाशित महेन्द्र भटनागर तैंतालीस कविताओं का संग्रह है । इसमें 1943 से 1952 तक रचित कविताएँ संकलित हैं । इस काल की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का इसका संकलित हैं । इस युग की सर्वप्रमुख घटना द्वितीय विश्वयुद्ध है, जिसके घनघोर संग्राम का चित्रण कवि महेन्द्र ने 'कुर्बानियाँ' शीर्षक कविता में किया है । कवि के शब्दों में :

सिर्फ़ -

मरघट में चिताएँ हैं शहीदों की,

नहीं ज्वाला बुझी, धू धू भयंकर और भीषण[68]

'तूफ़ान' शीर्षक कविता में कवि ने मानव-समाज पर आये तूफ़ान का वर्णन किया है ।

"दोनों हाथ जो अपने

डुबोकर रक्त में"

....

"गिराता है रुधिर की धार !

सारा लाल है संसार !"[69]

“कवि ने प्रगतिशील विचार-धारा को लेकर धर्मा-धर्म की दूरियों को मिटाने का यत्न किया है । समीक्षा के क्षेत्र में एक भ्रांत धारणा चल रही है कि प्रचारात्मक साहित्य को राजनीतिक प्रयोजन से जोड़कर प्रगतिशील काव्यधारा कहा गया है । आनन-फ़ानन उन तमाम कवियों को मार्क्सवाद में खींचा जाने लगा है जो शोषित दलित पीड़ित वर्ग की अमानवीय मूक यातना को अपनी रचनाओं में स्वर दे रहे हैं । यह कतई ज़रूरी नहीं है कि मार्क्सवाद से जुड़कर ही कोई प्रगतिशील कहलाने का अधिकारी हो । निराला का काव्य सच्चे अर्थों में प्रगतिशील है, लेकिन वे मार्क्सीय सिद्धांतों की पैदाइश नहीं है, बल्कि वह युगीन वैषम्य, शोषण, अवमानना और देश की विभिन्न हलचलों की उपज है । अभिप्राय यह कि हमें तंग नज़रिए से प्रगतिशील जीवन-दृष्टि को नहीं देखना होगा बल्कि हमारी दृष्टि व्यापक और उदार होनी चाहिए । प्रतिबद्धता के नाम पर व्यावसायिक ढंग से जन-सामान्य की चर्चा करना स्त्युत्य नहीं है । इतिहास-बोध और सामाजिक यथार्थ की सही पहचान प्रगतिशीलता की अनिवार्यता है, क्योंकि शिविर-बद्धता सतही जीवन-दृष्टि का पर्याय है ।

महेन्द्र भटनागर के संदर्भ में यह बात साफ़ होनी चाहिए कि उनकी प्रगतिशील चेतना मार्क्सवाद का अनुवाद-मात्र न होकर युग-जीवन की विभिन्न हलचलों की संवाहिका बनकर आयी है । याने वह इस देश की मिट्टी की उपज है । यही कारण है, इसमें समता और शांति का उद्‌घोष है, गांधी दर्शन की अहिंसा का समाहार है । वे रक्तपात, हिंसा और युद्ध के समर्थक नहीं हैं, बल्कि दूधिया मुसकान और शांत उज्ज्वल हास के मंगल गायक है ।[88] यथा :

“रे हृदय
उत्तर दो
जगत के तीव्र दंशन का
राग-रंजित, सोम-सुरभित साँस से !”[70]

हालाँकि समय-समय पर जनता में आपस में दंगे-फ़साद हुए हैं जिनका कारण जातिवाद, धार्मिक संकिर्णता या राजनीतिक स्वार्थ रहा है ।

इसी क्रम में कवि ने अखंड भारत की कल्पना की है । कवि की

रचनात्मक आस्था है कि 'प्यार की किरणें, मधु स्नेह के झ़रने, अशिव के गढ़ को ढहा देने वाले काले मेघ' आएँगे, जिससे 'महाबर्बर विनाशी आपसी दंगा' नष्ट होगा और हमें विरासत में अपनी भूमि की संस्कृति प्राप्त होगी ।[71]

कवि की भावना है कि जो बेकसूर लोगों पर अत्याचार करते हैं, हिंसा करते हैं, उन्माद में मतवाले बनते हैं उनको मिटाना है ।

"मिटाना है उसे -

जिसने बनाई धधकती बारूद-घर दरगाह !

इन गंदे इरादों से

नए युग की जवानी

तनिक भी होगी नहीं गुमराह !"[72]

कवि की मान्यता है कि हिंसा, पशुता, रक्तपात और क्रूरतापूर्ण संसार की तस्वीर को बदल देना है ।

'नये इन्सानों से' नामक कविता में कवि ने इस सत्य का उद्‌घाटन किया है कि मनुष्य भयानक रूप से स्वार्थी है, वह अपने घर, अपने परिवार, अपनी जाति, अपनी भाषा, अपने प्रांत और अपने धर्म के बारे में ही सोचता है । इस सीमित सोच के कारण वह नरभक्षी जानवर बन जाता है । इस स्वार्थी, सड़ी-गली, रोगी मानसिकता को तोड़ना आवश्यक है । कवि ने नव जवानों को आह्‌वान किया है :

'नए इन्सानो !

आओ, क़रीब आओ

और मानवता की ख़ातिर

धर्म-विहीन, जाति-विहीन

समाज का निर्माण करो ।'[73]

वस्तुतः महेन्द्र भटनागर का काव्य मानवीय अवमानना के ख़िलाफ़ मानवीय प्रतिष्ठा का काव्य है । वह शुभ मानवी संवेदना के दीप की अनवरत

साधना के अनुकूल साहस और संघर्ष का काव्य है । वह मनुष्य की संभावनाओं की कविता है जिसमें निराशाओं, वर्जनाओं, यातनाओं, विकृतियों और विसंगतियों के बीच सार्थक ज़िन्दगी जीने की एक ललक है । उसमें अँधेरे के खिलाफ जुझारू तेवर हैं, विध्वसंक भँवरों के बीच संतरण का साहस है ।

राजनीतिक स्वार्थ :

महेन्द्र भटनागर की रचनाओं का वर्ण्य-विषय सामाजिक यथार्थ तथा देश-विदेश में घटित होनेवाली विविध राजानीतिक घटनाएँ भी रही हैं; जो उनके शीर्षकों को देखने से ही भली-भाँति ज्ञात हो जाता है । बलिया सन् 1942, बंगाल का अकाल, नौ-सैनिक विद्रोह, सांप्रदायिक दंगे, देशी रजवाड़े, मलान सावधान, मालवानां जय, आदि तमाम रचनाएँ इस कथन का प्रमाण हैं ।

महेन्द्र भटनागर जी ने महानगरीय जीवन के तनाव, अकेलापन, व्यस्तता या राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण बहुत कम कविताओं में किया है । राजनीतिक गतिविधियों का चित्रण यदि मिलता है तो उसका कारण यह था कि - “प्रगतिवादी कवि वर्तमान से असंतुष्ट था । इस असंतोष की अभिव्यक्ति मुख्यतः व्यंग्य के रूप में हुई है । स्वाधीनता पूर्व के दिनों में व्यंग्य के विषय सीमित रहे हैं, किन्तु स्वातंत्र्योत्तर काल में इनकी संख्या बहुत बढ़ गई है । इनमें अधिकांशतः राजनैतिक क्षेत्र के व्यक्ति, उनके राजनैतिक क्रिया-कलाप, राजनैतिक प्रशासनिक घटनाएँ मुख्य हैं ।”[74]

राजनीतिक स्वार्थ और पूँजीपतियों की प्रवृतियों का प्रगतिवादी कवियों ने अपनी कविता में खुलकर चित्रण किया है । कवि सुमित्रानंदन पंत ‘धनपति’ कविता में कहते हैं -

“अहमन्य वे, मूढ़ अर्थ बल के व्यभिचारी !
सुरांगना, सम्पदा, सुराओं से संसेवित,
नर-पशु वे : भू भार : मनुजता जिससे लज्जित !”[75]

वस्तुतः सुमित्रानंदन पंत धनपतियों को उदेश्य बनाकर कहते हैं कि ये लोग अन्य लोगों के श्रम से अपना पोषण करते हैं । ये धनवान लोग जोंक जैसे हैं जो लोगों का शोषण करते हैं । वे नैतिकता से दूर अनैतिक आचरण

करते हैं । ये व्यभिचारी हैं । सुरा और सुंदरी के मद में रहते हैं । ऐसे मनुष्य समग्र मानवता के लिए कलंक हैं। यही कलंक राजनीति में है । जो लोग राजनीति में होते हैं वे मनुष्य जाति का इसी तरह शोषण कर अपना पोषण करते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं ।

अतः पूँजीवादी अभिशाप से क्षुब्ध होकर कवि उसे समूल उखाड़ फेंकने तथा नष्ट-भ्रष्ट कर देने की आकांक्षा रखता है । पूँजीवादियों द्वारा किये जा रहे अपराधों को वह सबसे धृणित अपराध मानता है तथा हर क़ीमत पर उसका अंत करना चाहता है । राजनीति में भी यह शोषण पूँजी के माध्यम से किया जाता है । राजनीति के आड़ में कई प्रकार के स्वार्थ सिद्ध किए जाते हैं। जिसमें चाटुकारिता, सिफारिश, अन्याय, अनीति और शोषण जैसे दूषणों का समावेश है ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ देश की बागडोर देश के राजनेताओं के हाथ लगी । कवि संतुष्ट हुआ । उसमें आशा जगी की खुशहाली घर-घर पहुँचेगी; लेकिन थोड़े ही दिनों में उसकी आशा पर पानी फिर गया तथा उसकी सारी कल्पनाएँ एवं उँची आकांक्षाएँ ध्वस्त हो गयीं, फलतः आजादी के प्रति क्षोभ की भावना उत्पन्न हुई । आजाद भारत में भी कवि को पूँजीवादी तत्वों की प्रमुखता दिखलाई दी । उसने उसके खिलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद की -

"खादी ने मलमल से अपनी साँठ-गाँठ कर डाली है ।
बिडला टाटा डालमिया की तीसों दिन दिवाली है ।
जोर जुलम की आँधी चलती बोल नहीं कुछ सकते हो ।
समझ नहीं पाता हूँ कि हुकूमत गोरी है या काली है !"[76]

ब्रिटिश शासन की बदौलत समाज की स्थिति अत्यंत बदतर हो गयी थी । जन-जीवन का साँस लेना दूभर हो गया था, देश विदेशी शासन की ज़ंजीरों में बुरी तरह जकड़ चुका था । प्रगतिवादी कवि ब्रिटिश शासन को रावण के शासन के समान समझता है, उसके शासकों के दंभ को रावण का दंभ समझता है तभी तो वह राम को संबोधित करता हुआ, उनसे जगने का आह्वान करता है :

"तुम जन मन रक्षक वीर ! धनुष कर में लो,

मानव-मैत्री की उल्का नभ में चमको ।"[77]

प्रगतिवादी कवियों ने अपनी कविता को सचोट बनाने के लिए मिथकों का प्रयोग किया है । 'कनुप्रिया' एवं 'अंधायुग' मिथकीय प्रयोग की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं । युद्ध की समस्या 'अंधायुग' के मूल में है । महाभारत के पौराणिक मिथक के द्वारा कवि ने यहाँ आधुनिक युग में निरंतर मँडरा रहे युद्ध की समस्या तथा उस युद्ध के बाद होनेवाले विनाशकारी प्रभावों को बारीक़ी से उभारा है । आज प्रत्येक देश अणुबम के निर्माण में प्रयासरत है और यह अणुबम कब मानव का विनाश कर डालेंगे, कहा नहीं जा सकता । 'अंधायुग' का 'ब्रह्मास्त्र' और कुछ नहीं अपितु आधुनिक युग का अणुबम ही है । इसीलिए कवि वर्तमान विश्व में युद्ध की संभावित घटना का संकेत करता हुआ ब्रह्मास्त्र - जिसे आधुनिक संदर्भ में अणुबम भी कहा जा सकता है - के प्रयोग से होने वाले विनाश की ओर संकेत करता है -

"ये दोनों ब्रह्मास्त्र अभी नभ में टकरायेंगे

सूरज बुझ जायेगा ।

धरा बंजर हो जायेगी !"[78]

युद्ध के विनाशकारी प्रभाव को कवि बार-बार प्रकट करता है तथा उसके माध्यम से विभिन्न देशों को एक तरह से युद्ध से विरत होने का संदेश देता है ।

डॉ. महेन्द्र भटनागर ने भी राजनीतिज्ञ स्वार्थपरखता का चित्रण किया है । समाज में निर्धनता कायम रखने के मूल में सम्पति-संचय की भावना है । ऐसे रक्त-पिपासु समाज का अंत ज़रूरी है । 'रक्षा' शीर्षक कविता में कवि कहता है :

"देश की नव देह पर

चिपकी हुई

जो अनगिनत जौंकें-जलौकें,

रक्त-लोलुप

लोभ मोहित
बुभुक्षित -
आओ
उन्हें नोचें-उखाड़ें,
धधकती आग में झोंकें ।”[79]

महेन्द्र भटनागर के काव्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनके काव्य में विचारधारा इस तरह घुलमिल कर सामने आयी है जैसे हवा में गंध, जिसे महसूस तो किया जा सकता है लेकिन देखा नहीं जा सकता । यह बात अलग है कि कहीं-कहीं गंध तेज़ हो उठी है ।”[80]

“न्याय आधारित
व्यवस्था के लिए
प्रतिबद्ध हैं हम,
त्रस्त दुनिया को
बदलने के लिए सन्नद्ध हैं हम ।”[81]

शोषित मानव समुदाय को मुक्त कराने हेतु कवि को जागरण का जनवादी गीत गाना होगा -

“नग्न दुर्बल त्रस्त पीड़ित नत बुभुक्षित जो रहे हैं,
दुःख क्या अपमान कटुतर ही सदा जिनने सहे हैं,
जो तिरष्कृत आज तक, उनको उठाता जा रहा हूँ ।”[82]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीतिक वातावरण ऐसा निर्मित हुआ कि जिसमें आम आदमी का शोषण यथावत् बना रहा । कवि महेन्द्र इस वेदना को शब्दों में चित्रित करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं । इतना भयावह था समय ।”[83]

यह समय आम आदमी के लिए सर्वथा प्रतिकूल था । उसे हर मोड़ पर असफलता का शिकार होना पड़ता था । इसका कारण पूँजीवाद और राजनीतिक भ्रष्टाचार था ।”[84]

‘भिखारिन’ कविता में कवि महेन्द्र भटनागर ने रोटी-कपड़े की

समस्या, जो अकाल - निर्मित थी, का वर्णन किया है । राजनेताओं ने भूखी जनता के लिए कुछ नहीं किया । नर-कंकालों के ढेर लगते गये । इस घटना के पीछे राजनीतिज्ञों की असमर्थता जिम्मेदार है ।

'अंतराल' काव्य-संग्रह की 'मनुज-जीवन' शीर्षक कविता में कवि प्रश्न करता है कि आज कोई न्याय क्यों नहीं कर पा रहा । इसका कारण मात्र स्वार्थ है । आज की राजनीति स्वार्थ पर आधारिताा है । कवि कहता है :

"कर न सकता न्याय कोई
स्वार्थ में जकड़ा हुआ जग ।"[85]

"सन्' 1943 से 1947 तक का युग राजनीतिक दृष्टि से विशेष हलचल का युग रहा है । इस युग में कम्युनिस्ट पार्टी को वैधानिक संस्था के रूप में विकसित होने का अच्छा सुयोग प्राप्त हुआ और उसकी सदस्यता में भी आश्चर्यजनक वृद्धि हुई ।"[86] राजनीतिक आन्दोलन में कवि महेन्द्र भटनागर प्रत्यक्ष शामिल नहीं हैं; मगर कविता के माध्यम से वे सक्रिय रहे हैं । उन्होंने पूँजी पर आधारित स्वार्थमय राजनीतिक व्यवस्था को लताड़ा है और प्रजा को उसके गंदे स्वरूप से परिचित करवाया है । 'अभियान' संग्रह की 'मृत्यु-दीप'[87] शीर्षक कविता में कवि महेन्द्र भटनागर ने द्वितीय विश्वयुद्ध की विनाश लीला का चित्रण किया है ।

"युद्ध के पश्चात् अन्य देशों के समान ही भारत में भी जन-जागृति की लहर आई । साम्राज्यवादी दासता से मुक्ति पाने के लिए यहाँ की जनता भी अन्य देशों के समान संघर्ष करने के लिए उतावली हो रही थी परन्तु उस समय देश का नेतृत्व, उसका नेतृत्व करने के लिए तैयार नहीं था ।"[88] इसी परिस्थिति का अंकन 'पराजय' शीर्षक कविता में कवि ने किया है :

"मिल रही है हार !
मनुज का व्यवहार क्या ?
सभ्यता विस्तार क्या ?
स्वार्थ की दुर्भावना से मिट रहा संसार ।"[89]

"ब्रिटिश शासन से भारतीय जनता में असंतोष पैदा हुआ । जिसका विरोध जनता से बढ़कर सेनाओं में भी पहुँचने लगा ।" फरवरी 1946 में भारतीय नाविक सैनिकों ने, बम्बई, कराची और मद्रास में एक साथ ही विद्रोह कर दिया । इस विद्रोह को दबाने के लिए जब भारतीय सेनाएँ भेजी गईं तो उन्होंने नाविकों पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया ।"[90]

'नौ-सैनिक विद्रोह' कविता में कवि महेन्द्र भटनागर ने ब्रिटिश शासन की कूटनीति का वर्णन किया है -

"यह साम्राज्यवादी गढ़ विकल हो बोखलाया था,
जिसने शक्ति का कण-कण कुचलने में लगाया था ।"[91]

तो साथ ही

"पशुता का आदिम रूप वही उतरा है फिर से धरती पर,
भीषण नर-संहार मचा है, गूँजा सामूहिक क्रन्दन स्वर !"[92]

तत्कालीन राष्ट्रीय एवं सामूहिक जीवन की त्रासद अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए कवि ने जनवाणी को रचना का माध्यम बनाया है । वे ऐसे त्रस्त, शोषित, सर्वहारा लोगों को स्वयं अपनी रक्षा करने का आह्वान करता है :

"त्रस्त-शोषित-सर्वहारा-वर्ग
रक्षा के लिए
अपना उठाये सिर,
चुनौती दे रही उसको -
सतत साम्राज्य-लिप्सा-रक्त नद में
वर्ग जो डूबा हुआ ।"[93]

स्वतंत्रता के पश्चात् का समय संक्राति का समय था । एक तरफ़ आज़ादी तो दूसरी ओर भारत-पाक विभाजन । जिससे आम जनता को शोषण और अत्याचार का सामना पग-पग पर करना पड़ा था । 'तूफान' कविता में कवि कहता है :

"हिंसक और भक्षक
व्यक्ति का भीषण
शुरु हो गया है नाच
नंगा नाच !"

x x x x x

"राजा, काल्पनिक भगवान, डिक्टेटर
हुकुमत के ज़माने के
कफ़न पर कील अन्तिम ।"[94]

"स्वतंत्र हो जाने के बाद भी भारत के विरुद्ध विदेशी साम्राज्यवाद के कुचक्र सक्रिय थे ।"[95]

"देश की जनता को इन राजनेताओं से काफी उम्मीदें थीं । लेकिन स्वराज्य प्राप्ति के बाद उनके महान लक्ष्य में भी परिवर्तन उपस्थित हुआ । एक ओर देश की परिस्थितियाँ दिनों-दिन विषम होती जा रही थीं, समस्यायें मुँह बाये खड़ी थीं तो दूसरी ओर राजनेता पद एवं अधिकार प्राप्ति की स्वार्थ लिप्सा में संलग्न थे । इस प्रकार व्यक्तिगत स्वार्थ-लिप्सा के चलते देश की परिस्थितियों एवं समस्याओं को नज़रन्दाज कर दिया गया । फलतः परिस्थितियाँ और जटिल होती गयीं ।"[96]

कवि महेन्द्र भटनागर 'देशी रजवाड़े' शीर्षक कविता में स्वतंत्रता-पूर्व के राजनीतिक माहोल का वर्णन करते हुए लिखा है :

"राजा और नवाब विलासी
महलों में सुख के भर साधन,
फ़ौज पुलिस के गुर्गों से जो
लगवाते जन-जन को फाँसी !

धार्मिक संकिर्णता, हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव, जाति-पाति में भेद डालने का कार्य देशी रजवाड़ों में भी था । अंग्रेजों ने उसका फायदा उठाया ।

कहना न होगा कि देश की जनता में जिस आज़ादी की प्राप्ति के लिए ललक समायी हुई थी तथा जिसे प्राप्त करने के बाद उसके अंतस में बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ हिलोरें ले रही थीं, वे सभी आकांक्षाएँ एक-एक कर ध्वस्त होने लगीं। तत्कालीन शासन की स्थिति का चित्रण करता हुआ कवि कहता है :

"तम का छाया-नर्तन

आतंक भरा शासन ।"[97]

शोषणखोरों को कवि चमगादड़, मौत के सौदागर और ख़ून के प्यासे दानव की उपमा देता है -

"चमगादड़ों का उल्लुओं का

मौत के सौदागरों का,

ख़ून के प्यासे हज़ारों दानवों का

ज़िन्दगी के दुश्मनों का

भूत की छाया सरीखा

आज डेरा ।"[98]

"विदेशी सत्ता से अंतिम और निर्णायक युद्ध के क्षणों में कवि की लेखनी स्वाभाविक रूप से अग्नि, ज्वाला, क्रांति, हुंकार, झंझा, विप्लव, भूकंपन का चित्रण करती है ।"[99] विदेशी सत्ता से मुक्ति पाकर कवि की आत्मा विराम पर नहीं पहुँची है, क्योंकि अभी तो समर शेष है ।"[100]

स्वाधीनता के उषा काल में केवल राजनीतिक मुक्ति से तृप्त न होकर कवि महेन्द्र भटनागर ने प्रगति को रोकनेवाली शक्तियों के टूटने का भी परिदृश्य अपनी कविताओं में प्रस्तुत किया है ।

कवि महेन्द्र भटनागर स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर युग-दृष्टा रहे हैं । वे इस समय में घटित राजनीतिक घटनाओं के प्रत्यक्ष या परोक्ष साक्ष्य रहे हैं। 'नयी दुनिया' शीर्षक कविता में कवि ने राजनीतिक अंधकारमय माहौल में आम आदमी की क्या स्थिति होती है उसका वर्णन किया है । यथा :

"तम के बादल काले-काले

गरज रहे है बन मतवाले

घिरती घोर अँधेरी छाया

घेर रही मन को छल-माया ।"[101]

अत्याचार के माहौल से आम जनता का जीना दूभर हो गया है । यथा :

"उठता आता धुआँ गगन से

व्याकुल मानव क्रूर दमन से ।"[102]

कवि मानता है कि नयी सृष्टि के लिए ध्वसं की आवश्यकता है । यही मन्तव्य कवि के नवयुग की रूपरेखा में प्रकट हुआ है । ऐसी कविताओं की संरचना में प्रजातांत्रिक और समाजवादी व्यवस्था के शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

सामाजिक वातावरण ऐसा था कि कहीं कोई प्रगति संभव नहीं थी । चारों और युद्ध की भयानकता और विध्वंस चल रहा था । 'संग्राम' का कवि कहता है :

"आज जीवन की अमरता सोचना, अभिशाप है ।"[103]

चारों और युद्ध की भयंकरता से सामाजिक वातावरण श्मशान जैसा हो गया था । यथा :

"रुग्ण जीवन-डाल, पल्लवहीन,

निर्बल, सूख प्राणों का गया रस,

दृष्टि खोयी-सी, मनुज की चेतना

को नाश के तमने लिया ग्रस ।"[104]

परिस्थितियों से लड़ते-लड़ते आम आदमी की सोच बंद हो जाती है । स्वतंत्र रूप से समाज की प्रगति नहीं हो पाती । 'पाषाण-उर' में कवि लोगों की मानसिकता पर प्रकाश डालते हैं :

"बढ रही है विश्व-भक्षक प्यास,

पी चुका इतना की अटकी साँस,

है नहीं कोमल अधर पर हास,

क्रूरता, हिंसा, नहीं विश्वास,

कर्ण-भेदी गा रहा फूहड़ घृणा का गान !"[105]

कवि महेन्द्र भटनागर ने राजनीतिक इतिहास को कविता में प्रस्तुत किया है । द्वितीय महायुद्ध में ब्रिटन ने भारत को युद्ध में बिना पूछे धकेल दिया । जुलाई, सन् 1940 के काँग्रेस कार्यकारिणी के पूना अधिवेशन में शासन अधिकार के बदले ब्रिटिश साम्राज्यशाही को युद्ध में सहायता देने का प्रस्ताव रखा गया जिसको लेकर गांधीजी तथा अन्य नेताओं में वाद-विवाद हुआ । गांधीजी का कहना था कि मूल्य लेकर हिंसा में सहयोग देना अहिंसा के सिद्धांत के प्रति अविश्वास प्रकट करना है ।[106] कवि कहता है :

नीतियों औ' वाद कितने,

भिन्न जग के नाद कितने

दे रही प्रतिपल सुनायी

आज ज़ोरों से मनाही ।"[107]

सरदार पटेल का कहना था कि "जब गांधी जी ब्रिटेन को युद्ध में सहायता देने में बुराई नहीं समझते तो इस सहायता का मूल्य क्यों न ले लिया जाये ।"[108] अतः सन् 1940 में जिस समय नाज़ी फौजें योरोप में बढ़ती जा रही थी; काँग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से युद्ध में सहायता के बदले केन्द्र में अस्थायी सरकार की माँग की ।"[109] ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग का बहाना लेकर काँग्रेस की माँग को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि काँग्रेस देश की जनता के एक महत्वपूर्ण अंग, मुस्लिम जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करती है ।"[110]

इन्हीं दिनों, "22 जून 1941 को हिटलर ने एकाएक सोवियत रूस पर आक्रमण कर दिया । जिसके फलस्वरुप एक नवीन स्थिति उत्पन्न हो गई । रूस मित्र राष्ट्रों में सम्मिलित हो गया । उधर फ़ासिस्त जापान ने आक्रमण आरंभ किया और बरमा को जीतता हुआ भारत की सीमा पर पहुँच गया ।"[111]

कवि महेन्द्र भटनागर ने 'इतिहास' शीर्षक कविता में मनुष्य की विश्व-विजेता बनने की लालसा को प्रकट किया है । यथा :

"बढ़ रही मन में निरंतर
मनुज के आ विश्व-भक्षक प्यास ।
विश्व अस्थिर, प्रति चरण पर
बन रहा है नित्य नव इतिहास ।"[112]

स्वार्थी शासकों के दमन और अत्याचार से शोषित प्रजा असहाय हो गयी । स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ निकलती थीं मात्र चीत्कारें और आहें । यथा :

"कण-कण गया भू का सिहर,
उर में बही भय की लहर
हिंसक बढ़े जब घिर अमित,
क्रन्दन, मरण जन-जन दमित
दुर्बल जगत सारा हुआ आहत !"[113]

चारों ओर दमन, अत्याचार और अनीति का माहौल था । सर्वत्र दयनीय स्थिति थी ।

"न्याय के स्वर पर दबी थी विश्व-जन-जन
की करुण दुख से भरी वाणी सतायी ।"[114]

'मुझे है याद' शीर्षक कविता तो अंग्रेज़ सल्तनत के अत्याचारों और दमनचक्र का सांगोपांग चित्र प्रस्तुत करती है ।

"प्रथम विश्वयुद्ध के अवसर पर गांधी और तिलक ने अंग्रेज़ों की सहायता की लेकिन बाद में देशवासियों को दमन और अत्याचार के रूप में इस सहायता के कड़वे परिणाम चखने पड़े । इसीके पश्चात् रौलट एक्ट का विरोध तथा जलियावाला बाग का नृशंस हत्याकांड भी घटित हुआ ।"[115] कवि महेन्द्र भटनागर क्रूर शासकों के अमानुषिक कृत्यों को याद करते हुए 'मुझे है याद' शीर्षक कविता में कहते हैं :

"मुझे है याद तेरा क्रूर पागल-रूप हत्यारा,
बहायी थी जमीं पर बेरहम जब रक्त की धारा,
जलाये गाँव थे पूरे, उजाड़ी बस्तियाँ अगणित
मुझे है याद जुल्मों का दमन इतिहास वह सारा ।"[116]

और -

"कि तेरे राज में हमने जवानी को मिटाया है,
ठिठुरते नग्न बच्चों को सदा भूखा सुलाया है,
सुनहली भवन-जीवन-स्वप्न की दुनिया बनाने की
हमारी कामना को धूल में तूने मिलाया है !"[117]

'जिन्दगी की शाम' तक पहुँचकर कवि अपने आपको एकदम थका-हारा महसूस करता है । क्योंकि स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल में उसे कुछ हासिल नहीं हुआ । अपनी व्यथा का गान करता हुआ कवि कहता है :

"अन्याय अत्याचार के
अगणित प्रहारों से दमित !
अभिशाप-ज्वाला का जला,
निर्मम व्यथा से जो दला
जिसको सदा मृत-नाश का
परिचय मिला
जो दुर्दशा का पात्र ।"[118]

सन् 1939 में प्रारंभ द्वितीय विश्वयुद्ध 1941 में जब पूर्ण हुआ तब वैश्विक स्तर पर कई परिवर्तन हो चुके थे । महासत्ताओं का भी पतन हो चुका था । सन् 1942 में 'भारत छोडो' आन्दोलन के प्रभाव स्वरुप भारत में चारों ओर हिंसा और अत्याचार का माहौल था । कवि इस माहौल का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहता है :

"अंधकार में डूबा हुआ

घिरा संसार

समस्त नयन की सीमा तक

गहन अंधकार ।"[119]

कि जिसने सब दिशाओं को/कुटिल भय पाश में भर/मौन घेरा है ।[120]

आम आदमी की ज़िन्दगी सड़ी लाश जैसी बन जाती है । कवि कहता है :

"आज की यह ज़िन्दगी

नहीं इन्सान की अपनी सगी !

छिः यह ज़िन्दगी !"[121]

'ध्वसं और सृष्टि' में कवि महेन्द्र भटनागर ने द्वितीय विश्वयुद्ध की भयावह स्थिति का अंकन किया है । कवि कहता है इस युद्ध के परिणाम से चारों और मृत्यु की चीत्कारें सुनायी देती हैं । यथा :

"ध्वसं की आँधी चली है,

मौत की घंटी बजी है !

चीत्कारें

दुखभरी व्याकुल पुकारें !

रक्त की नदियाँ,

बहीं बन लाश की लडियाँ भयंकर !"[122]

अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये । जाते-जाते देश की अखंडता को खंडित कर गये; क्योंकि इसमें उनका राजनीतिक स्वार्थ था । वे चाहते थे भारत की प्रजा आपस में लड़े । कवि 'स्नेह की वर्षा' में कहता है :

"सब लूट कर भी ले गये

कटु आततायी क्रूर,

हँसते व्यंग्य से हो दूर

जिसने कर दिया है

देश की प्रत्येक का

चोट से प्रति अंग चकनाचूर !"[123]

कवि को राजनीतिक शोषण और अत्याचार का बड़ा कटु अनुभव हुआ है । 'जागते रहेंगे' का कवि कहता है कि जब तक व्यक्ति जाग्रत नहीं होगा तब तक शोषक आम आदमी का शोषण करते रहेंगे । इसलिए वह कहता है :

"जब तलक

अंधकार शेष इस ज़मीन पर

तब तलक

अमीर खटमलों-सा

चूसता रहेगा निर्धनों का रक्त !"[124]

'नयी दिशा' तक पहुँचकर कवि अपने-आपको पुरानी रूढ़ियों में जकड़ा महसूस करता है । इस जकड़न को दूर करके ही आगे बढ़ा जा सकता है; अतः वह वैज्ञानिक आविष्कारों का महत्व दर्शाता है । परंपराओं में बंदी बनकर हम अपना विकास नहीं कर सकते । कवि कहता है :

"चारों ओर है गतिरोध !

पथ अवरुद्ध

खंडित मान्यताएँ हीन,

जर्जर रूढ़ियों की सामने प्राचीन

फैली चीन की दीवार ।"[125]

आज राजनेता स्वार्थी और लोभी बन गया है । वह शांति, सुख और नवयुग-व्यवस्था के नाम पर विश्व में लूट मचा रहा है । चाहे वह किसी भी राष्ट्र या देश का राजनीतिज्ञ क्यों न हो । कवि कहता है :

'शांति-सुख, नवयुग व्यवस्था के लिए

वह लूट लेगा

विश्व का सर्वस्व ।'[126]

कवि ऐसे शोषकों के विरुद्ध बग़ावत करता है जो अपने स्वार्थ के लिए नवयुग की अवतारणा में बाधक है । यथा :

"नवल युग के हृदय पर मार

पैना गर्म

यह खंजर दिया जिसने -

उसीसे

कर रही है लेखनी मेरी बगावत !"[127]

युग-परिवर्तन होने से युगान्तर आता है । 'युगान्तर'[156] और 'नया समाज'[157] में कवि लोकशाही का यशोगान करता हुआ कहता है :

"करवटें बदल रहा समाज,

आज आ रहा है लोकराज ।"[128]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता यथार्थ-भूमि पर प्रतिष्ठित है । इसमें मात्र कल्पना को कोई स्थान नहीं । इसीलिए 'छलना' का कवि कहता है -

"कि मैंने आज

जीवित सत्य की

तसवीर देखी है

जगत की ज़िन्दगी की

एक व्याकुल दर्द की

तसवीर देखी है ।"[129]

कवि की दृष्टि में 'धर्म' मानव को समाज में रहने का सम्बल प्रदान करता है तथा 'कर्म' से व्यक्ति अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध कर सकता

है। कवि मनुष्य को यही सीख देता है कि तुम अपने जीवन के सार्थक्य को सिद्ध कर दिखाओ । यथा :

"धर्म मानव का बसाना है तुम्हें
कर्म जीवन का दिखाना है तुम्हें ।"[130]

जड़ और रूढ़िगत मान्यता वाले लोगों को कवि नये युग में नये विचारों से प्रेरित होकर अपनी दशा सुधारने की सलाह देता है । यथा :

"नये विचार लो !
समाज की गिरी दशा सुधार लो,
सुधार लो !"[131]

यहाँ कवि ने समाज और देश के कर्णधारों को समाज की स्थिति सुधारने और प्रगतिशील, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर चलने की बात की है । साथ ही, कवि समाज को ग़लत राह पर ले जाने वाले स्वार्थी राजनीतिज्ञों के चंगुल से दूर रहने की बात करता है ।

"हमें अब जान लेना है
विनाशी तत्व घातक है वही
जो आज यह झूठा तिमिर करते विनिर्मित,
और रक्षक-दीप बनने का
विकल गीदड़ सरीखा स्वाँग भरते हैं !"[132]

कवि ने यहाँ स्वार्थी और प्रतिक्रियावादी शक्तियों की ओर अंगुलीनिर्देश किया है ।

"कवि का सामूहिक स्वर जनता का स्वर है,
उसकी वाणी आकर्षक और निडर है !
जिससे दृढ़-राज्य पलट जाया करते हैं ।"[133]

"महेन्द्र भटनागर प्रतिबद्ध कवि हैं, पर यह प्रतिबद्धता किसी राजनीतिक पार्टी के प्रति नहीं है । उनकी यह प्रतिबद्धता मानव-समता के प्रति

है । यही कारण है साम्यवाद के अत्यधिक निकट दिखाई देते हैं । वस्तुतः मानवतावाद ही उनके साहित्य का मूल संवेद्य है ।"[134]

एक प्रबुद्ध रचनाकार के नाते उन्होंने युग की विरूपताओं से आँखें मिलाने का साहस किया है । उन शक्तियों को पहचानने की कोशिश की है, जो आज के जनजीवन का गला घोंटने को आतुर हैं । कहीं साम्राज्यवाद, कहीं पूँजीवाद और कहीं फासिज़्म का रूप धारण कर एटमी खतरों को जन्म दे रही हैं । एक ईमानदार समाजचेता कवि के रूप में महेन्द्र भटनागर ने युग की इस विरूपता के खिलाफ़ आवाज़ उठायी है । 'झुकना होगा', 'सावधान', विनाश-लीला, 'बंद करो' जैसी कविताएँ इसी प्रकार की हैं ।

कवि स्वार्थी राजनीतिज्ञों और शोषणखोरों को चुनौती देता कहता है :

"जितना ज़्यादा निर्धन जनता को लूटोगे
उतना ही बदले में मूल्य चुकाना होगा !
जितना ज्यादा भोली मानवता पर
चढ़ इतराओगे
उतना ही उसके सम्मुख
घुटनों के बल झुकना होगा ।"[135]

कवि स्वार्थी लोगों को सावधान करता है कि तुम्हारे शोषण का चक्र अब और ज़्यादा देर तक नहीं चलेगा अतः तुम सावधान हो जाओ । यथा :

"अब और न चल पायेगी परदापोशी,
भंग हुई है गत युग की जड़ता बेहोशी,
सावधान हो जाओ ओ ! जनपथ के द्रोही
युग है दलितों का, जिसकी बाट सदा जोही ।"[136]

एटमबॉम्ब के आविष्कार से जब सम्पूर्ण सृष्टि विनाश के मुहाने पर खड़ी हो, जब पृथ्वी पर से जीवन समाप्त करने की तैयारी हो रही हो तो ऐसे में कवि की वाणी मौन कैसे रह सकती है ? विश्व में व्याप्त संकटों, में यह

संकट आज सर्वोपरि है; क्योंकि यदि इस समस्या का उचित समाधान नहीं किया गया तो सम्पूर्ण सृष्टि ही विनष्ट हो जायेगी । अतः इस संकट की स्थिति में यह आवश्यक है कि इस समस्या के समाधान को प्राथमिकता दी जाये । कवि कहता है :

"यंत्र दैत्य चिंघाड़ रहे हैं,
नभ की छाती फाड़ रहे हैं
अणु का वैश्वानर जलता है
धुँआ नागफन बन उठता है
नभ में तनी शक्ति की भुज है
और दूसरी ओर मनुज है"[137]

तो कवि महेन्द्र भटनागर का कवि कहता है :

"अमित पुरुषार्थ
अजिवित शक्ति
उज्ज्वल शांति के विश्वास को लेकर
सुखद सुन्दर नयी दुनिया बसाने को
करोड़ों हाथ कसकर
आज जो तैयार हैं,
जन-शक्ति के सम्मुख
रुआँसा लड़खड़ाता रोष
एटम बॉम्ब का
बेकार है, बेकार है ।"[138]

इस सम्बन्ध में कह सकते है कि भारत प्राचीनकाल से ही मैत्रीपूर्ण संबंधों का समर्थक रहा है । स्वार्थ और शोषण की गंदी राजनीति में आम आदमी का जीना दूभर हो गया है । मानव का व्यक्तित्व आज खंडित हो गया है। उस खंडित व्यक्तित्व को सहेजना-सँवारना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर होता जा रहा है ।

उसे तो सर्वत्र कड़वाहट सुलभ मालूम पड़ती है । मधुरता उसके लिए दुर्लभ है । सर्वत्र घबराहट प्रकट है, सर्वत्र झुँझलाहट, आडम्बर, बनावट है । 'वस्तु-स्थिति' शीर्षक कविता में इसी भावना का वर्णन है :

"सर्वत्र

घबराहट प्रकट

जीवट विरलता

सर्वत्र

आडम्बर-बनावट

दूर कोसों वास्तविकता ।"[139]

'हमारे इर्द-गिर्द' शीर्षक कविता में कवि ने भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के कारण जनता का कोई विकास नहीं हुआ - इस विसंगति पर प्रकाश डाला है :

"मेरे देश में

ओ करोडों मजलूमों !

तुम्हें

अभी फुटपाथों से

छुटकारा नहीं मिला ।"[140]

'घूमिल' ने अपनी कविता में ऐसा ही असंतोष व्यक्त किया है :

"ऐसा जनतंत्र है जिसमें

ज़िन्दा रहने के लिए

घोड़े ओर घास को

एक जैसी छूट है ।"[141]

भ्रष्ट राजनीतिज्ञों और नेताओं की दकियानूसी बातों का पर्दाफाश करता हुआ कवि कहता है :

"मोटे मोटे खादी पोश,

बदकिरदार व्यापारियाँ-पूँजीपतियों,

मकान-मालिकों, कॉलोनी-धारियों,

वकील नेताओं के

मुँह में यथा-पूर्व

विराजमान है - 'गाँधी' ।"

"मेरी पूरी पीढ़ी हैरान है ।

नेतृत्व कितना बेईमान है ।"[142]

इन स्वार्थी राजनीतिज्ञों के बड़े-बड़े आश्वासनों से जनता उन्हें अपना नेता चुनकर राज सौंपती है; मगर आखिर ये अपनी स्वार्थ-पूर्ति में ही लग जाते हैं ।

स्वार्थी नेताओं और उनकी गंदी राजनीति से 'कानून' कानून न रहकर मात्र किताबी लिखावट रह गया है । नेता लोग अपनी गंदी करतूतों को छिपाने के लिए अत्याचार करते हैं । 'जीने के लिए' शीर्षक कविता में कवि ऐसे 'कानून' का पर्दाफ़ाश करता है जो मात्र कहने के लिए कानून है । ऐसे कानूनों से लोगों का खून चूसा जाता है । यथा :

"सभ्य प्रदेशों में

ज़िन्दा

बर्बर 'कानून' है,

सर्वत्र -

खून ही खून है !"[143]

राजनीति क्षेत्रीयवाद को भी जन्म देती है; जिससे संघर्ष उत्पन्न होता है । सन् 1986 में भाषा को लेकर जो दंगे हुए; उनसे कवि मर्माहत हुआ । यथा :

"इसने

उसको

भून दिया

गोली से,

क्योंकि

भिन्न था

वह

बोली से"[144]

कवि महेन्द्र भटनागर उन सबको मिटा देना चाहते हैं जो जाति, धर्म, देश और समाज के नाम पर हिंसा करवाते हैं । यथा :

"मिटाना है उसे -

जो कर रहा हिंसा

मिटाना है उसे -

जो धर्म के उन्माद में

फैला रहा नफ़रत,

लगाकर घात

गोली दागता है

राहगीरों पर

बेकसूरों पर

मिटाना है उसे -"[145]

'नये इंसानो से' शीर्षक कविता में कवि ने मानव की मानसिकता पर अधिक गहराई में जाकर सोचा है । वर्तमान में मनुष्य की जो सोच है उसके बारे में कवि कहता है कि हम पहले अपने घर-परिवार के लिए सोचते हैं । बाद में अपने धर्म, जाति, प्रांत, भाषा, अपनी लिपि आदि के लिए । उनकी रक्षा के लिए खून की नदियाँ बहाने से भी हम डरते नहीं । पडोसी को गोलियों से भून देते हैं । धारणा बना लेते हैं कि हमारे 'महान' और 'शहीद' बनने का एक मात्र रास्ता इसीमें है । और हम इस सोच से मुक्त नहीं हो पाते । हमारा ईश्वर भी हमें बार-बार दूसरों के ईश्वरों की हत्या करने के लिए उकसाता है । हम उनके ईश्वर अस्तित्व के चिन्ह तोड़ देते हैं । ऐसा करके हम यह मानतें है कि इस कार्य के लिए ख़ुदा हमें स्वर्ग में स्थान देगा । कवि ऐसी दकियानूसी सोच से नये इन्सानों को बाहर लाना चाहता है । वह

मानवता की ख़ातिर धर्म-विहीन, जाति-विहीन समाज के निर्माण का आह्वान करता है -

"नये इन्सानो !

आओ क़रीब आओ

और मानवता की ख़ातिर

धर्म-विहीन, जाति-विहीन

समाज का निर्माण करो ।"[146]

कवि कहना चाहता है कि जब बनाने वाले ने सबको एक समान बनाया है तो हम क्यूँ उसको विभाजित कर आपस में संघर्ष पैदा करें ? ये मनुष्य की ही बनायी गई कृत्रिम सीमा-रेखाएँ हैं जो धर्म को धर्म से और मनुष्य को मनुष्य से अलग करती हैं । अतः इन सबको नष्ट कर देना चाहिए। यथा :

"तोड़ो -

देशों की कृत्रिम सीमा-रेखाओं को,

तोड़ो -

धर्मों की

असम्बद्ध, अप्रासंगिक, दकियानूस

आस्थाओं को, तोड़ो ।"[147]

मनुष्य की इस भेदवृत्ति से परेशान होकर कवि इक्कीसवीं सदी में नये पैगम्बर की अवतारणा की कामना करता है । यथा :

"अवतरित हो

नया देवदूत, नया पैगम्बर, नया मसीहा

इक्कीसवीं सदी का

महान मानव-धर्म

प्रतिष्ठित हो ।"[148]

क्योंकि स्वार्थी नेताओं और भ्रष्ट शासकों के रहते वर्तमान समय का माहौल गदला हो चुका है । 'माहौल' शीर्षक कविता में कवि ने इन सबकी काली करतूतों का पर्दाफाश किया है । यथा :

"देश के असली खेवनहार -

नेता अफ़सर ठेकेदार !

सारी दोलत के हकदार,

राष्ट्र-भक्त झण्डाबरदार !

इनकी तिकड़म का संसार

करदे शासन को लाचार,

हमको, तुमको बे-घरबार

ये मशहूर बड़े बटमार !

दुष्टाचारी हैं मक्कार,

है धिक्कार, इन्हें धिक्कार !"[149]

स्वार्थी शासकों के कारण आम आदमी का विकास रुक जाता है । गंदी राजनीति में जनता को नयी दिशा-प्रेरणा नहीं मिल पाती । ऐसी ही 'वास्तविकता' का कवि ने बयान किया है ।

"जिन्दगी ललक थी, किन्तु भारी जुआ बन गयी,

जिन्दगी फलक थी, किन्तु अंधा कुआँ बन गयी,

कल्पनाओं रची, भावनाओं भरी, रूप-श्री

ज़िन्दगी गज़ल थी, बिफर बददुआ बन गयी ।"[150]

कवि अपने जीवन का विश्लेषण करता है । निष्कर्ष निकालता है - जितना पाया उससे अधिक गँवाया । हर मोड़ पर उन्हें विश्वासघात और छल-कपट का सामना करना पड़ा है । उसका अफसोस यह कविता बयाँ करती है :

"गँवाया ही गँवाया,

कुछ नहीं पाया,

ज़िन्दगी में कुछ नहीं पाया !"

x x x x x

"राह पर

हर मोड़ पर घर में या कि बाहर

हाट में, बाजार में विश्वास के हाथों

सदा लुटते रहे !"[151]

यह अफ़सोस कवि का ही नहीं समग्र समाज का है ।

भोलेपन का ढोंग रचाकर जो आम जनता को छलते हैं, उनके साथ छल-कपट करते हैं, उन लोगों से कवि बचने को कहता है -

'ओढ़ी सौम्यता शालीनता की

आरोपित मुखौटों की

कठिन

बेहद कठिन

पहचानना रचना

उनके छद्म से बचना ।"[152]

जीवन की विसंगतियों को प्रकट करता कवि मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति की ओर इशारा करता है :

'उसीने छला

अंध जिस पर भरोसा किया,

उसीने सताया

किया सहज नि:स्वार्थ जिसका भला !

उसीने डसा

दूध जिसको पिलाया

अनजान बनकर रहा दूर

क्या खूब रिश्ता निभाया !'[153]

स्वार्थी राजनेता अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए गरीब प्रजा के भले की बात करते हैं और स्वार्थ-सिद्ध हो जाने के बाद अपने वचन भूलकर अपने में ही मस्त हो जाते हैं । ऐसे मोटी चमड़ी के नेताओं को कोई कुछ भी कहे उनके पेट का पानी तक नहीं हिलता । कवि कहता है :

"अपना, बस अपना

उल्लू सीधा करने

यह आदमी बड़ा मीठा बोलता है ।"[154]

मीठा-बोलकर अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवाले नेता आम प्रजा का कुछ भला नहीं कर पाते । समाज और समाज के लोग यथावत् ही रहते हैं । ऐसा कवि का अनुभव है । कवि ने जीवन में अनेक प्रकार की पीड़ाओं, अभावों, असफलताओं का सामना किया है । कवि ने अपने को 'अभिप्रेत-वंचित' पाया है । जय-जयकार और शिखर सम्मान पाने पर भी उसे मनचाहा प्राप्त नहीं हुआ, जीवन-भर का तप मानो व्यर्थ गया ! कवि कहता है :

"लगता है :

दुर्लभ जीवन गया,

जैसे भंग हुई

लगभग साधित कठिन तपस्या"[155]

निरन्तर संघर्ष करने के बाद भी आम आदमी के जीवन में खुशियों के दिन बहुत कम आते हैं क्योंकि हर जगह उनका शोषण ही शोषण होता है । 'विस्मय' का कवि कहता है कि

"कौन छीन ले गया हँसी फूलों की ?

कौन दे गया अरे, फसल शूलों की ?

कौन आह ! फिर-फिर कलपाता, निर्दय

याद दिलाकर, चिर-विस्मृत भूलों की ?"[156]

यहाँ पर कवि का इशारा भ्रष्ट राजनीति और उसके न्यायतंत्र की ओर है ।

अन्त में, कवि 21वीं शती का स्वागत करते कहता है कि आनेवाले सौ वर्षों में अंध-विश्वासों और अंध आस्थाओं से ऊपर उठ नये मानव धर्म का पूजक होगा । कवि कहता है :

"आगामी सौ वर्षो में -
स्थापित हो साम्राज्य
दया ममता करुणा का,
....
वसुधा
आप्लावित हो
उन्नत भावों - सद्भावों से,
आच्छादित हो
मर्यादित न्यायोचित प्रस्तावों से !"[157]

कवि महेन्द्र का मूल स्वर साम्प्रदायिक सोहार्द का रहा है । आस्था और विश्वास कवि महेन्द्र की काव्य-चेतना के प्रधान स्वर रहे हैं । सामाजिक यथार्थ की आस्था और अदम्य विश्वास से उत्पन्न चेतना ही उनकी धार्मिक आस्था है । विश्वव्यापी पीड़ित मनुजता ही उनकी मूल प्रेरक शक्ति है । कवि जीवन की नश्वरता को जानता है । किन्तु यह ज्ञान कवि में आलस्य और भाग्यवादी प्रवृतियों को उत्पन्न नहीं करता ।

महेन्द्र भटनागर जानते हैं कि आज के युग में संस्कृति और मानवता को विघटित होने से, ध्वस्त होने से बचाया जा सकता है तो केवल युद्ध विरोध के आधार पर ही । इसीलिए कवि धर्म-धर्म के बीच सद्भाव बनाये रखने की बात करता है । एक सम्प्रदाय को दूसरे सम्प्रदाय से नीचा न दिखाकर - समान दृष्टि से देखने वाला कवि मनुष्य को 'मानव धर्म' का ज्ञान देता है । महेन्द्र भटनागर संस्कृति के उन्नायक और मानवतावाद में विश्वास

रखनेवाले कवि हैं ।

कला के प्रति महेन्द्र भटनागर का स्पष्ट दृष्टिकोण है । मानवता के विकास, सांस्कृतिक अभ्युत्थान तथा नये जीवन मूल्यों की स्थापना में ही वे कला की सार्थकता और पूर्णता स्वीकारते हैं । मानव के हृदय में प्यार और विश्वास की भावनाओं को पनपाने के लिए, जीवन में उल्लास के प्रसार के लिए और सौन्दर्य बोध को जगाने के लिए ही वे कला-साधना को उचित मानते हैं ।

धर्म के सदर्भ में भी कवि यही दृष्टिकोण है । जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है वह धर्म नहीं । वह स्वप्न देखता है, शोषणरहित संसार के निर्माण का । श्रीमती ममता मिश्रा के शब्दों में "नए युग की अगवानी के लिए कवि सन्नद्ध है । नवीनता का वह उपासक है । प्राचीन परंपराएँ जो नवीन युग के अवतरण में बाधक हैं, वह उन्हें नष्ट कर देना चाहता है ।"[158]

कवि का जीवन-दर्शन प्रारंभ से ही स्वस्थ रहा है । उसने जीवन के उच्चतर मूल्यों को अपनाया है । आत्म-निर्भर स्वावलम्बी व्यक्ति, असफल और पराजित होने पर भी कभी हताश नहीं होता - यह उनकी कविताओं का स्वर है ।

महेन्द्र भटनागर शांति के प्रचारक कवि हैं । मानव-द्रोही नहीं । डॉ. शंभूनाथ चतुर्वेदी के शब्दों में "महेन्द्र भटनागर शांति के प्रचारक और युद्ध-विरोधी कवि हैं । वे जानते हैं कि अंतर्मन की दूषित भावनाएँ ही जन-जीवन को युद्ध करने के लिए प्रेरित करती हैं । युद्ध-विरोध के संबंध में महेन्द्र भटनागर का यह मनोवैज्ञानिक 'एप्रोच' कहा जा सकता है ।"[159] यह मनोवैज्ञानिक 'एप्रोच' ही मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है ।

कवि महेन्द्र भटनागर "भारत को सबसे बड़ा मानवतावादी देश समझते हैं । वे शांति के झण्डे का झुकना पसंद नहीं करते । न वे मानवता का रक्त व्यर्थ ही बहाने के समर्थक क्रांतिकारी कवि ही हैं ।"[160] कवि महेन्द्र भटनागर रक्तपात के पक्ष में नहीं हैं ।

"आम तौर से उन्हें प्रगतिवादी कवियों की कोटि में रखने की कोशिश की जाती है, परन्तु उनकी रचनाओं को पढ़ने से यह तथ्य बिलकुल साफ

स्पष्ट हो जाता है कि सिर्फ़ 'हँसियाँ-हथौडा मार्का' कविताएँ ही उन्होंने नहीं लिखी हैं, हर बात में चीन और रूस की ओर उनकी दृष्टि नहीं लगी रहती । प्रचारात्मक स्तर पर महेन्द्र भटनागर कविताएँ लिखना पसंद नहीं करते । उनकी रचनाओं का स्तर राजनीतिक न होकर साहित्यिक है ।"[161]

सच्चे प्रगतिशील कवि की भाँति डॉ. महेन्द्र भटनागर आशा, विश्वास, आस्था, सृजन-कामना और निरंतर प्रगति के गायन के कवि हैं ।

प्रगतिशील कवि स्वप्नदर्शी भी होता है, किन्तु वह वायवी विश्व के एकान्त कोने में, मन की काल्पनिक कुटिया बनाकर, कल्पित प्रेमी के साथ, वैयक्तिक सुख और आनन्द के स्वप्न नहीं देखता । वह स्वप्न देखता है तो शोषणरहित संसार के निर्माण के । वह स्वप्न देखता है, ऐसे विश्व के अस्तित्व के, जहाँ जाति और रंग-भेद के आधार पर मानव का मानव पर उत्पीड़न न हो, जहाँ वर्ग और धर्म के बल पर योग्यता को विकसित होने से न रोका जाता हो, जहाँ पक्षपात और अन्याय के कारण सत्य का गला न दबाया जाता हो और जहाँ महेनतकश वर्ग की कमाई पर पलनेवाला वर्ग न पनपता हो ।

प्रगतिशील कवि विश्व-बन्धुत्व की स्थापना में राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा कभी नहीं करता । वह स्वदेश की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास पर गर्व करता है । पर वह इनका अन्ध उपासक नहीं होता । वह सभ्यता और संस्कृति को अन्यों की भाँति स्थायी और अगतिशील नहीं मानता ।

कवि महेन्द्र भटनागर ने साम्प्रदायिक सौहार्द बना रहे - इसलिए किसी धर्म, संप्रदाय को निकृष्ट नहीं माना है । जहाँ पर धर्म मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में बाधक बना है; वहाँ उसका खंडन करके मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया है ।

डॉ. सुरेशचन्द्र जैन के शब्दों में महेन्द्र भटनागर का काव्य प्रगतिवाद की आधारभूमि पर पूरी तरह से खरा नहीं उतरता ।[162] क्योंकि उनका प्रगतिवाद अपनी अनुभूतिजन्य सच्चाई से मंडित होकर काव्य में प्रकट हुआ है । इसलिए कवि प्रगतिवाद के रूढ़ रूप (वाद-बद्धता) से उतने प्रभावित नहीं हैं जितने समाजोन्मुखी चेतना से दिखलाई देता हैं । कवि महेन्द्र भटनागर के शब्दों में ही कहे तो "सामयिकता की अवहेलना कर कोई भी कवि समाज के

लिए कल्याणकारी साहित्य-सृजन नहीं कर सकता । इसीलिए कवि महेन्द्र भटनागर ने 'मनुज महान धर्म' की पुनः स्थापना की बात की है ।"

कवि महेन्द्र भटनागर देशव्यापी राजनीतिक उथल-पुथल से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके हैं । किन्तु उनकी राजनीति से संबंधित कविताओं में नारेबाज़ी देखने नहीं मिलती । समाज की सारी बदियों को समाज से दूर हटाकर कवि आदर्श समाज की स्थापना करना चाहता है ।

प्रकरण-9

1. टूटती श्रृंखलाएँ, 'पाषाणउर', पृ.14
2. टूटती श्रृंखलाएँ, 'मानवी व्यापार', पृ.15
3. वहीं, 'निशा का युग', पृ.61
4. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.212
5. वहीं, पृ.227
6. विहान, 'जीवन दृष्टि', पृ.25
7. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, 'विकल है देश', पृ.32
8. वही, 'साम्प्रदायिक दंगे', पृ.232
9. 'ऑन रिलीजन' के मार्क्स एण्ड एक एंजलस, पृ.42
10. महेन्द्र भटनागर, समग्र, 'तूफान', पृ.224
11. वहीं, 'हिन्दू-मुस्लमान', पृ.241
12. वहीं, 'संयुक्त बनो', पृ.242
13. वहीं, 'देशी रजवाडे', पृ.247
14. वहीं, पृ.240
15. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : 'बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप', पृ.84
16. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, 'गांधी', पृ.193
17. वहीं, गांधी, पृ.194
18. वहीं, गांधी, पृ.194
19. वहीं, गांधी, पृ.195
20. वहीं, गांधी, पृ.196
21. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप, पृ.84
22. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, 'उदय पथ', पृ.311
23. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-2, 'प्रार्थना', पृ.377
24. कवि महेन्द्र भटनागर का रचना संसार (आलोचना), पृ.15
25. बदलता युग : 'तूफान'
26. कबीर के दोहे
27. वहीं, साखी
28. महेन्द्र भटनागर, समग्र-2, परंपरा, पृ.154

29. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, 'संयुक्त बनो', पृ.242
30. महेन्द्र भटनार समग्र खण्ड-1, 'हम एक हैं', पृ.239
31. महेन्द्र भटनागर समग्र-3, कविता 'प्रार्थना', पृ.251
32. सामाजिक चेतना के शिल्पी कवि महेन्द्र भटनागर, सं. डॉ. हरिचरण शर्मा, पृ.63
33. वहीं, पृ.64
34. वहीं, पृ.68
35. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, 'नव पथ राही', पृ.87
36. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.163
37. वहीं, 'तुलसीदास', पृ.190
38. वहीं, पृ.164
39. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.164
40. वहीं, साम्प्रदायिक दंगे, पृ.233
41. वहीं, पृ.238
42. वहीं, पृ.239
43. वहीं, साम्प्रदायिक दंगे, 233
44. वहीं, पृ.234
45. वहीं, 'हिन्दू-मुसलमान', पृ.241
46. वहीं, 'संयुक्त बनो', पृ.243
47. वहीं, पृ.243
48. छायावादोत्र हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप
49. वहीं, डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय, पृ.67
50. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप, पृ.67
51. वहीं, पृ.69
52. महेन्द्र भटनागर, 'दमित नारी', पृ.236
53. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, 'धोखा हुआ', पृ.125
54. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, 'सबेरा नया आ रहा है' पृ.56
55. सामाजिक चेतना के शिल्पी महेन्द्र भटनागर, श्री निवास शर्मा, पृ.43
56. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.40

57. वहीं, महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, जिजीविषा, पृ.41

58. वहीं, प्रतिकूलता, पृ.96

59. वहीं, पृ.97

60. वहीं, 'भिखारिन', पृ.109

61. वहीं, 'गनतव्य की ओर', पृ.120

62. वहीं, पृ.63

63. वहीं, 'मृत्यु-दीप', पृ.174

64. वहीं, 'व्यक्ति', पृ.176

65. वहीं, 'बेबसी', पृ.177

66. वहीं, 'अंतर-ज्वाला', पृ.176

67. वहीं, 'संघर्ष', पृ.180

68. वहीं, 'कुंर्षानिवा', पृ.221

69. वहीं, 'तूफान', पृ.224

70. संतरण, पृ.13

71. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.215

72. महेन्द्र भटनागर 'जीने के लिए', 'अग्न परीक्षा', पृ.33

73. जीने के लिए, 'नये सपने', पृ.69

74. 'आधुनिक कविता का अभिव्यंजनात्मक शिल्प', डॉ. हरदयाल, पृ.99

75. 'धनपति' युगवाणी सुमित्रानन्दन पंत, पृ.31

76. नागार्जुन 'हंस'-'मर्द', 1949 (प्रगतिवादी काव्य : ओशचंद्र मिश्र, पृ.155-56 से)

77. सुलोचना, रांगेय रांघव (संपा.) 'रोग का समुद्र शालन', रांगेय रांघव ग्रंथावली, खण्ड-7, पृ.74

78. 'अंधायुग', धर्मवीर भारती, पृ.56

79. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, पृ.25

80. वहीं, पृ.41

81. वहीं, 'प्रतिबद्ध', पृ.41

82. वहीं, 'युगगायक', विहान, पृ.88

83. वहीं, विहान, 'असह्य', पृ.94-95

84. 'प्रतिकूलता', विहान, पृ.96

85. वहीं, 'मनुज-जीवन', पृ.124
86. 'मार्क्सवादी काव्य-चेतना', पंचम उत्कर्ष (हिन्दी कविता मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में) डॉ. जनेश्वर वर्मा, पृ.405
87. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, अभियान 'मृत्यु-दिप', पृ.174
88. 'हिन्दी कविता मार्क्सवादी, परिप्रेक्ष्य में', डॉ. जनेश्वर वर्मा, पृ.395
89. महेन्द्र भटनागर, समग्र खण्ड-1, अभियान, 'पराजय', पृ.175
90. हिन्दी कन्दता मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में, डॉ. जनेश्वर वर्मा, पृ.396
91. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, 'नौ सैनिक विद्रोह', पृ.230
92. वहीं, 'अंतरज्वाला', पृ.176
93. वहीं, 'गिर नहीं सकती', पृ.21
94. वहीं, 'तूफान', पृ.225
95. 'प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर अनुभूति और अभिव्यक्ति', डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.20
96. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप, डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय, पृ.69,70
97. महेन्द्र भटनागर, 'जनवाणी', पृ.257
98. वहीं, 'मेरे देश में', पृ.262
99. वहीं, महेन्द्र भटनागर, पृ.40
100. वहीं, पृ.41
101. महेन्द्र भटनागर, टूटती श्रृंखलाएँ, 'नयी दुनिया', पृ.51
102. वहीं, 'नयी दुनिया', पृ.52
103. वहीं, 'संग्राम', पृ.52
104. वहीं, 'पीयूस-धारा', पृ.53
105. वहीं, 'पाषाण-उर', पृ.59
106. 'हिन्दी कविता मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में', डॉ. जनेश्वर, पृ.337
107. भटनागर, 'इतिहास', पृ.61
108. 'रामराज्य की कथा', यशपाल, पृ.99
109. India Today, R. P. Dutta, P.450
110. वही, पृ.450-450

111. 'हिन्दी कविता : मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में', डॉ. जनेश्वर वर्मा, पृ.339
112. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-2, 'इतिहास' टूटती श्रृंखलाएँ, पृ.61
113. वहीं, 'प्रलय', पृ.64
114. वहीं, 'इंकलाब', पृ.65
115. 'छायावादोत्तर हिन्दी काव्य : बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप', डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय, पृ.64
116. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-2, मुझे है 'याद' टूटती श्रृंखलाएँ, पृ.76
117. वहीं, पृ.77
118. वहीं, 'जिन्दगी की शाम', पृ.83
119. वहीं, 'निशा का युग', पृ.92
120. वहीं, 'जीवन दीप', पृ.95
121. वहीं, 'जिन्दगी', पृ.102
122. वहीं, 'ध्वंस और सृष्टि', पृ.108-109
123. वहीं, 'जागते रहेंगे', पृ.140
124. वहीं, 'नया समाज', पृ.169
125. वहीं, 'नयी दिशा', पृ.150
126. वहीं, 'युग और कवि', पृ.160
127. वहीं, 'आश्वस्त', पृ.162
128. वहीं, 'नया समाज', पृ.169
129. वहीं, 'छलना', पृ.172
130. वहीं, 'मत कहे', पृ.174
131. वहीं, 'निराप्राय', पृ.180
132. वहीं, 'नयी संस्कृति', पृ.183
133. वहीं, कवि, पृ.190
134. 'महेन्द्र भटनागर की काव्य साधना', श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.93
135. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-2, 'झुमना होगा', जिजीविषा, पृ.303
136. वहीं, 'संविधान', पृ.306
137. गिरिजा कुमार माथुर 'कल्पान्तर' (भूमिका), पृ.6
138. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-2, 'नया यौवन', जिजीविषा,पृ.307

139. भटनागर समग्र खण्ड-3, 'वस्तु स्थिति', संवर्त, पृ.99
140. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-3, 'हमारे ईर्द-गिर्द', संकल्प, पृ.142
141. संक्षेप से, संसद से सडक तक, घूमिल, पृ.115
142. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-3, 'हमारे ईर्द-गिर्द' संकल्प, पृ.142
143. भटनागर, समग्र खण्ड-3, जीने के लिए, पृ.259
144. वहीं, 'सन 1986 ई. में', पृ.260
145. वहीं, 'अग्नि-परीक्षा', पृ.261
146. वहीं, 'नये इन्सानों से', पृ.266
147. वहीं, 'दूसरा मन्वन्तर', पृ.267
148. वहीं, पृ.208
149. वहीं, 'माहौल', पृ.272
150. वहीं, वास्तविकता, पृ.272
151. वहीं, विश्लेषण, पृ.293
152. वहीं, 'विश्लेषण', पृ.294
153. वहीं, 'निष्कर्ष', पृ.332
154. वहीं, 'जरुरी', पृ.319
155. वहीं, 'अभिप्रेत-वंचित', 'अनुभूत क्षण', पृ.406
156. वहीं, 'विस्मय', पृ.398
157. वहीं, 'स्वागत 21वीं सती का', पृ.414
158. 'महेन्द्र भटनागर की काव्य साधना', श्रीमती ममता मिश्रा, पृ.31
159. कवि महेन्द्र भटनागर, सृजन और मूल्यांकन, सं. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला
160. वहीं, पृ.34
161. वहीं, पृ.26
162. 'कवि महेन्द्र भटनागर : सृजन और मूल्यांकन', सं. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, कवि महेन्द्र भटनागर के काव्य के प्रमुख स्वर - डॉ. सुरेशचन्द्र जैन, पृ.51

दशम अध्याय

सामाजिक आदर्श की परिकल्पना

10.1 जातिवाद का तिरस्कार

10.2 साम्यवादी रुझान

दशम अध्याय
सामाजिक आदर्श की परिकल्पना

सामाजिक आदर्श :

डॉ. रमाकान्त शर्मा के शब्दों में "महेन्द्रजी की कविताओं में जो प्रगतिशील दृष्टि विकसित हुई है, वह युग वैषम्य से उपजी है, उस दमनवृत्ति और शोषणजनित पीड़ा से जन्मी है जिसमें पड़कर जीवन खाली होने लगता है, और व्यक्ति आहत-अपमानित होकर जीने के लिए अभिशप्त हो जाता है । महेन्द्रजी ने इस पीड़ा को स्वर दिया है । वे मानव के स्वस्थ और मुक्त विकास के पक्षधर कवि हैं । वे जन-मन के भावों और जन-मन की पीड़ा व उनके विचारों को कविता के माध्यम से व्यक्त करते रहे हैं । समय की स्वर-लहरियों को सुनते हुए सामाजिक यथार्थ की सही पहचान कराते हुए मनुष्य के प्रति समर्पित बने रहना प्रगतिशील चेतना का एक सही संदर्भ है । महेन्द्रजी की कविताओं से यह प्रमाणित होता है कि वे अपनी अपने देश की मिट्टी से जुड़े है इसीलिए उनकी कविता प्रचारात्मक संदर्भों से कटकर शांति, समता और मानवता की गहरी अनुभूतियों से संसिक्त है ।"[1] उक्त कथन के आधार पर हम कह सकते हैं कवि महेन्द्र का सामाजिक आदर्श रामराज्य से मिलता जुलता है । वे मनुष्य के मुक्त विकास की बात करते हैं । वे समाज में शांति और समता की बात करते हैं । वे शोषण रहित समाज के पक्षधर हैं। हिंसा और युद्ध के विरोधी कवि हैं; क्योंकि वे तो जन-जन के अधरों पर उस मुस्कान की अपेक्षा करते हैं जो राग-रंजित हो कवि कहता है :

"सरस अधरों पर
प्रफुल्लित कंज-सी
मुस्कान हो
या उमंगों से भरा मधु-गान हो ।"[2]

कवि महेन्द्र भटनागर मानवतावादी रुझान और साम्यवादी व्यवस्था के प्रति अधिक आश्वस्त है । वे मनुष्य-मनुष्य के बीच की दूरी नहीं चाहते।

कवि कहते हैं :

“आओ
दूरियाँ
देशान्तरों की
अत्यधिक सामीप्य में
बदले ।”[3]

युगों से शोषित उपेक्षित और अत्याचार सहते आये लोगों के प्रति उनकी गहरी संवेदना है । वह समाज में से शोषण, अत्याचार का उन्मूलन कर देना चाहते हैं । यथा :

“मानव
अनाचार-नरकाग्नि में
अब दहेंगे नहीं ।”[4]

कवि महेन्द्र समाज की दो तरह की विलोम तस्वीर देखते हैं । वह कुछ लोगों को यौवन का उन्माद भोगते देखता है तो कुछ को शराब के नशे में चूर पाता है, एसे लोग ‘जगत में बहुत सुख है’ - ऐसा कहते कवि को दिखाई पडते हैं :

“कुछ यौवन के उन्मादों में
भोग रहे है जीवन का सुख
मदिरा के प्यालों की खन-खन
मैं उन्मुक्त पड़े हैं हँसमुख,
वे कहते हैं किसने इतना
जगती में सुख बरसाया है !”

कवि ऐसे लोगों को भी देखता है जो केवल भूख-प्यास और अभाव पूर्ण जीवन में आँसू बहाते हैं और भाग्य को कोसते हुए कहते हैं कि जगत में केवल दुःख-ही-दुःख है ।

कुछ सूनी आहें ले दुख की
सौ-सौ आँसू आज गिराते,
हत-भाग्य समझकर जीवन में

अपने को ही दोषी ठहराते,
वे कहते हैं जाने कितना
जग में दुख-राग समाया है ![5]

कवि महेन्द्र भटनागर समाज की इस विषमता को जड़ से नष्ट कर आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते हैं । उसका साम्यवादी स्वर उनकी कविताओं में सर्वत्र देखा जा सकता है ।

"नारा अब यह घर-घर है
हर इन्सान बराबर है
रोटी जन-जन खाएगा ।"[6]

कवि महेन्द्र भटनागर ऐसे आदर्श समाज की परिकल्पना करते हैं जो शोषण या अत्याचार की भूमि पर निर्मित न हो ।

जातिवाद का तिरस्कार :

जगत में चारों ओर जातिवाद, रंग-भेद व उच्च-नीच भाव व्याप्त है । कवि महेन्द्र भटनागर इसे पतन का द्वार मानते हैं । जातिवाद का विरोध करता हुआ कवि कहता है :

"भूलों जग के भेद-भाव
वर्ण-जाति के, धन-पद-वय के
गूँजे दिशी-दिशी में स्वर केवल
मानव महिमा गरिमा जय के ।"[7]

कवि विश्व-मानवता को नवीन चेतना से परिपूरित कर देना चाहता है, सींच देना चाहता है । उसे अपने उर-अन्तर का स्नेह अर्पित करता है :

"ओ, मनुजता की
करुण, निस्पंद, बुझती ज्योति
मेरे स्नेह से भर प्रज्ज्वलित हो जा !
निविड़म-आवरण सब
विश्व-व्यापी जागरण में आ सहज खो जा !"[8]

जाति-धर्म-भाषा-संप्रदाय एवं रंग-भेद के नाम पर होने वाले टकरावों के प्रति अपनी गहरी संवेदना प्रकट की है । कवि इसके विरुद्ध

संघर्ष-शक्ति जुटाने को कहता है :

मिटी नहीं अभी मनुष्य की पशुत्व-वृत्ति,
ले रहा अशांत श्वास जंगली हृदय मलान,
रंग-भेद के बुझे हुए चिराग पर ![9]

कवि सामाजिक कुरीतियों का पर्दाफाश कर समाज से इन बदियों को नष्ट कर देना चाहता है । जिन लोगों ने समाज में इन बदियों को रोपा है उनको भी कवि ने आड़े हाथ लिया है । समाज में साम्प्रदायिकता विष की तरह घुल गई है । साम्प्रदायिक के साथ अंधश्रद्धा और उससे उत्पन्न स्थिति से समाज आपस में संघर्ष कर नष्ट होता जा रहा है । साम्प्रदायिकता का विष बोने में अंग्रेजों ने भी अपनी भूमिका निभाई । कवि उन्हें कोसते हुए कहता है :

"तुने कर दिया बरबाद
मेरे देश का वैभव
कि मेरे देश का गौरव ।"[10]

कवि अपने हिन्दू मुस्लिम भाइयों को प्रबोध देते हुए कहता है :

"कर्बला प्रयाग है,
प्रयाग कर्बला
कुरान वेद की नसीहतों से
व्यक्ति का करो भला !
टले अशुभ घड़ी
व मृत्यु भय बला ।"[11]

आज़ादी के 60 वर्ष पूरे हो जाने के बाद भी हम आपस में जाति और धर्म के नाम पर लड़ते रहते हैं ।

इक्कीसवीं सदी में जीने वाले हमारी मानसिकता 15वीं सदी के लोगों जैसी है । हम अपना विकास नहीं कर पाये हैं -

"विकास राह रुद्ध
जाति-युद्ध

वंश-दर्प
बन गया
कराल काल-सर्प !
दंश
तीव्र दंश
सृष्टि के महान जीव का
अथाह भ्रंश ।”[12]

आज भी देश में जातिवाद के नाम पर संघर्ष हो रहा है । कवि आज की स्थिति का यथार्थ चित्रण करता है :

देश में
विशाल रूप में,
उमड़ रहा
उफ़न रहा
जाति-द्वेष : धर्म-द्वेष
वर्ण-भेद : जन्म-भेद ।[13]

इस तरह कवि का मानवीय दृष्टिकोण संकीर्ण मानसिकता वाले लोगों के विचारों से तथा उनकी तमाम अमानवीय बुराइयों से जूझता है और मानवतावादी आदर्श समाज की कल्पना करता है ।

प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर की कविता का मूल स्वर जनवादी रहा है । उसमें भारतीय समाज में रहने वाले लगभग सभी वर्गों के लोगों की जीवन-पद्धतियों और जीवन-मूल्यों को स्थान मिला है । कवि ने तथाकथित निम्न-जाति के लोगों पर भी लिखा है और उनकी हिमायत की है । जिनमें ‘हरिजन’, ‘भिखारिन’, ‘सर्वहारा’ आदि प्रमुख हैं । शोषित, पीड़ित और सर्वहारा के नाम से जाना जाने वाला वर्ग अधिकांशतः इन्हीं अछूतों का है, जिसे गांधीजी ने ‘हरिजन’ कहकर गले लगाया था । कवि महेन्द्र भटनागर इस वर्ग के अपने कवि हैं । उनकी सारी संवेदना इन शोषित, पीड़ित और निम्न वर्ग के लोगों की व्यथा-कथा कहने में अर्पित है ।

प्रेमचंद जैसे महान कथाकार तथा निराला जैसे महाकवि के चरित्रों से भी कवि प्रभावित हुआ है । प्रेमचंद के चरित्र तथा उनकी महत्त्वपूर्ण

उपलब्धियों की चर्चा इन पंक्तियों में देखिए -

"रूढ़ियाँ-बंधन शिथिल तुमने किये
अपनी अरुक दृढ़ लेखनी के बल ![14]

प्रेमचंद जैसे साहित्यकारों की शोषित-पीड़ित जन के पक्ष की भूमिका ने ही कवि महेन्द्र भटनागर को जातिवाद और संकीर्ण मानसिकता का विरोधी बनाया है । इसी विचारधारा से कवि की मानसिकता में परिवर्तन आया है । युग-परिवर्तन का हौसला लिए आत्मबल से कवि कहता है :

उठो, पीडित, तिरस्कृत
आज युग-युग के सभी मानव !
जगाता है तुम्हें
नूतन जगत का अब नया यौवन
अमर हो क्रांति
मानव-मुक्ति की नव क्रांति ।[15]

कवि महेन्द्र भटनागर समाज में श्रम को महत्व देते हैं । निष्क्रिय धार्मिक आस्था, पलायनवादी प्रकृति और भाग्यवादी चिन्तन के वे विरुद्ध हैं । समाज में श्रम के प्रति आस्था भाव होना चाहिए । कवि कहता है :

"जीवन जब है एक समस्या, कर्मों का ही नाम तपस्या,
प्राणों के अंतिम पल तक, जग में जमकर संघर्ष करो ।
बहता जाए जीवन-निर्झर ।"[16]

कवि महेन्द्र भटनागर की कविता वर्तमान समय की माँग की आपूर्ति करती है । अन्य सामाजिक चेतना से अनुप्राणित प्रगतिशील कवियों की तरह उन्होंने भी वर्तमान युग के समस्त कर्दम पर अपने ढंग से झाड़ू मारी है ताकि पुराने का सार-सार ढहाकर नए युग की आधारशिला निर्मित की जा सके । इसलिए समाज की विसंगतियों पर उन्होंने गहरी चोट की है। सामाजिक वैषम्य पर कुठाराघात करने के साथ ही प्रतिगामी सोच के मूलोच्छेदन का भी उन्होंने प्रयास किया है । अपने युग की समस्त कमियों का चित्रण करता हुआ कवि कहता है :

हमें
सामर्थ्य क्षमता का
          परिज्ञान कैसे हो ?
हमें संभावनाओं का
          अनुमान कैसे हो ?
हम
अपरिणामी, तटस्थ, अयुक्त
स्थितियों में
जीते हैं ![17]

वर्तमान युग की सबसे बड़ी समस्या है जातिवाद और छुताछूत । गरीब था, अछूत था इसलिए भूख से पीड़ित होकर मर गया । निम्नलिखित व्यंग्य दृष्टव्य है -

"गरीब था
अछूत था
   डर गया ।
भूख से
मार से
   मर गया ।
शोक से
लोक से
   तर गया !"[18]

भूतकाल में हमारा देश धर्म-जाति के भेदभाव से उत्पन्न संघर्ष झेल चुका है । कवि नहीं चाहता कि विभिन्न संप्रदायों, मज़हबों के बीच भाईचारे के बजाय सर्वनाशी टकराव की स्थिति अब भी बनी रहे । इसलिए वह मस्तमौला फकीर की तरह कहता है, हम सब एक ही ख़ुदा की संतान हैं । आपस में झगड़कर हम देश की सुरक्षा नहीं कर पाएँगे । धर्म के भेदभाव मानवता विरोधी हैं -

"एक है सबका खुदा, जिसने बनाये जीव सारे ।
खून की नदियाँ बहाकर
देश की रक्षा न होगी,
धर्म का ले नाम यों पथ
भ्रष्ट मानवता न होगी ।"[19]

सुधारमूलक दृष्टि :

कवि महेन्द्र ने समाज-सुधार के लिए कविता में सुधारवादी प्रवृति अपनाई है । धार्मिक अन्ध-विश्वास, जातिवाद या सामाजिक कुरीतियाँ - सभी पर कवि ने चोट की है । संकीर्ण विचारधारा और छद्म आधुनिकता को कवि ने आड़े हाथ लिया है । यथा :

"तन अत्याधुनिक लिबास धारे,
किन्तु
मन जकड़े हैं हमारे
रूढ़ियों
अन्ध-विश्वासों से
गतानुगत परंपराओं
आदिम संस्कारों से,
हस्त-रेखाओं
सितारों से ।"[20]

युग की विड़म्बना का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि हमने वैज्ञानिक आविष्कार किए हैं; पर हमारी दृष्टि वैज्ञानिक नहीं; बल्कि रूढ़िवादी और संकीर्ण है ।

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ हैं
हमारे पास
किन्तु
वैज्ञानिक दृष्टि नहीं,
दृष्टिकोण नहीं -
(स्थिति यह कोई
उपेक्षणीय

गौण नहीं)

समाज में जिन महान हस्तियों ने समाज को नई दृष्टि प्रदान की है, समाज के आकाश को ज्ञान का नया सबेरा प्रदान किया है, कवि महेन्द्र भटनागर उन सभी जननायकों पर गौरव का अनुभव करते हैं । कवि महेन्द्र भटनागर ने ऐसे महानुभावों के गुणगान गाये हैं । कवि ने महाकवि तुलसीदास की महानता से अभिभूत होकर उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है :

"धरा पाकर तुम्हें जब मुस्कुराई थी
बड़े उत्साह से प्रति प्राण में
नव चेतना आकर समाई थी ।
तुम उस जन-भावना के बन गए वाहक
अमर हे सन्त
संस्कृति के विधायक
हम तुम्हारी थाह जीवन में
कभी भी पा नहीं सकते !"[21]

तुलसीदासजी पर आधारित एक अन्य कविता में भी कवि तुलसीदास के प्रति श्रद्धाभाव प्रकट करते हैं :

"भ्रमित था जग सकल
उलझी अनोखी रीतियों में
तब उठे तुम
और तुमने थाह ले ली
पूर्ण 'मानस' भाव के बहते समुन्दर की ?
किया विद्रोह अविचल
बन गया जो त्रस्त, पीड़ित, नत
मनुजता का सबल संबल ।"[22]

तो साथ ही कवि महेन्द्र भटनागर ने विश्व-कवि रविन्द्रनाथ टैगोर के निधन पर करुणा प्रकट की है -

"तरंगों में पवन के,
युग-अँधेरे में

सिहरकर स्वर सभी थे मौन
जिस क्षण
विश्व कवि की रुक गई थी श्वास ।"[23]

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अलावा कवि महेन्द्र भटनागर के प्रेमचन्द, महात्मा गांधी आदि का प्रशस्ति काव्यगान किया है, तो निराला जैसे महाकवि को प्रणाम भी :

"प्रणाम लो ।
अमर कला-जनक
समस्त जन-समाज का प्रणाम लो !"[24]

कवि महेन्द्र भटनागर युग पुरुष महात्मा गांधी और नहेरूजी से अत्यधिक प्रभावित हैं । अगर इन जननायकों का अवतरण भारत में नहीं हुआ होता तो शायद हम आज भी पिछड़ी अवस्था में होते । कवि महेन्द्र इन दोनों महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं :

"यदि
मेरे देश में
गांधी और नेहरू जैसों ने
जन्म नहीं लिया होता
तो
हैवानियत के शिकंजे
हमारे हाथों-पाँवों में
कसे होते ।"[25]

कवि महेन्द्र भटनागर महात्मा गांधी से इतने प्रभावित हैं कि वे उन्हें आनेवाली पीढ़ी का भाग्य-विधाता मानते हैं :

"मानव-संस्कृति के संस्थापक, नव आदर्शों के निर्माता,
आने वाली संसृति के तुम निश्चय, जीवन भाग्य-विधाता[26]
तो
त्रस्त दुर्बल विश्व को सुख, शक्ति के उपहार हो तुम ।[27]

इस तरह कवि महेन्द्र भटनागर ने समाज में सुधार के लिए

अभियान किया है ।

समाज में स्त्री-पुरुष दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका है । एक की अनुपस्थिति में दूसरे की कल्पना अधूरी है । हमारे पुराणों में भी स्त्री को समाज में आदरपूर्ण स्थान दिया है । कहा भी जाता है - 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रम्यते तत्र देवता ।'

आदिकाल में नारी की स्थिति दयनीय थी । वह मात्र भोग-विलास का केन्द्र मानी जाती थी । मध्यकाल में नारी को नरक का द्वार माना गया । उसकी निंदा की गई और आधुनिक काल में भी नारी की स्थिति यथावत् रही । समाजसुधारकों और लोकनायकों ने नारी कल्याण की बात की है। जिसमें आधुनिक काल में प्रगतिशील कवियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है । महेन्द्र भटनागर स्त्री को समाज का अभिन्न अंग मानते हैं । आदमख़ोर मनुष्यों को जिन्होंने स्त्री पर जो अत्याचार किये लताड़ता हुआ कवि कहता है -

"लानत है इन्सान ।
किया तुम्हीं ने नारी पर अत्याचार प्रहार,
लानत है युग-युग की चिर संचित संस्कृति
जिसकी पशुता ने
नारी की अस्मत पर हाथ उठाया ।"[28]

कवि महेन्द्र भटनागर का मानना है कि नारी जब स्वयं जाग्रत होगी तभी उस पर होने वाले अत्याचारों का अंत सम्भव होगा । कवि नारी को उसके गौरव की याद दिलाता कहता है कि तुम कोई वस्तु नहीं है; जिसे पुरुष ख़रीद लाये । तुम अपने गौरव की रक्षा के लिए संघर्ष करो :

तुम नहीं कोई
पुरुष की ज़र-खरीदी चीज़ हो,
तुम नहीं
आत्मा-विहिनी सेविका
मस्तिष्क हीना-सेविका,

गुड़िया हृदय-हीना
नहीं हो तुम
वह युग युग पुरानी
पैर की जूती किसी,
आदमी के
कुछ मनोरंजन-समय की वस्तु केवल ।[29]

कवि नारी को कहता है कि तुम कमज़ोर नहीं हो, तुम अत्याचार के समक्ष विद्रोह करो - तुम्हारे साथ पूरा ज़माना है ।

कवि महेन्द्र भटनागर नारी को समाज के भ्रष्ट व्यवहार के प्रति विद्रोही रूप अपनाने को कहते हैं । वहीं, उसे एक समझदार प्रेयसी के रूप में भी चित्रित करते हैं । नारी के प्रेयसी रूप का चित्रण अलग-अलग काल में कवियों ने किया है । रीतिकालीन कवियों ने नारी का नख-शिख वर्णन किया है । वहीं आधुनिक काल के कवियों ने अपनी लेखनी से नारी के सौन्दर्य की आभा बढ़ाई है । कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में यह गौण रूप में प्रस्तुत है । फिर भी जहाँ भी उन्होंने अपनी प्रेयसी से प्रेम का इज़हार किया है वहाँ उनका प्रेम शारीरिक प्रेम न रहकर एक सात्विक प्रेम की अनुभूति कराता है ।

कवि अपनी प्रेयसी से प्रेम की याचना करता कहता है कि तुम अपने स्नेह-प्रेम का एक कण मुझे देकर मेरे मन रूपी रिक्त पात्र को अपने अपार प्रेम से भर दो । यथा :

"एक कण प्रिय नेह का
एक क्षण सुख देह का
मन कामना
वर दो !
अनावृत पात्र अन्तस्
भावना भर दो ।"[30]

कवि महेन्द्र भटनागर प्रगतिशील विचारधारा के कवि हैं । यही कारण है कि वे समाज में सबको प्रेम-दृष्टि से देखते हैं । मनुष्य के हृदय में एकदूसरे के प्रति प्रेम बना रहे । इसी भावना में मानवे-कल्याण की

भावना निहित है ।

कवि महेन्द्र भटनागर ने प्रिय के विरह-मिलन की अनेक कविताओं की रचना की है; जिसमें कवि-मन की विविध दशाओं का चित्रण हुआ है ।

निष्कर्षत: कवि का प्रेम सात्विक प्रेम की अनुभूति कराता है जो समाज के उत्कर्ष और विकास में सहायक है ।

मनुष्य हर क्षण अलग-अलग अनुभूतियाँ को अनुभव करता जीवन जीता है । जिनमें वह कभी संघर्ष का अनुभव करता है तो कभी विषाद का । डॉ. माधुरी शुक्ला के शब्दों में "महेन्द्र भटनागर के काव्य में हमें वे प्रतिकूल परिस्थितियाँ, वह संघर्ष और यह शक्ति-तीनों के ही दर्शन होते हैं । उनके समाजवादी सोच के कारण उनकी भूमिका उनके काव्य में दोहरी हो गई है - एक जो उनके व्यक्ति से संबंध रखती है, दूसरी जो उनके युग-बोध से उपजती है ।"[31]

समाज में मनुष्य का अकेलापन में रहना ख़तरा पैदा करता है । अकेलेपन में मनुष्य टूट जाता है । कवि महेन्द्र भटनागर इस अकेलेपन की अनुभूति का वर्णन करते कहते हैं -

"जीवन
अर्थ-सूनापन !
नहीं कुछ भी नया
सदा-सा
आज भी
दिन ढल गया ।"[32]

दिन का यह सूनापन जैसे रात को अधिक सदमा पहुँचाता है :

दर्द है,
और सूनी रात बेहद सर्द है ![33]

समाज में प्रत्येक व्यक्ति अभावपूर्ण जीवन बोझ बन जाता है । कवि कहता है कि :

महज़
दिन बिताना सरल है,

जीना कठिन ![34]

कवि समाज में व्याप्त वृद्धावस्था की समस्या के प्रति भी सजग है । आज समाज में वृद्धों की स्थिति दयनीय है । वृद्धों को अपनी वृद्धावस्था के अंतिम दिन अकेले ही काटने पड़ते हैं । कवि इस वृद्धावस्था की ओर इंगित करता कहता है :

"आ रही संध्या
अरुणिमा
तुम भला क्या दे सकोगी ?
मौन उत्तर था -
अँधेरा.....
घन-अँधेरा !"[35]

कवि इस बोझिल अकेलेपन की रात से सचेत है । उसके स्वयं के जीवन में भी यह रात आनेवाली है । उसका इसका आभास है । कवि कहता है :

"यह अकेली स्तब्ध
बोझिल
हिम ठिठुराती रात
मेरे ही लिए ।"[36]

अकेलेपन की कडवाहट और अभावपूर्ण जीवन में व्यक्ति को निरन्तर संघर्ष करना पड़ता है । यह संघर्ष शेष पूरे जीवन का अंग बन जाता है । कवि कहता है ।

बसन्त भी अभावपूर्ण जीवन की कश-म-कश में बीत गया है -

जीवन की कश-म-कश में
बीत गया बसन्त ![37]

अभावपूर्ण जीवन का अर्थ मात्र दिन काटना है । जीवन में कोई उमंग, तरंग न हो तो जीवन मृत्यु समान लगता है । कवि कहता है :

क्या जीता हूँ !

अनुदिन कड़वाहट पीता हूँ ![38]

कवि अभावपूर्ण जीवन में ऐसी उलझन महसूस करता है कि उसमें कहीं भी चैन नहीं मिल पाता । इस चरम दुख से जो निष्कर्ष निकला; उसने जिन्दगी की परिभाषा ही उलट दी और वह मरघट-सी हो गयी । यथा :

ज़िन्दगी -
ठहराव
साधन-हीन
रिसता घाव
ज़िन्दगी -
अनचहा संन्यास
मात्र तनाव ।[39]

कवि इस दुविधा में रहा है कि अभावपूर्ण जीवन को कैसे सजाया-सँवारा जाय । यथा :

बंजर धरती की
कँकरीली मिट्टी पर
नूतन जीवन कैसे बोया जाय ![40]

क्योंकि

उड़ गए
ज़िन्दगी के बरस
रे कई
राग सूनी
अभावों भरी
ज़िन्दगी के बरस
हाँ कई उड़ गए ।[41]

कवि ने व्यक्तिगत निराशा के स्थान पर आत्म-विश्वासपूर्ण जीवन की कामना करता है । वह टूटना नहीं बल्कि समस्याओं से लड़कर मज़बूत बनना चाहता है । व्यक्तिगत पीड़ा और व्यथा की आग में तपकर कवि इस

निष्कर्ष पर पहुँचता है की समष्टि में ही व्यष्टि का सुख है । कवि कहता है :

मैं आऊँगा
फिर आऊँगा
निज को विसर्जित कर
सामूहिक चेतना का अंग बन
अन्त हीन भीड़ में मिल जाऊँगा ।[42]

समाज की सामूहिक चेतना कवि को नवजीवन देनेवाली है। इसीसे व्यक्ति का खोया हुआ आत्म-विश्वास और भग्न आशा जीवन्त हो जाएँगी । इसलिए कवि मार्ग में आनेवाली रुकावटों से घबराए बिना आगे बढ़ता गया है। वह समाज को बदलना चाहता है - इसी में वह अपनी जवानी की सार्थकता मानता है । यथा :

हूँ नये युग का मनुज मैं, बद्ध हो पाया न जीवन,
मार्ग में रुकना कहाँ जब पा रहा युग का निमंत्रण
यदि बदल पाया ज़माना, है तभी सार्थक जवानी ।
है अमर ये गान मेरे, है अमर मेरी कहानी ![43]

कवि का जीवन और जगत के प्रति नया दृष्टिकोण व्यक्ति को संबल देता है । कवि कहता है कि नये युग में सबकी इच्छाएँ और अरमान पूरे होंगे। कोई अधूरी इच्छा लिए इस जगत से नहीं जाएगा । यथा :

आज नव-नव गीत मेरे, आज नव-नव गीत जग के
आज नवयुग, आज गतियुग और खिलते फूल नव-नव
अब न जीवन में अधूरे छोड़ जग अरमान जाता ![44]

कवि महेन्द्र भटनागर युग-कवि हैं जो यथार्थ का चित्रण कर वास्तविकता का बयान करते हैं । वे व्यक्ति को विश्वास और आस्था से कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं । कवि कहता है मैं खुद अपना पतवार बन अपने पर विश्वास रख आगे बढ़ा हूँ -

मैं अपना खुद पतवार बना,
मैं अपना खुद आधार बना,
निज की निर्भरता पर रखता अविचल विश्वास घना ![45]

कवि महेन्द्र भटनागर स्वयं का उदाहरण देकर प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपना मार्गदर्शक बनने की बात करते हैं । यहाँ कवि उन पीड़ित लोगों की ओर इंगित करते हैं जो दूसरों की मदद की आश लिये बैठे रहते हैं । कवि स्वयं आगे बढने के अथक प्रयत्न करता रहा है और यही कारण है कि -

आज जीवन में सफलता की मुझे आहट मिली है ।[46]

कवि असत्य और अन्याय का विरोधी है । वह किसी भी अमानवीय प्रवृति या अत्याचार के सामने झुकना पसंद नहीं करता । क्योंकि उसका लक्ष्य स्पष्ट है :

"मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग को निर्मित करनेवाला हूँ !"[47]

क्योंकि उसकी जीवन-प्रगति का लक्ष्य है -

प्रगति ही ध्येय जीवन का बना संबल ![48]

कवि आदर्श समाज निर्माण के लिए क्रांतिकारी की भूमिका में प्रस्तुत होता है :

हूँकार हूँ, हूँकार हूँ !
मैं क्रांतिकी हूँकार हूँ !
मैं न्याय की तलवार हूँ ![49]

मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति अब सजग है । अतः भविष्य उज्ज्वल है। कवि को आशा है कि अब ऐसी आवाज़ उठेगी जो पीड़ितों को न्याय दिलाने की हिमायत करेगी ।

शीघ्र गूँजेगी गगन में महत मानव
लोक-वाणी शक्तिशाली और अभिनव !
दे सकेगी पीड़ितों को सुदृढ संबल
विश्व के सब शोषितों को स्नेह निश्छल ![50]

कवि महेन्द्र भटनागर रचना का उद्देश्य बताकर आदर्श समाज और साहित्य के निर्माण की दिशा बताते हैं :

जो जन-जन के भावों और विचारों को वहन करे,

जो हर अवरोधी सामाजिक ताक़त का दमन करे,
जो जन-बल के सम्मुख श्रद्धा-आदर से नमन करे,
जो सामूहिक पीड़ा, आँसू, क्रन्दन को सहन करे,
जो गिरती दिवारों पर नूतन जग का सृजन करे ।[51]

साहित्य समाज को नयी दिशा देता है और बिखराव के समय उसे जोड़ने का कार्य करता है । डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी के शब्दों में, डॉ. महेन्द्र भटनागर की कविता में बिखराव और अनास्था के इस चरम कालखण्ड में लोगों को एक दूसरे के निकट लाना ही कविता का केन्द्रीय प्रयोजन बनता जा रहा है । स्वभावतः श्रेष्ठ और स्मरणीय कवि की पहचान का अब यही आधार बन गया है कि उसकी रचनाकारी में मनुष्यों के एकजुट करने का कौशल कितनी भव्यता और नव्यता के साथ है । भावों की एकसूत्रता, विचारों की एकतानता और सामूहिक सजगता के जिन अभिलक्षणों के कारण आज की कविता अपने लक्ष्य तक पहुँच रही है, उन सारे उपकरणों का सम्यक् समाहार कवि डॉ. महेन्द्र भटनागर की कविताओं में उपलब्ध है । प्रेम और देश, राग और विरोध, व्यंग्य और आस्था की जैसी विविधता इन कविताओं में है । अपनी इन्हीं विलक्षणताओं के कारण डॉ. महेन्द्र भटनागर की कविताएँ पढ़ी जा रही हैं, पढ़ी जाएगी ।" संक्षेप में, कवि महेन्द्र की कविता में वर्तमान समाज को नयी दिशा नयी दृष्टि प्रदान हुई है । एक आदर्श समाज में क्या गुण होने चाहिए उस पर कवि ने विस्तार से लिखा है ।

कवि महेन्द्र भटनागर समाजोन्मुखी चेतना से अभिभूत हैं । डॉ. सुरेशचन्द्र जैन के शब्दों में - "उनका प्रगतिवाद अपनी अनुभूतिजन्य सच्चाई से मंडित होकर काव्य में प्रकट हुआ है । इसलिए यह प्रगतिवाद के रूढ़ रूप (वाद-बद्धता) से उतने प्रभावित दिखाई नहीं देते जितने समाजोन्मुखी चेतना से दिखाई देते हैं ।"[52]

साम्यवादी रुझान :

प्रगतिवाद का सैद्धांतिक पक्ष मार्क्सवादी दर्शन तथा वैज्ञानिक यंत्र के नये विकास से काफ़ी हद तक प्रभावित है; फिर भी प्रगतिवादी

काव्यधारा का विकास अपनी ही राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों के चलते अधिक हुआ है ।

"सन् 1937 से सन् 1942 तक का समय भारत में मार्क्सवादी विचारधारा के विकास और प्रसार की दृष्टि से अपना एक विशेष महत्व रखता है ।"[53]

साम्यवादी विचार के प्रणेता कार्ल मार्क्स हैं । "मार्क्सवाद एक भौतिकवादी दर्शन है । अतः वह काव्यकला के मूल को भी मानव जीवन के भौतिक विकास की सापेक्षता में ही देखने और समझने में विश्वास करता है ।"[54] कार्ल मार्क्स काव्य के विकास की तरह पूँजी और मनुष्य के बीच सापेक्ष संबंध स्थापित करते हैं ।

वर्ग-विभाजन और वर्ग-संघर्ष का नग्नतम रूप हमें पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत दिखाई देता है, जिसकी व्याख्या करते मार्क्स और ऐंगेल्स ने 'कम्युनिष्ट घोषणापत्र' में लिखा था :

"पूँजीपति-वर्ग ने जहाँ पर भी शक्ति प्राप्त की वहाँ सामन्तवादी पितृसत्तावादी भावुकता के सभी संबंधों का उसने अन्त कर दिया । स्वाभाविक रूप से ही उच्च कहलाने वाले लोगों से मनुष्य जिन नाना सामन्ती बँधनों से बँधा हुआ था, उन सबको उसने निष्ठुरता से तोड़ दिया । नग्न स्वार्थ के 'नक़द पैसे-कौड़ी के' हृदयशून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा संबंध उसने बाक़ी नहीं रहने दिया । ऊँची-से-ऊँची धार्मिक भावनाओं, वीरोचित उत्साह और भोली-से-भोली भावुकताओं, सब पर उसने आना पाई का मुलम्मा चढ़ा दिया है । मनुष्य के गुणों को उसने बाज़ार की बिकाऊ चीज़ बना दिया है । पहले की सनदों द्वारा प्राप्त होने वाली तरह-तरह की स्वतंत्रताओं की जगह अब उसने केवल एक ही तरह की आत्मारहित स्वतंत्रता की स्वतंत्र व्यापार की स्थापना कर दी है । एक शब्द में धार्मिक और राजनीतिक पदों के पीछे छिपे शोषण के स्थान में उसने नंगे, निर्लज्ज, प्रत्यक्ष और पाशविक शोषण की स्थापना कर दी है ।

जिन पेशों के संबंध में अब तक लोगों के मन में आदर और श्रद्धा की भावना थी, उन सबका रंग पूँजीपति वर्ग ने फीका कर दिया है । डाक्टर, वकील, पुरोहित, कवि और वैज्ञानिक सभी को उसने अपना वेतन-

भोगी कर्मचारी बना लिया है ।

पूँजीपति वर्ग ने पारिवारिक संबंधों के ऊपर से भावुकता का पर्दा उतार फेंका है और पारिवारिक संबंध को केवल पैसे के संबंध में बदल दिया है ।''[55]

मार्क्स और ऐंगेल्स के उक्त घोषणापत्र की पंक्तियों में पूँजीवाद की जिन प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया गया है; उनकी गहरी छाया वर्तमान पूँजीवादी युग के काव्य में विद्यमान है; क्योंकि उसका जन्म इन्हीं प्रकार की परिस्थितियों में हुआ है ।

साम्यवाद की विचारधारा कार्ल मार्क्स की क्रांतिकारी सोच है । कार्ल मार्क्स का जब जन्म हुआ तब पूँजीपति मज़दूरों का शोषण करते थे । कार्ल मार्क्स ने अपनी पुस्तक 'दास केपिटल' में शोषितों के लिये लिखा है - ''आपकों शोषकों की दासता के अलावा कुछ गँवाने का नहीं है ।''[56] इससे मजदूर संगठित हुए और साम्यवाद का जन्म हुआ ।

मार्क्सवादी धारणा के अनुसार काव्य एक सामाजिक कृत्य है और समाज ही उसके जीवन का मूल है परन्तु पूँजीवाद ने काव्य को इस सीमा तक व्यक्ति-केन्द्रित कर दिया है कि आज उसके जीवन-श्रोत से ही उसका सम्बन्ध टूट गया है ।[57] साम्यवाद समाज को एक दूसरे के करीब लाता है । अधिकार और आवश्यकता दोनों की पूर्ति करता है ।

''मार्क्सवाद मानव को अपने दर्शन का केन्द्र मानता है, कारण कि जहाँ वह यह दावा करता है कि भौतिक शक्तियाँ आदमी को बदल सकती है, वहाँ पर यह भी अत्यंत स्पष्टता से घोषित करता है कि यह मानव ही है जो भौतिक शक्तियों को बदलता है और ऐसा करने के दौरान में अपनी भी काया पलट करता है ।''[58] यह काया पलट साम्यवाद है । जिसमें मनुष्य-मनुष्य के बीच राष्ट्र-राष्ट्र के बीच समानता की भावना पैदा करना है ।

हिन्दी जगत में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रथम निबंध लिखने का श्रेय श्री जनार्दन भट्ट को है जिन्होंने रूसी क्रांति से कई वर्ष पूर्व सन् 1914 में 'हमारे गरीब किसान और मजदूर' शीर्षक अपने निबंध में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से, समाज में शोषण के आधार पर बनी हुई श्रेणियों की व्याख्या करते हुए लिखा, ''विचारपूर्वक देखा जाय तो संसार के हर एक

देश में चाहे वह इंग्लैण्ड हो चाहे हिन्दुस्तान, दो जातियाँ दिखाई पड़ेंगी । एक ओर तो धनी हैं, जिनकी संख्या संसार में बहुत थोड़ी है और जो हर तरह के ऐशोआराम में अपना जीवन बिताते हैं और दूसरी तरफ़ एक बहुत बड़ी संख्या उन अभागों की है जो किसी तरह बड़े परिश्रम और कष्ट से अपने जीवन की रक्षा कर सकते हैं। इन गरीबों की हालत प्राचीन रोम के गुलामों से भी बदतर है ।"[59]

मार्क्सवाद की चर्चा की दृष्टि से हिन्दी पत्रों में कानपुर से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक 'प्रताप' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इसके संपादक उदार मानवतावादी दृष्टिकोण के पोषक स्व. गणेशशंकर विद्यार्थी थे।"[60] जो "तिलक और गांधी से प्रभावित थे परन्तु उग्र विचारधारा के कारण हर एक जन-आन्दोलन से उनका सम्पर्क था । हर एक पथ एक ही गन्तव्य पर पहुँचता है, यह उनकी धारणा थी - वह गन्तव्य था जनता की राजनीति एवं आर्थिक मुक्ति ।"[61]

डॉ. महेन्द्र भटनागर की अधिकांश रचनाओं पर मार्क्सवादी विचारधारा की छाया स्पष्ट रूप से विद्यमान है । मार्क्सवाद के प्रति अपने आकर्षण को स्वीकार करते हुए उन्होंने स्वयं कहा है "इसी बीच वामपक्षी विचारधारा से भी मेरा परिचय हुआ । 'विप्लव' और बाद में 'लोक-युद्ध' का मैं नियमित पाठक रहा । परिवार की विकट आर्थिक परिस्थितियों के बीच जब मैं ऐसे विचारों के सम्पर्क में आया तो मुझे उनमें अपने मन की बात मिल गई ।..... एतदर्थ यह वैचारिक साम्य पाकर मुझे बड़ा संतोष मिला और मैं वामपक्षी गतिविधियों में रूचि लेने लगा ।"[62]

अतः कवि अपने आप को विद्रोही कहता है । वह पूँजीवादी शोषण-व्यवस्था के प्रति विद्रोह करके नवयुग का निर्माण करना चाहता है -

"नष्ट-भ्रष्ट कर सारे बन्धन
लाया नव जीवन ज्वाला हूँ ।
मैं विद्रोही कवि, मैं नवयुग,
को निर्मित करनेवाला हूँ ।"[63]

कवि महेन्द्र भटनागर शोषितों और पीड़ितों की कल्याण-कामना के लिए क्रांतिपथ पर अपना जीवन उत्सर्ग करने के लिए प्रस्तुत है -

"क्रान्ति पथ पर बढ़ रहा हूँ
द्रोह की ज्वाला जगाने
रक्त से डूबी धरा पर
शान्ति, समता, स्नेह लाने ।"[64]

कवि समाजवादी नव-निर्माण के लिए अपने दृढ निश्चय को व्यक्त करते हुए कहता है -

मैं निरंतर राह नव निर्माण करता चल रहा हूँ
और चलता ही रहूँगा ।[65]

आज शोषितों ने अत्याचारियों के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर दी है। उनका आत्म-सम्मान जाग उठा है । अब वे अमीरों के सामने अपना सिर नहीं झुका सकते -

"गरीबी ने बग़ावत का
प्रबलतम कर दिया एलान,
बुभुक्षित का
उठा है जाग फिर अभिमान ।'[66]

शोषित वर्ग को जागरण का संदेश देते हुए कवि कहता है कि अब शोषणमुक्त, एक नवीन संसार का निर्माण होने जा रहा है । अतः तुम्हें भी निद्रा त्यागकर उसके निर्माण में योग देना चाहिए -

"बन रहा इतिहास नूतन
जाग शोषित देख्न सम्मुख्न है नया संसार !"[67]

कवि मई दिवस को 'मानव समता का त्यौहार' मानता है और कहता है कि जब तक संसार के किसी भी कोने में विषमता के चिह्न-शेष रहेंगे तब तक श्रमजीवीवर्ग संतोष की साँस नहीं लेगा -

"जब तक जग के कोने कोने में न थमेगा
सामाजिक घोर विषमता का बहता ज्वार,
हर श्रमजीवी तब तक अविचल मुक्त

मनाएगा मई दिवस का त्यौहार
मानव-समता का त्यौहार ।"[68]

साथ ही, कवि शोषित मानवता को भी क्रांति के लिए आह्वान करता है -

"बलिदानों की बलिवेदी पर
डरना तुमको स्वीकार न हो
बंधन से तुमको प्यार न हो ।"[69]

कवि महेन्द्र भटनागर ने अपनी युगीन घटनाओं से प्रेरित होकर कविता की है । द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् संसार के अनेक देशों में जन-आंदोलन की लहरें उठी, क्रांतियाँ हुई और सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन घटित हुए, जिसे प्रेरित होकर कवि कहता है :

"विश्व के परतन्त्र देशों की
जटिल दृढ़ शृंखलाएँ टूटने को
आज झन-झन बज रही हैं ।"[70]

जिन देशों की जनता साम्राज्यवादी शक्तियों से संघर्षरत है उन्हें शुभकामना देता हुआ कवि कहता है :

"जो लड़ रहे
साम्राज्यवादी शक्तियों से देश,
जिनकी वीर जनता ने
किया धारण शहीदी वेश
भेजता हूँ मैं उन्हें शुभ-कामनाएँ
हो विजय ।"[71]

कवि महेन्द्र भटनागर पूँजीवाद के शोषण से मुक्त समाज की कल्पना करते हैं । वह जिस नव-निर्माण के आकांक्षी हैं उसकी रूप-रेखा देते हुए कहते हैं, अब समाज में पूँजीवाद का कोई चिह्न नहीं रहेगा, समाज केवल साम्य-पथ पर ही आगे बढ़ेगा ।

"नूतन चेतना की प्रेरणा से
ये पुराने सब

किले, दीवार, दर्रे टूट जाएँगे ।"[72]

इस तरह कवि महेन्द्र भटनागर की कविता में अन्य प्रगतिवादी कवियों की तरह साम्यवादी भावना दृष्टिगत है । कवि की अधिकांश रचनाओं में शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण तथा समाजवादी नव-निर्माण की भावना एक क्रांतिकारी सैनिक का जोश लेकर प्रकट हुई है ।

"प्रगतिवाद का प्रारंभ ही अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध हुआ था । साम्यवादी व्यवस्था का लक्ष्य लेकर मानव चेतना को समस्त मानवीय कृत्यों के विरुद्ध संघर्षशील कर देना ही उसका लक्ष्य था । कवि महेन्द्र भटनागर की समस्त काव्य-यात्रा में हम उस लक्ष्य और इस संघर्ष को सर्वाधिक मुखर होता पाते हैं ।" "अपने युग की विसंगतियों, विषमताओं को भोगकर उनकी लेखनी में जो पैनापना आया, उससे उन्होंने एक ओर जहाँ विषमताओं को कलम करने की चेष्टा की है तो दूसरी ओर नवीन समाजवादी जीवन मूल्यों की ज़ोरदार वकालत की । यही कारण है कि वे अपने समय के समस्त सामाजिक सन्दर्भों, प्रश्नों तथा अपेक्षाओं के प्रति पूर्णतः सचेत हैं और इन सबके प्रति उनकी प्रतिक्रिया एक जागरूक युग-चेता काव्य-सर्जक के अनुरूप ही हमारे सामने आती है । उनके काव्य की मूल चेतना जिन स्वरों को मुखर करती है वे यथार्थ प्रगतिवादी काव्य की मूल चेतना से सर्वथा अभिन्न है ।"[73] यही कारण है कि उनकी रचनाओं में हमें उनका मानवतावादी रुझान और साम्यवादी व्यवस्था के प्रति प्रगाढ़ ललक के दर्शन हो जाते हैं :

"आओ
दूरियाँ
देशान्तरों की
व्यक्तियों की
अत्यधिक सामीप्य में
बदले ।

बहुत मज़बूत
अन्तर-सेतु

बाँधे ।"[74]

कवि समाज में फैली अमानुषिकता को दूर कर देना चाहता है । वह उद्‌बोधन करता है :

"भूलो जग के भेदभाव सब
वर्ण-जाति के, धन-पद-वय के,
गूँजे दिशि-दिशि में स्वर केवल
मानव महिमा गरिमा जय के ।"[75]

तो यह भी :

"मिलकर कदम बढ़ाएँ हम
जय, फिर होगी वाम की !
नारा अब यह घर-घर है
हर इन्सान बराबर है
रोटी जन-जन खाएगा
अपने-अपने काम की ।"[76]

इस तरह डॉ. माधुरी शुक्ला के शब्दों में कहे तो "कवि का सम्पूर्ण रचना-संसार व्यक्ति और समाज के हितों में समन्वय स्थापित करते हुए वर्ग, वर्ण तथा रंग के अनेकानेक भेदभावों की आहुति मानवीय व्यवस्था के हवन कुण्ड में डालने को सर्वत्र तत्पर है ।

मार्क्सवादी विचारधारा की समस्त मान्यताएँ उनके काव्य में बड़ी हार्दिकता के साथ अपना पक्षपोषण कर सकी हैं । विश्व में जहाँ कहीं भी वैषम्य है, विसंगति और अनय है, कवि की संवेदना वहाँ नवीन समाजवादी-साम्यवादी परिवर्तन की आकांक्षा रखती है । अनियन्त्रित, अराजकता, निरंकुशता, शोषण-बर्बरता उसकी दृष्टि में सर्वथा अक्षम्य हैं, इसीलिए वह उनके प्रतिकार के लिए जन-सामान्य को सचेत और सचेष्ट कर देना चाहते हैं ।"[77]

प्रकरण-10

1. ‘सामाजिक चेतना के शिल्पी’, कवि महेन्द्र भटनागर, संपा. डॉ. हरिचरण शर्मा, प्राक्कथन से पृ.111
2. ‘अपेक्षित’, संवर्त, भटनागर-3, पृ.1
3. ‘सहभाव’, संकल्प, पृ.1
4. जनवादी ‘झूमते हुए’, पृ.41
5. ‘वैषम्य’, अभियान, पृ.125
6. मजदूरों का गीत, ‘जूझते हुए’, पृ.45
7. ‘समता का गान’, संकल्प, पृ.44
8. ‘नया युग’, नई चेतना, पृ.68
9. ‘मलान सावधान’, बदलता युग, पृ.204
10. ‘हम एक है’, बदलता युग, पृ.194
11. ‘एकता’, बदलता युग, पृ.196
12. ‘प्रतिरोध’, जूझते हुए, पृ.27
13. ‘पतन’, जूझते हुए, पृ.28
14. प्रेमचंद - ‘चयनिका’, महेन्द्र भटनागर, पृ.169
15. विहान, पृ.60
16. ‘जीवन दृष्टि’, विहान, पृ.25
17. ‘यथा-पूर्व’, संकल्प, पृ.7
18. ‘त्रासदी’, झूझते हुए, पृ.33
19. ‘एकता’, बदलता युग, पृ.196
20. ‘विसंगती’, जूझते हुए, पृ.49
21. ‘तुलसीदास’, अभियान, पृ.148-49
22. वहीं, पृ.149
23. ‘विश्व-कन्द’, विहान, पृ.55
24. ‘कवि निराला के प्रति’, जिजीविषा, पृ.87
25. वहीं, पृ.13
26. गांधी (1) अभियान, पृ.152
27. गांधी (2) अभियान, पृ.153

28. ‘दमित नारी’, बदलता युग, पृ.190
29. ‘नई नारी’, बदलता युग, पृ.233
30. ‘याचना’, सन्तरण, पृ.42
31. ‘प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर, अनुभूति और अभिव्यक्ति’, डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.170
32. ‘एक साँझ’, संतरण, पृ.26
33. ‘रात बीतेगी’, संतरण, पृ.27
34. ‘सुकुट दुष्कर’, संवर्त, पृ.23
35. ‘दिशान्त’ : संवर्त, पृ.25
36. ‘मेरे ही लिए’, संवर्त, पृ.23
37. ‘जीलिया बसन्त’, यही, पृ.29
38. ‘आत्मकथा’ : संकल्प, पृ.25
39. ‘निष्कर्ष’, जूझते हुए, पृ.13
40. ‘नियति’ : संवर्त, पृ.32
41. ‘अनुदर्शन’, संवर्त, पृ.26
42. ‘पुनर्चार’, संकल्प, पृ.35
43. ‘अभय’, विहान, पृ.30
44. ‘युग-कवि’, विहान, पृ.31
45. ‘स्वावलंबन’, विहान, पृ.45
46. ‘बहने देना’, अंतराल, पृ.131
47. ‘कवि’, अंतराल, पृ.131
48. ‘संबल’, टूटती श्रृंखलाएँ, पृ.27
49. ‘हुंकार’, टूटती श्रृंखलाएँ, पृ.28
50. ‘नया दृश्य’, वहीं, पृ.28
51. ‘जनवाणी’, बदलता युग, पृ.216
52. महेन्द्र भटनागर समग्र खण्ड-1, आमुख से
53. ‘हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना’, डॉ. जनेश्वर वर्मा, पृ.346
54. ‘हिन्दी कविता मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में’, डॉ. जनेश्वर वर्मा, पृ.155
55. मार्क्स और ऐंगेल्स - कम्युनिष्ट पार्टी का घोषणापत्र (चौथा हिन्दी संस्करण), पृ.37-38

56. दैनिक समाचार पत्र - 'संदेश' 'साम्यवादियों के राष्ट्रपिता', देवेन्द्र पटेल - रेड रोज, पृ.1 संस्कार पूर्ति दिनांक : 12 जुलाई, 2009
57. हिन्दी कविता : मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में, डॉ. जनेश्वर, पृ.169
58. वहीं, पृ.175
59. 'हमारे गरीब किसान और मजदूर', शीर्षक निबंध 'सरस्वती' जून सन 1914, पृ.341
60. गणेश शंकर विद्यार्थी के श्रेष्ठ निबंध - श्री कृष्णदत्त पारीवाल, पृ.4
61. स्व. मं. गणेशंकर विद्यार्थी के सुपुत्र एवं प्रताप के भूतपूर्व संपादक श्री औंकार शंकर विद्यार्थी का पत्र लेखक के नाम, ता.12-7-1964
62. साम्यवाद - रामचन्द्र वर्मा, पृ.454
63. वहीं, 'वीरप्रण'
64. अभियान, 'मेरी कविता', पृ.33-34
65. नई चेतना, महेन्द्र भटनागर, पृ.31
66. जिजीविषा, महेन्द्र भटनागर, पृ.42
67. विहान, महेन्द्र भटनागर, पृ.14
68. जिजीविषा, महेन्द्र भटनागर, पृ.72
69. अभियान, वहीं, पृ.33-34
70. बदलता युग, वहीं, पृ.4-5
71. संतरण, वहीं, 15
72. नई चेतना, महेन्द्र भटनागर, पृ.40
73. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर, अनुभूति और अभिव्यक्ति, डॉ. माधुरी शुक्ला, पृ.70
74. सहभाव : संकल्प : महेन्द्र भटनागर, पृ.1
75. समता का गाँव, संकल्प, पृ.44
76. मजदूरों का गीत : जूझते हुए, पृ.45
77. प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर, अनुभूति और अभिव्यक्ति, पृ.73-74

संदर्भ सूचि

1. तारों के गीत, सन् 1949, तारों पर लिखित 21 गीत संगृहीत, प्रारम्भिक कृति, रचना-काल 1941-42, प्रकाशक : गया प्रसाद एण्ड सन्स, आगरा ।
2. टूटती शृंखलाएँ, सन् 1949, 60 कविताएँ संगृहीत, रचनाकाल-1944, 47-48, प्रथम संस्करण 'कारवाँ प्रकाशन, इंदौर' से तथा द्वितीय संस्करण (सन् 1950) 'प्रबुद्ध भारती प्रकाशन, ग्वालियर' से प्रकाशित, द्वितीय संस्करण के आमुख-लेखक डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन' ।
3. बदलता युग, सन् 1953, 43 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1943-52, प्रकाशक : दीनानाथ बुक डिपो, इंदौर, भूमिका-लेखक - प्रो. प्रकाशचंद्र गुप्त ।
4. अभियान, सन् 1954, 37 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1942, 49-50, प्रकाशक : आदर्श विद्या मंदिर प्रकाशन, इंदौर, भूमिका-लेखक श्री मन्मथनाथ गुप्त ।
5. अन्तराल, सन् 1954, 50 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1944-49, प्रकाशक : युवक साहित्यकार संघ, धार (म.प्र.), भूमिका-लेखक डॉ. विनयमोहन शर्मा ।
6. विहान, सन् 1956, 35 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1941-45, प्रारम्भिक कृति, प्रकाशक : स्वरूप ब्रदर्स, इंदौर ।
7. नयी चेतना, सन् 1956, 45 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1948-53, प्रकाशक : श्री अजन्ता प्रेस (प्रा.) लि., पटना ।
8. मधुरिमा, सन् 1959, 55 कविताएँ संगृहीत । रचना-काल 1945-57, द्वितीय संस्करण-1980, प्रकाशक : साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर ।
9. जिजीविषा, सन् 1962, 57 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1947-56, प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।
10. संतरण, सन् 1963, 80 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1956-62, प्रकाशक : कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर ।
11. संवर्त, सन् 1972, 50 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1962-66, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, भूमिका-लेखक : डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ।
12. संकल्प, सन् 1977, 35 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1967-71, प्रकाशक :

प्रबुद्ध भारती प्रकाशन, ग्वालियर ।

13. जूझते हुए, सन् 1984, 45 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1972-76, प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद ।

14. जीने के लिए, सन् 1990, 40 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1977-86, प्रकाशक : सर्जना प्रकाशन, ग्वालियर ।

15. आहत युग, सन् 1997, 44 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1987-97, प्रकाशक : सर्जना प्रकाशन, ग्वालियर ।

16. अनुभूत क्षण, सन् 2001, 55 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 1997-2000, प्रकाशक : निर्मल पब्लिकेशन्स, दिल्ली ।

17. मृत्यु-बोध, जीवनबोध, सन् 2002, 50 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल 2001-2002, प्रकाशक : इंडियन पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली ।

18. राग-संवेदन, 2005, 50 कविताएँ संगृहीत, रचना-काल, 2003-2004

19. हिन्दी-साहित्य का सुबोध इतिहास (संस्करण 1985), ले. बाबू गुलाबराय, प्र. लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा ।

20. हिन्दी-साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, ले. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, प्र. लोकभारती, इलाहाबाद ।

21. हिन्दी-साहित्य का सर्वेक्षण (पद्य-खण्ड), ले. श्री विश्वम्भर ‘मानव’, प्र. लोकभारती, इलाहाबाद ।

22. हिन्दी-साहित्य का अद्यतन इतिहास (संस्करण 1983), ले. डॉ. मोहन अवस्थी, प्र. सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद ।

23. हिन्दी-साहित्य : एक परिचय, ले. डॉ. त्रिभुवन सिंह, प्र. हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स, वाराणसी ।

24. हिन्दी-साहित्य का प्रवृत्तिमूलक इतिहास, 1988, ले. डॉ. रामनिवास गुप्त, प्र. विपिन प्रकाशन, रोहतक ।

25. प्रगतिशील हिन्दी-कविता (शोध-प्रबन्ध), ले. डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला, प्र. ग्रंथम, कानपुर ।

26. छायावादोत्तर हिन्दी-कविता (शोध-प्रबन्ध), ले. डॉ. रमाकान्त शर्मा,

वल्लभविद्यानगर (गुजरात)

27. हिन्दी-काव्य में मार्क्सवादी चेतना (शोध-प्रबन्ध), ले. डॉ. जनेश्वर वर्मा, कानपुर ।

28. नया साहित्य : नये मूल्य (शोध-प्रबन्ध), ले. डॉ. ललित शुक्ल, प्र. मेक्बिगलन, नई दिल्ली ।

29. नई कविता, सं. डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद, प्र. कल्याणमल एण्ड सन्स, जयपुर ।

30. नयी कविता, नये कवि, ले. श्री विश्वम्भर 'मानव', प्र. लोकभारती, इलाहाबाद ।

31. आधुनिक हिन्दी काव्य, ले. डॉ. भागीरथ मिश्र, डॉ. बलभद्र तिवारी, प्र.म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल ।

32. प्रगतिवादी काव्य-साहित्य, ले. डॉ. कृष्णलाल हंस, प्र.म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल ।

33. साहित्यिक निबन्ध, सं. कमलेश, प्र. लोक चेतना प्रकाशन, जबलपुर ।

34. नये निबन्ध, सं. सुधारानी, प्र. कैलाश पुस्तक सदन, ग्वालियर ।

35. साहित्यिक निबन्ध, ले. डॉ. प्रतापनारायण टंडन, लखनऊ ।

36. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य, सं. डॉ. महेन्द्र भटनागर, प्र. नवभारती, दिल्ली ।

37. राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य, ले. डॉ. रामेश्वर शर्मा, प्र. मानव भारती प्रकाशन, नई दिल्ली ।

38. विचार और निष्कर्ष, ले. डॉ. वासुदेवनन्दन प्रसाद, प्र. भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1956 ।

39. साहित्य, शोध, समीक्षा, ले. डॉ. विनयमोहन शर्मा, प्र. एस. चंद एण्ड कं., नई दिल्ली, 1961 ।

40. आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली, ले. डॉ. रांगेय राघव, प्र. राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1962 ।

41. हिन्दी रेखाचित्र, ले. डॉ. हरवंशलाल शर्मा, प्र. हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ.प्र., लखनऊ ।

42. हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास, ले. डॉ. रामप्रसाद मिश्र, प्र. सत्साहित्य भंडार, दिल्ली ।

43. हिन्दी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश (द्वितीय खंड), सं. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, प्र. एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली ।

44. अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, सं. डॉ. कुमार विमल, प्र. पराग प्रकाशन, पटना ।

45. समकालीन कविता के सरोकार, ले. डॉ. गुरूचरण सिंह, प्र. नवराज प्रकाशन, दिल्ली, 2000 ।

46. प्रकाशकनामा, ले. कृष्णचंद्र बेरी, प्र. हिन्दी प्रचारक पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 2002 ।

47. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप, डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय, प्रकाशक : राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर (राजस्थान), प्र.सं. 1990 ।

48. हिन्दुस्तानी शब्दकोश, सं. डॉ. अम्बाशंकर नार, प्रकाशक : गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण-1998 ।

49. भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता संघर्ष (1857-1947) भाग-1, एम.एल. धवन, प्रकाशक : अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 4831/24, प्रहलाद स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2003 ।

50. भारतीय इतिहास कोश : सच्चिदानंद भट्टाचार्य, प्रकाशक : निदेशक उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1976, द्वितीय संस्करण-1989 ।

51. भारतीय शासन और राजनीति : ए.एस. नारंग, प्रकाशक : गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, 2/12, विक्रम विहार, लाजपतनगर, नई दिल्ली-110024, प्रथम संस्करण-1988 ।

52. संस्कृति के चार अध्याय : दिनकर, प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, 15-ए., महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, संस्करण-2000 ।

53. भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम तेज अने तवारीख (कॉग्रेस-ऐतिहासिक भूमिका-विचारधारा) (गुजराती), हरिहर खंभोळजा, प्रकाशक : हरिहर खंभोळजा, प्लोट नं.41, पहला माला, सेक्टर-19, गांधीनगर, प्रथम संस्करण-2006 ।

54. योजना (मासिक पत्रिका), दिसम्बर-2007, अंक-9, प्रधान सं. अनुराग मिश्रा, प्रकाशक : 538, योजनाभवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली-110001।

55. राजीव गांधी के प्रधानमंत्री काल में भारत-पाक संबंध, संजयकुमार सिंह, प्रकाशन : विश्वभारती पब्लिकेशन्स, 4378/4B अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2005।

56. महात्मा गांधी व्यक्ति और विचार, विश्वप्रकाश गुप्त तथा मोहिनी गुप्ता, राधा पब्लिकेशन्स, न्यु दिल्ली, 1996।

57. Poetry & Experience : Muclush, Methuen & Co. Ltd., 1984।

58. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, डॉ. जनेश्वर वर्मा, प्रकाशक : ग्रंथम, रामबाग, कानपुर-12, प्रथम संस्करण-1974।

59. कम्युनिष्ट पार्टी का घोषणापत्र : माक्स और ऐंगल्स, पापुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सं.1955।

60. Introduction to Dialectics of Nature Engels, Marx Engels, Selected Works, Vol.II, Moscow, 1949, Foreign Languages Pub. House, 1949।

61. भारत की भयावह आर्थिक स्थिति कारण और निदान - चरण सिंह, प्र. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-1982

62. भारतीय अर्थ व्यवस्था नई शताब्दी में, ओ.पी. शर्मा, प्र. दीपक परनामी, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाईवे, जयपुर-302003, सं.2001

63. सोवियत संघ और भारत की आर्थिक स्वतंत्रता, ए.एस. मूर्ति, प्र. आर.बी. आकुलोब द्वारा सोवियत संघ के भारत स्थित दुतावास के सूचना विभाग के लिए 25 बाराखम्बा रोड, नई दिल्ली-110001, सं. 1978।

64. भारत का मुक्ति संग्राम, एस.एल. नागोरी, जीतेश नागोरी, राज पब्लिकेशन हाउस, 1997।

65. भारतीय इतिहास कोश : सच्चिदानंद भट्टाचार्य, प्रकाशक : निदेशक उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ, प्रथम संस्करण-1976, द्वितीय संस्करण-1989।

66. तीसरा सप्तक, सं. अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-1979 ई. ।

67. भारतीय अर्थ व्यवस्था नई शताब्दी में, ओ.पी. शर्मा, प्रकाशक : दीपक परनामी, आर.पी.एस.ए. पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाईवे, जयपुर-302003, सं.2001।

68. भारत की भयावह आर्थिक स्थिति कारण और निदान, चरणसिंह, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-10002, प्र.सं. 1982।

69. आर्थिक विचारों का इतिहास, डॉ. बी. सिंह महलौत, प्रकाशक : अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2005।

70. आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, रविंदर कुमार, अनुवादक : आदित्य नारायणसिंह, प्रकाशक : ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली-110002, प्र.सं. हिन्दी, सं. 1997।

71. शिल्प और दर्शन, सुमित्रानंदन पंत, राजकमल प्रकाशन, 1975।

72. नालन्दा विशाल शब्दसागर, श्री नवलजी, प्रका. आदीश बुक डिपो, करोलबाग, नई दिल्ली-110005, सं. 1991।

73. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ. मुरारीलाल शर्मा 'सुरस', जीवनज्योति प्रकाशन, 3014, चर्खेवालान, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-2004।

74. महादेवी साहित्य समग्र-1, सं. निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-1969।

75. तार सप्तक, सं. अज्ञेय, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली-110003, सातवाँ सं. 2000।

76. ऑन रिलीजन, के. मार्क्स एण्ड एफ. ऐजंलस, प्रकाशन : फॉरेन लैंग्वेज पब्लिशिंग हाउस, मास्को, द्वितीय आवृत्ति।

77. साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-110002, प्र.सं. 1982।

78. नया काव्य नया मूल्य, ललित शुक्ल, स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स (इण्डिया), नई दिल्ली-110059, सं.1999।

79. हिन्दी कविता : मार्क्सवादी परिपेक्ष्य में, डॉ. जनेश्वर वर्मा, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110015, सं. 1998।

80. मार्क्सवाद और साहित्य, महेन्द्रचन्द्र राय, आराधना प्रकाशन, वाराणसी, सं. 1957 ई. ।

81. काव्य-शास्त्र, डॉ. भगीरथ मिश्र, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, तृतीय संस्करण-1966 ।

82. आधुनिक हिन्दी काव्य, डॉ. भगीरथ मिश्र, प्रकाशक : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, प्र.सं. 1972 ।

83. कुछ विचार, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, 1973 ।

84. हिल्लोल, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वितीय संस्करण-1946 ई. ।

85. छायावादोत्तर हिन्दी कविता, डॉ. द्वारकाप्रसाद ब. साँचीहर, चिन्ता प्रकाशन, पिलानी, राजस्थान-333031, प्र.सं.1990 ।

86. आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली, डॉ. रांगेय राघव, प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-6, प्र.सं. 1962 ।

87. हलायुधकोश, (संपादक) जयशंकर जोशी, सरस्वती भवन, वाराणसी, सं. 2014 वि. ।

88. हिन्दी साहित्य कोश, सं. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, काशी, संवत 2020 ।

89. हिन्दी काव्य में प्रतिकवाद का विकास, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, हिन्दी परिषद प्रकाशन, हिन्दी विभाग, प्रयास विश्वविद्यालय, प्रयाग, प्र.सं. 1964 ।

90. हरी घास पर क्षणभर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2000 वि. ।

91. पलाशवन, नरेन्द्र शर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण-1946 ई. ।

92. सात गीत वर्ष, धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं. जनवरी 1976 ई. ।

93. पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयास, पाँचवा संस्करण-2005 वि. ।

94. वाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र.सं. 1958 ई. ।
95. हंसमाला, नरेन्द्र शर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयास, प्र.सं. 2003 वि. ।
96. साहित्यिक निबन्ध, द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, नयी दिल्ली, सं. 1981 ।
97. प्रभातफेरी, नरेन्द्र शर्मा, प्रकाशगृह, कालांकाकर, 1929 ।
98. करुण सतसई, रामेश्वर 'करुण', सहदेवजी 'भगवान', लाहौर, सं. 1991 ।
99. चुनौति, सरस वियोगी, सरस साहित्य, अजमेर ।
100. परिमल, निराला, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1978 ।
101. गोस्वामी तुलसीदास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, 1966 ।
102. हिन्दी कविता : मार्क्सवादी परिपेक्ष में, डॉ. जनेश्वर वर्मा, युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110015, सं. 1998 ।
103. रूप तरंग, डॉ. राजविलास शर्मा, विनोद पुस्तकालय मंदिर, आगरा, सं. 1956 ।
104. नया हिन्दी काव्य, शिवकुमार मिश्र, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, सं. 1962 ई. अक्टूबर ।
105. जीवन के गान, शिवमंगल सिंह 'सुमन', आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सं. 1981 ई. ।
106. दर्शनकोश, प्रगति प्रकाशन, मोस्को, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.लि.), नई दिल्ली-110055, हिन्दी अनुवाद-1988 ।
107. अनामिका (नवीन), निराला, भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-1937 ।
108. समकालीन हिन्दी कविता में आम आदमी, मृदुल जोशी, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, प्र.सं. 2001 ।
109. अपरा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, ग्यारहवाँ सं. - सं. 2032 वि. ।
110. अणिमा, निराला, युगमंदिर प्रकाशन, उन्नाव, प्रथम संस्करण-1943 ।
111. गांधी व्यक्तित्व विचार और गांधीवाद, ज्ञानेन्द्र रावत, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली-110053, प्रथम संस्करण-2006 ।

112. दलित साहित्य की भूमिका, हरपाल सिंह 'अरूष', जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (उ.प्र.) 281001, प्रकाशक : कुंजबिहारी पंचौरी ।

113. हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता, डॉ. कालीचरण 'स्नेही', आराधना ब्रधर्स, कानपुर ।

114. दलित हस्तक्षेप, रमणिका गुप्ता, प्रकाशक : शिल्पायन, दिल्ली-110032 ।

115. आर्थिक विचारों का इतिहास (ऐतिहासिक आर्थिक विचारक), नसीम ए. आजाद, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2007 ।

116. नया हिन्दी काव्य, शिवकुमार मिश्र, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, सं. 1962

117. आधुनिक कवि (2), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', हिन्दी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्रकाशन वर्ष 1981 ई. ।

118. समकालीन हिन्दी कविता सामाजिक मूल्य, डॉ. रविन्द्रनाथ दरगन, राजेश प्रकाशन, कृष्णनगर, दिल्ली-51, प्रथम संस्करण-1984 ।

119. हिन्दी के प्रगतिशील कवि, डॉ. रणजीत, पिपुल्स पब्लिकेशन्स हाउस (प्रा.) लि., नई दिल्ली, अहमदाबाद, बम्बई, सं. मार्च 1973 ।

120. उदयपथ, शील, पिपुल्स पब्लिकेशन्स हाउस, मुंबई, सं. 1953 ।

121. आधुनिक कविता का अभिव्यंजनात्मक शिल्प, डॉ. हरदयाल, सरस्वती प्रेस, दिल्ली, इलाहाबाद ।

122. रामराज्य की कथा, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1950 ई. ।

123. कलान्तर, गिरिजाकुमार माथुर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1983 ।

124. संसद से सडक तक, धूमिल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

125. राष्ट्रीय वीणा (द्वितीय भाग), सं. त्रिशूल, प्रताप पुस्तकालय, कानपुर, 1922 ।

126. श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली-110053, प्रथम संस्करण-2006 ।

127. त्रैमासिक आलोचना, वर्ष-6, अंक-1, जनवरी, 1957, राजकमल प्रकाशन (प्रा.लि.), दिल्ली ।

128. दर्शनकोश, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., नई दिल्ली ।

129. एक और सर्वोदय, डेट्लैफ कॉन्टोव्सकी, प्रकाशक : गांधी शांति प्रतिष्ठान, 221/223, दीनदयाल उपाध्याय, मार्ग नई दिल्ली-2, प्रथम संस्करण-1984

130. आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, रविंदर कुमार, अनुवादक : आदित्य नारायण सिंह, प्रकाशक : ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली-110002, प्रथम हिन्दी संस्करण-1997 ।

131. भारतीय शासन और राजनीति, ए.एस. नारंग, प्रकाशक : गीतांजली पब्लिशिंग हाउस, 2/12, विक्रम विहार, लाजपतनगर, नई दिल्ली-110024, प्रथम संस्करण-1988 ।

132. भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं स्वतंत्रता संघर्ष (1857-1947) भाग-1, एम.एल. धवन, प्रकाशक : अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 4831/24, प्रहलाद स्ट्रीट, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2003 ।

133. भारतीय इतिहास कोश, सच्चिदानंद भट्टाचार्य, प्रकाशक : उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनउ, प्रथम संस्करण-1976, द्वितीय संस्करण-1989 ।

134. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरुप, डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय, प्रकाशक : राजस्थानी ग्रंथागार, सोजती गेट के बाहर, जोधपुर (राजस्थान), प्रथम संस्करण-1990 ।

135. हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल नारायण टण्डन, पल्लवी टण्डन, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली ।

136. आलोचना त्रैमासिक, श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, वर्ष-5, अंक-4, अक्टूबर-1956 ।

137. समाजशास्त्र विश्वकोश, हरिकृष्ण रावत, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, द्वि. सं. 1998 ।

138. मार्क्सवाद और साहित्य, महेन्द्रचन्द्र राय, आराधना प्रकाशन, वाराणसी, 1957 ई. ।

139. दलित हस्तक्षेप, रमणिका गुप्ता, सं. ओमप्रकाश वाल्मीकि, शिल्पायन, दिल्ली-110032 ।

140. आधुनिक भारतीय इतिहास का सर्वेक्षण, एस.एल. नागोरी, कान्ता नागोरी, प्र. सबलाइम पब्लिकेशन्स, जयपुर भारत, प्रथम संस्करण-2002 ।

141. आर.जी. आकुलोष द्वारा सोवियत संघ के भारत स्थित इलावास के सूचना विभाग के लिए 25 बाराखम्बा रोड, नई दिल्ली-110001, सं. 1978 ।

142. भारत की भयावह आर्थिक स्थिति कारण और निदान, चरणसिंह, प्र. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-1982।

143. भारतीय अर्थ व्यवस्था नई शताब्दी में, ओ.पी. शर्मा, प्रकाशक : दीपक परनामी, आर.बी.एस.ए. पब्लिशर्स, एस.एम.एस. हाईवे, जयपुर-302003, सं. 2001।

144. हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद और अन्य निबंध, विजयशंकर मल्ल, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2007।

145. अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2005।

146. नया काव्य नये मूल्य, ललित शुक्ल, स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स (इण्डिया), नई दिल्ली-110059।

147. नवगीत इतिहास और उपलब्धि, डॉ. सुरेश गौतम, डॉ. (श्रीमती) वीणा गौतम, प्रथम संस्करण-1990।

148. भारत का मुक्तिसंग्राम भाग-1, प्रकाशक : राज पब्लिशिंग हाउस, 44, परनामी मंदिर, गोविन्दमाँ, जयपुर-302004, प्रथम संस्करण-1997।

149. हिन्दी पर्यायवाची कोश, डॉ. भोलानाथ तिवारी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-1990।

150. भाषा शब्दकोश, डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', प्रकाशक : रामनारायणलाल, बेनीप्रसाद, इलाहाबाद-2, चतुर्थ संस्करण-1962।

151. नया काव्य नये मूल्य, ललित शुक्ल, स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स (इण्डिया), नई दिल्ली-110059, प्रथम संस्करण-1999।

152. हिन्दुस्तानी, त्रैमासिक पत्रिका, भाग-68, अंक-2, अप्रैल-जून-07, प्रकाशन : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

153. बृहत हिन्दीकोश-2, भाग-2, वृजेन्द्र चतुर्वेदी, अनिल चतुर्वेदी, बुक्स एन' बुक्स, दिल्ली-110009, प्रथम संस्करण-2007।

154. आधुनिकता और समकालीन रचना-संदर्भ, डॉ. नरेन्द्र गोहन, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1967।

155. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ग्रंथावली-3, सं. ओमप्रकाश सिंह, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2007।

156. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली-110002, दि.सं. 1980 ।

157. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-110002, द्वितीय संस्करण-2002।